भूमिका।

प्राचीन भारतका इतिहास प्रायः बिलकुल अन्धकारमें है। प्राचीन भारतीय साहित्यमें कोई भी ऐसा ग्रन्थ नहीं है जो प्राचीन भारतके नियमित और व्यवस्थित इतिहास ज्ञान हमको करा सके। ऐसी दशामें यह संभव नहीं है कि उस प्राचीनकालमें हुये किन्हीं महापुरुषोंका एक यथार्थ चरित्र-ग्रंथ लिखा जा सके किन्तु इस कठिनाईके होते हुये भी प्रस्तुत पुस्तकमें भगवान महावीर और म॰ गौतमबुद्धके पारस्परिक जीवन-सम्बन्धोंको प्रकट करनेका जो साहस किया गया है उसमें मूल कारण हमारी भक्ति ही है, पर हमारे पूज्य पूर्वजोंके साहित्यक ग्रन्थ शिलालेख और मुद्रालेख इसमें पूर्ण प्रेरक और सहायक हैं। सचमुच इसी प्राचीन भारतीय साहित्यके अस्तव्यस्त ऐतिहासिक सामग्रीके आधार इस पुस्तकको लिखनेका प्रयास किया गया है परन्तु हमारे लिये यह कहना असंभव है कि वस्तुतः हम अपने इस प्रयासमें किस हदतक सफलमनोरथ हुये हैं।

म॰ गौतमबुद्धका नाम आज संसारके समस्त धर्मात्माओंमें बहुप्रख्यात है। दुनियाँमें सबसे अधिक संख्यामें मनुष्य उन्हींके अनुयायी हैं किन्तु इतना होते हुये भी भगवान महावीर एक अनुपम तीर्थंकर थे, वे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी थे; यह बात स्वयं बौद्धग्रन्थोंसे प्रमाणित है, अतएव एक अनुपम तीर्थंकरका और साथ ही एक पुण्यवान महात्माका पूर्ण चरित्र प्रकट करनेका

प्रयत्न करना एक धृष्टता मात्र है। परिमित ज्ञानशक्तिको रखनेवाले छद्मस्थ मनुष्यके लिये एक तरहसे यह असम्भव ही है। पर यह सब कुछ मानते हुये भी आखिर यह पुस्तक लिखी ही गई है, इसका सब कुछ श्रेय हृदय-प्रेम, प्राचीन भारतीय साहित्य और समयकी मागको है। अस्तु,

म० बुद्ध बौद्धधर्मके सन्थापक थे। उन्होंने ईसवी सन्‌से पहले छठी शताब्दिमें एक समयानुकूल धर्मका बीजारोपण किया था और उसे वे अपने ही जीवनमें पल्लवित कर सके थे। उस समयके प्रचलित मत-मतान्तरोंमें परस्पर ऐक्य लानेका उद्देश्य ही इस नवीन धर्मकी स्थापनामें था। इन सब बातोंका स्पष्ट दिग्दर्शन प्रस्तुत पुस्तकमें यथास्थान पाठकोंको मिलेगा। किन्हीं महाशयोंकी आज भी यह मिथ्या धारणा बनी हुई है कि म० बुद्धके इस नव-स्थापित बौद्धधर्मसे ही जैनधर्मका विकाश हुआ था, परन्तु इस पुस्तकके पढ़नेसे वे जान सकेंगे कि वस्तुत जैनधर्म बौद्धधर्मसे प्राचीन है। भगवान महावीरके पहलेसे ही जैनधर्म चला आ रहा था। उनके एक बहुत ही दीर्घकाल पहले २३ तीर्थंकर और हो चुके थे, जिनमेंसे २३वें श्रीपार्श्वनाथजी भगवान महावीरसे केवल १५० वर्ष पहले हुये थे। इस युगके सर्व प्रथम तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव थे, जिनका उल्लेख हिन्दुओंके भागवतमें (अ० ५) आठवें अवतार रूपमें हुआ है। वेदोंमें बारवें वामन अवतारका उल्लेख है। इस अपेक्षा जैनधर्मके इस युगके सस्थापक भगवान ऋषभदेव वेदोंसे भी पहले हुये प्रमाणित होते हैं। यही कारण है कि आधुनिक विद्वान् अपने अध्ययनके उपरान्त इस निर्णयको

पहुंचे हैं कि संभवतः जैनधर्म ही भारतका सर्व प्राचीन धर्म है।* मथुराके जो शिलालेख आदि मिले हैं उनसे भी जैनधर्मकी बहु प्राचीनताका पता चलता है। इस सदीमें यह भी भ्रम था कि जैनधर्मकी उत्पत्ति बौद्धधर्मसे या वैदिक धर्मसे हुई थी। इसी तरह भगवान महावीरजीको अथवा श्रीपार्श्वनाथजीको जैनधर्मका संस्थापक कहना निरा भ्रममूलक है।

जैनधर्मके किन्हीं सिद्धान्तोंकी सदृशता यद्यपि बौद्धधर्ममें मिलती है; परन्तु दोनों ही धर्मोंमें जमीन आसमानका अंतर है, यह बात पाठकगण प्रस्तुत पुस्तकके पढ़नेसे जान सकेंगे। जिस तरह म० बुद्ध और म० महावीरके जीवनवृत्तान्त बिल्कुल विभिन्न थे वैसे ही उनके धर्म थे। यह व्याख्या आधुनिक पाश्चात्यविद्याविशारदोंको भी मान्य है। + जो सिद्धान्त बौद्धधर्ममें मिलते हैं जैनधर्ममें उनका प्रायः अभाव है। बुद्धके निकट तपश्चरणकी मुख्यता स्थान नहीं रखती थी। उन्होंने जैनमुनिकी अवस्थासे भ्रष्ट होकर अपने लिये एक 'मध्यम मार्ग' ढूंढ निकाला था और उसीका उपदेश अपने शिष्योंको दिया था किन्तु भगवान महावीरने ज्ञान-ध्यानमय साधु जीवनमें तपश्चरणको भी मुख्य माना था यद्यपि केवल कायक्लेशको उन्होंने भी बुरा बतलाया था। इसी तरह अहिंसाको यद्यपि म० बुद्धने भी स्वीकार किया था, परन्तु उसका वह व्यापक रूप उनको स्वीकृत नहीं था; जो उसको जैनधर्ममें प्राप्त रहा है। कर्मसिद्धान्तको भी म० बुद्धने माना था पर कर्मोंको एक

---

* देखो वीर वर्ष ३ अंक १२-१३।

\+ कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया पृ० १६६.

सूक्ष्म पौद्गलिक पदार्थ नहीं माना था जैसे कि जैनधर्ममें माना गया है। सिद्धान्तोंके अतिरिक्त जाहिरदारीकी मोटी बातोंमें भी दोनों धर्मोंमें अन्तर मौजूद रहा है। बौद्धभिक्षु वस्त्र धारण करते, निमंत्रण स्वीकार करते और मृत पशुओंका मांस भी ग्रहण करते रहे हैं, परन्तु जैन साधु सर्वोच्च दशामें सर्वथा नग्न रहते, निमंत्रण स्वीकार नहीं करते, उद्देशिक भोजन नहीं करते और मांसभोजन सर्वथा नहीं करते रहे हैं। बौद्धसंघ और जैनसंघमें बड़ा अन्तर है। बौद्धसंघमें केवल भिक्षु और भिक्षुणी सम्मिलित थे, परन्तु जैनसंघमें साधु—साध्वियोंके अतिरिक्त श्रावक—श्राविकायें भी सम्मिलित थे। कोई विद्वान इसी विशेषताके कारण जैनसंघका अस्तित्व भारतमें अनेकों आफतें सहकर भी रहते स्वीकार करते हैं। इसी प्रकारके प्रकट भेद जैन और बौद्धमतोंमें मिलते हैं, जिनका दिग्दर्शन प्रस्तुत पुस्तकमें यथासंभव करा दिया गया है। अस्तु,

इस पुस्तकके अन्तमें जो परिशिष्ट बौद्धसाहित्यमें आए हुए जैन उल्लेखोंका दे दिया गया है, उससे जैनसिद्धांतों और नियमोंका परिचय समुचित रूपमें होता है। उनसे स्पष्ट प्रगट है कि जैनसिद्धांत जिसप्रकार आजसे ढाई हजार वर्ष पहले भगवान् महावीरजी द्वारा प्रतिपादित हुआ था ठीक उसीप्रकार वह आज हमको मिल रहा है। इतने लम्बे कालान्तरमें भी उसका यथाविधि रहना उसकी पूर्णता और वैज्ञानिकताका द्योतक है। इससे जैनधर्मकी आर्षता और वैज्ञानिकता प्रमाणित है। इस परिशिष्टको श्रीमान् जैनधर्मभूषण धर्मदिवाकर ब्र० शीतलप्रसादजीने देखकर हमें उचित सम्मतियोंसे अनुग्रहीत किया है, यह प्रगट करते हमें हर्ष है।

इसके अतिरिक्त श्रीमान् डॉ॰ विमलचरण लॉ एम॰ ए, बी एल पी एच डी एल आर हिस्ट एस (लंदन) वकील व जमींदार कलकत्ताने जो बौद्धधर्ममें प्रस्तावना लिख देनेकी उदारता दिखाई है, उसके लिए हम उनके बड़े आभारी हैं। आपने प्रस्तुत पुस्तकके भावको प्रगट करते हुये बौद्ध और जैनधर्मके कतिपय सिद्धांत-भेदोंको परिमित शब्दोंमें सुगुम्फित रीतिसे स्पष्ट कर दिया है। आप बतलाते हैं कि जैनधर्मका आस्रव तत्त्व बौद्ध धर्ममें नहीं मिलता है। कर्मसिद्धांत यद्यपि जैन और बौद्धधर्मोंमें स्वीकृत है, परन्तु जैनधर्ममें वह एक पौद्गलिक पदार्थ है और बौद्धधर्ममें केवल एक नियम मात्र ही है। डॉ॰ ला का भी भाव केवल बाह्य सादृश्यताके बतलानेका है। जीव-अजीव तत्त्व बौद्धधर्ममें जैनधर्मसे भिन्न अर्थको लिए हुए बतलाये हैं। बौद्धधर्ममें जीवसे भाव प्राण के और अजीवसे प्राणहीनके हैं। आस्रव तत्त्वके भाव भी दोनों धर्मोंमें विभिन्न हैं। जैनधर्ममें कर्मोंका आत्मामें आगमन आस्रव बतलाया गया है, जब कि बौद्धधर्ममें इसके अर्थ 'पाप' (Sin)के लिये गए हैं। जैनधर्मका 'बंध' तत्त्व बौद्धधर्मके "संवर" तत्त्वके समान कहा गया है। बौद्धधर्ममें 'बंध' संयोजनाके अर्थमें व्यवहृत हुआ मिलता है। जैन 'निर्जरा' तत्त्वके समान कोई तत्त्व बौद्धधर्ममें नहीं है। जैनियोंके 'मोक्ष' तत्त्वका भाव भी बौद्धधर्ममें कहीं नहीं मिलता है। जैनियोंके धर्म-क्रियाकी इसकी समानता डॉ॰ ला महाशय बौद्धोंके 'परिवासमु-पात' (Patisamuppada) से करते हैं। यह केवल बाह्य-रूपमें भले ही हो, वैसे यह तत्त्व केवल जैनधर्मका ही अनूठी वस्तु

है। शेषके पाच द्रव्य भी जो जैनधर्ममें स्वीकृत है बौद्धधर्ममें नहीं मिलते है। जैनशास्त्रोंमें 'श्रावक' शब्दके भाव एक जैनी गृहस्थके है, परन्तु बौद्धोंकि निकट इसके भाव एक बौद्धभिक्षुके हैं। इसीतरह बौद्धोंका 'रत्नत्रय' जैन 'रत्नत्रय'के नितान्त विपरीत है। ऐसे ही खास २ भेदोंको डॉ० साहबने अपनी प्रस्तावनामें अच्छी तरह दर्शा दिया है। अंग्रेजी विज्ञ पाठक उसको पढ़कर विशेष लाभ उठा सकेंगे, इसके लिये हम डॉ० सा० का पुन आभार स्वीकार करते है तथापि उन सब आचार्यों और लेखकोंकि भी हम आभारी है, जिनके ग्रन्थोंसे हमने यह पुस्तक लिखनेमें सहायता ली है।

अन्तमें हम अपने प्रियमित्र सेठ मूलचन्द किसनदासजी कापड़ियाको धन्यवाद दिये विना भी नहीं रह सक्ते, जिनकी कृपासे यह पुस्तक प्रकाशमें आरही है और "दिगम्बर जैन" के ग्राहकोंको भेंट स्वरूप भी मिल रही है व इस तरहपर इसका जल्दी ही बहुप्रचार होरहा है। हमें विश्वास है कि विद्वज्जन इसे विशेष उपयोगी पायेंगे और यदि कोई त्रुटि इसमें देखेंगे तो उसको सूचित कर अनुग्रहीत बनायेंगे। इत्यलम्।

जसवन्तनगर (इटावा)
माघ शुक्ला पूर्णिमा,
वीर नि० स० २४५१

विनीत—
कामताप्रसाद जैन।

पूज्या माताजीकी
पवित्र स्मृतिमें
उत्सर्गीकृत है।
—लेखक।

FOREWORD.

It gives me great pleasure to accede to the request of Mr. Kamta Prasad Jain, to put down a few words of introduction to his volume on "*Bhagvān Mahāvira aur Sambuddha*" Mr Jain has already made his name as a researcher in the field of Jainism by his well-known works, "*Bhagvān Mahāvira*" and "*Bhagvān Mahāvira aur Unkā Upadesa*" The present volume is very useful addition to the literature on the subject. It is ably written in very simple Hindi The author has, in this treatise, discussed the following topics —India at the time of Mahāvira and the Buddha, early life of these two teachers, their household and religious life, attainment of knowledge preachings and the respective dates of their advent He has elaborately dealt with the Dharma of Mahavira and the Buddha, and has noted points of similarity and dissimilarity between the two religions In the footnotes he has acknowledged his indebtedness to the authors from whom he has taken help He has taken pains to consult the original Buddhist and Jain texts.

Jainism played an important part in the religious history of Ancient India There can be no doubt that it is older than Buddhism According to tradition the principles of Jainism existed in India from the earliest times. There is probably a reference to Jainism in the Adiparva of the Mahābhārata

It appears from the Samyutta Nikāya that Mahāvira was senior to the Buddha in age (1 68). The traditional date of Mahāvira's death corresponds to the year 470 before the foundation of the Vikrama Era, i. e 528 B.C. (Cambridge History of Ancient India, Vol I. p 155).

Dr. Charpentier rejects this date and prefers the date 468 B. C. His view is, however contradicted by a passage in the Digha Nikāya (I. 156) We know on the authorities of the Sāmagāma Suttanta of the Majjhima Nikāya (II., 13) and the Pāsika Suttanta of the Digha Nikāya (III., p. I), that Mahāvira predeceased Buddha by a few years Dr. Hoernle thinks that Mahā ira died some five years before the Buddha. W may very well assume that the great prophet died about 500 B. C. in round mbers. Vardhamāna Mahāvira was adoubtedly a revealer of things seen and heard by him. He was highly esteemed by the people. The Records describe him as noble, glorious, full of faith, knowledge and virtue the best of those who taught Nirvana. Buddha, his contemporary was also great preacher It will, I think, not be quite out of place to discuss here few topics of the rival religions founded by these two eminent men and note their points of similarity and dissimilarity

Akāsa—In Jainism it means space. Space has two divisions :-Loka (universe) and Aloka (the nonuniverse). I the universe there are six Dravyas. In the Aloka there is only endless space W do not find exactly this idea in Buddhism.

Karma—Jainism recognises various kinds of *Karmas*. Mahāvira holds that the evil or good which is given to all sentient creatures is the fruit of the karma of former existences. They are born through the sense and by reason of love and desire. Through sense and reason are old age nd disease. W find the same idea in Buddhism. Mahāvira holds that many men have been born according to their merit as inhabitants of this

human world Undoubtedly he had a strong faith in the effect of karma. In Buddhism too there are various divisions of karma and there are many kinds of acts or consequences which are manifested in their true aspects in the Buddha's knowledge or the consequences of karma

Jiva and Ajiva—According to Jainism Jiva means soul, Ajiva means non-soul In Buddhism Jiva 'means living principle (life, prán) Ajiva means lifeless thing. According to Jainism Jiva and Ajiva are in combination and the link between them is that of karma. (of Outlines of Jainsim by Mr Jagmanderlal Jaini)

Soul—In Jainism it is affected by attachment, aversion, affection, infatuation, in the form of the four passions helped by the activity of body, mind and speech. This activity is known as Yoga There are two kinds of Ăsrava Bhavasrava and Dravyăsrava Bhavăsrava means the condition of the soul which makes Asrava possible and Dravyăsrava means the actual matter attracted by the soul It is what the Jains call objective Ăsrava. This idea is quite different from that of Buddhism In Buddhism Ăsrva means sin and it refers to karma (sensual pleasure), bhava (birth), ditthi (false belief) and avijjă (Ignorance).

Bandhana—In Jainism it means bondage and it is of four kinds In Buddhism it means Samyojana Bandhana in Jainism is almost akin to Samvara in Buddhism which means restraint in body, mind and speech It really means that the inflow of *karmic matter* may be stopped for the soul is independent

Nirjará—There is nothing like this in Buddhism. In Jainism it means the falling away of the *karmic matter* from soul The fetters themselves may fall down, and the soul may become free

Dr. Charpentier rejects this date and prefers the date 468 B. C. His view is, however contradicted by passage in the *Digha* Nikāya (I. 186). W know on the authorities of the Sāmagāma Suttanta of the Majjhima Nikāya (II., 243) and the Pāsāka Suttanta of the *Digha* Nikāya (III., p. 1.), that Mahāvira predeceased Buddha by a few years. Dr. Hoernle thinks that Mahāvira died some five years before the Buddha. W may very well assume that the great prophet died bout 500 B. C. in round numbers. Vardhamāna Mahāvira was undoubtedly revealer of things seen and heard by him. He was highly esteemed by the people. The Records describe him as noble, glorious, full of faith, knowledge and virtue, the best of those who taught Nirvana. Buddha, his contemporary was also great preacher It will, I think, not be quite out of place to discuss here few topics of the rival religions founded by these two eminent men and note their points of similarity and dissimilarity

Akāsa—In Jainism it means *space*. Space has two divisions :-Loka (universe) and Aloka (the nonuniverse). In the universe there are six Dravyas. I the Aloka there is only endless space W do not find exactly this idea in Buddhism

Karma—Jainism recognises various kinds of *Karma*. Mahāvira holds that the evil or good which is given to all sentient creatures is the *fruit* of the karma of former existences. They are born through the same and by reason of love and desire Through cause and reason are old age and disease. W find the same idea in Buddhism. Mahāvira holds that many men have been born according to their merit as inhabitants of this

Buddhists the following pannacavānijjā are prohibited—sale of living beings, sale of weapons, sale of fish, sale of flesh and the sale of spirituous liquor It is no doubt true that a true Jaina and a true Buddhist will not hurt the feelings of others, nor will they violate the principles of Jainism and Buddhism The most important precept of Jainism is, "Do your duty, do it as humanely as you can " Thus we see that both the Jains and Buddhists propound the most noble doctrines which are beneficial to the world

Six kinds of substances or Dravyas are recognised in Jainism —(1) *Dharmastikâya*, (2) *Adharmastikaya*, (3) *Akashastikaya*, (4) *Pudgalâstikaya*, (5) *Jivastikâya* and (6) *Kâla*

(1) *Dharmâstikaya*—The Jaina idea of *Dharmâstikaya* is almost similar to *Paticcasamuppāda* (dependant origination) of the Buddhists

(2, 3 & 5) *Adharmāstikaya*, *Akâshastikaya* and *Jivāstikaya* are unknown to Buddhism

(4) *Pudgalâstikâya*—According to the Jains, it is the substance, the nature of which is that its qualities colour, etc increase and decrease Matter is made up of atoms The atom is minute, permanent and has no *pradesas* This idea is absent in Buddhism. Buddhism preaches impermanancy of all things except *Nibbana* and *ākâsadhâtu*

God—In Buddhism as well as Jainism there is no creator—god But however in Jainism we have the following conception of God —

(1) Something superior to ordinary man

(2) A real living being, not a bare principle

(3) Self-existent

Mokkha—In Jainism it means complete freedom of the soul from the karmic matter. This idea is unknown to Buddhism.

There are many things in Jainism which are unknown to Buddhism e. g. *siddhana*, *siddhaτana*, *Rddhi*, *Tirthas* etc.

Śrāvaka—In Jainism any householder who follows the teaching of the Tirthankara is called śrāvaka. In Buddhism śrāvaka means generally Bhikkhu or a Sramana, particularly an Arahat or a disciple of the Buddha who has destroyed all sins, and has obtained Nirvān in this present existence.

Right Conduct—It is the third jewel in Jainism. It means leading life according to the light gained jointly by the first two, viz right conviction and right knowledge. This idea is quite different from that of the Buddhist Triratna (three jewels).

Right Knowledge—The Buddhist view is to see things as they are, and not to take wrong view of things. The Jaina view is exactly the same. But in Jainism there are five kinds of right knowledge which are absent in Buddhism.

False knowledge—According to the Buddhists, false knowledge is not to have any knowledge of four noble truths, Dukkham, Dukkhasamudayam, Dukkhanirodham and Dukkhanirodhagāminipatipadā. This idea is absent in Jainism.

As to the ethics of the Jains and the Buddhists we should note that both the Jains and the Buddhists prohibit the slaughter of living beings. All kinds of intoxicants are prohibited in Jainism as well as Buddhism. Certain trades are prohibited to the Jainas, viz. fishing, butchery wholesale slaughter of living beings, brewing, and to the

विषय-सूची।

(4) A source of scriptures.

(7) A being worthy of worship.

Hell—It is interesting to note that both Buddhist and Jain ideas of suffering in hell are almost identical. Among the Jains we have th belief that in hell there is suffering from heat and cold. The sinners are cut, pierced and hacked to pieces by swords and other weapons. They undergo very acute and horrible pain. If they commit ill deeds and injure others without repentance they go to hell and cross the river *Baitaraṇī*, the waves of which cut lik sharp razors. I *Ambarisa* hell they are roasted. The sinners are hewn with axes lik pieces of timber in another hell. There re other hells according to the Jains where sinners suffer according to their sinful deeds done by them while on earth. The noses ears and lips of sinners are cut by razors and the tongues are pulled out by sharp pikes, they are thrown into large cauldrons nd boiled there, they are compelled to drink molten lead hen they are thirsty. The evil doers are tortured more than thousand years in the terrible *Baitālika* mountain in hell. The sinners are tortured day and night. They cry t the top of their voice in dreadful hell which contains various implements of torture. Almost identical ideas of suffering in Buddhist hells can be gathered from the accou t of hells given in my work *Heaven and Hell in Buddhist Perspective* (p. 93 *et seq.*).

Bimala Churn Law
M. A., B. L., Ph. D. F. R. Hist. S.
(London).

विषय-सूची।

प्राचीन भारत
के
मुख्य प्रदेश और नदियां।
मत्स्य
कुरु
मरु
कोशल
विदेह
मगध
मालव
चेदी
विदर्भ
दक्षिणापथ
गोदावरी
कृष्णा
आन्ध्र
कलिङ्ग
चोल
लङ्का
मुख्य नगर गणनाङ्क
द्वारा बतला दिये गये हैं –
१ अयोध्या २ श्रावस्ती
३ प्रयाग ४ मिथिला ५
पाटलीपुत्र ६ कान्यकुब्ज
७ कुण्डपुर ८ वैशाली
९ मथुरा १० इन्द्रप्रस्थ
११ तक्षशिला १२ राजगृह
१३ भृगुकच्छ १४ उज्जयनी
१५ वैजयन्ती १६ काञ्ची

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध ।

मंगलाचरण ।

" यो विश्वं वेद वेद्यं जननजलनिधेर्भङ्गिनः पारदृश्वा-
पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलंकं यदीयम् ।
तं वन्दे साधुवन्द्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विषंतं-
बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा ॥ "

—श्रीअकलंकभट्ट ।

(१)

भगवान महावीर और महात्मा बुद्धके समयका भारत ।

भारतवर्ष वही है जो पहले था। इसके नाममें, इसके रूपमें, इसके वेषमें, इसके शरीरमें—हां किसी तरफसे भी विरुद्धता नजर नहीं आती। वही पृथ्वी है, वही नीलाकाश है, वही कलकल कलरवकारिणी सरितायें है, वही निश्चल निस्तब्ध गंभीर पर्वत हैं; सचमुच सबकुछ वही वही दृष्टि आता है। जो जैसा था वैसा दृष्टिगत होरहा है—कहीं भी अन्तर दिखाई नहीं पड़ता है। मनुष्य वही आर्य हैं—आर्यखंडके अधिवासी प्रतीत होते हैं। यद्यपि इनके

विषयमें यह अवश्य संशयास्पद है कि वस्तुतः क्या इनमें सर्व ही आर्यवंशज हैं? परन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि मूलमें भारतवासी आर्य हैं और जब वह आर्य हैं तब इनके रीति रिवाज भी प्राचीन आर्यों जैसे होना ही चाहिये? किन्तु यदि यही बात सच है कि जो दशा पहले युगों-युगों पहले थी वही आज है तो फिर संसारमें परिवर्तनशीलताका अस्तित्व कहां रहा? क्या युगों पहलेके भारतवर्षमें और आजके भारतवर्षमें कुछ भी अन्तर नहीं है? भारतवर्षका वास्तविक इतिहास इस बातका स्पष्ट दिग्दर्शन करा देता है कि नहीं भारतवर्ष जैसा ११ वीं १६ वीं शताब्दिमें था वैसा आज नहीं है और जैसा ईसाकी प्रारंभिक शताब्दियोंमें था वैसा उपरोक्त मध्यकालीन शताब्दियोंमें नहीं था तो फिर उसका सनातनरूप क्या रहा? वह जैसा पहले था वैसा आज है यह कैसे माना जाय? बात बिल्कुल ठीक है। भारतका रूप भारतकी दशा और भारतकी आकृति समयानुसार बदलती रही है, परन्तु क्या कभी इस क्षेत्रका अभाव हुआ जो भारतवर्ष कहलाता है अथवा यहांके अधिवासियोंका अन्त हुआ जो भारतवासी कहलाते हैं? नहीं, यह सब बातें ज्योंकी त्यों रही हैं। यहीं अवस्थामें सामान्यतः यहां पर एक गोरखधन्धासा नेत्रोंके आगाड़ी उपस्थित होजाता है किन्तु यदि उसका निर्णय स्याद्वाद सत्यके प्रकाशमें-वस्तु-स्थितिके सबल अनुभव आलोकमें करें तो हम स्थितिको सहज सहज समझ जाते हैं।

संसारमें जितनी भी वस्तुयें हैं वह सत्रूप हैं। इनका कभी नाश नहीं होता किन्तु उनमें परिवर्तन अवश्य होता रहा है।

एक अवस्थाका जन्म होता है तो उसका अस्तित्व होजाता है, परन्तु उसके नाशके साथ ही दूसरी अवस्था उत्पन्न होजाती है। यह क्रम योंही चालू रहा है और अगाड़ी रहेगा। यही संसार है। अब हम सहज समझ सक्ते हैं कि भारतवर्ष मूलमें तो वही है जो युगों पहले था, परन्तु उसकी हर अवस्थामें अनेकों रूपान्तर समयानुसार अवश्य हुए हैं। यही उसका वास्तविक रूप है। अस्तु,

भारतवर्ष मूलमें तो वही है जो भगवान महावीर और म० बुद्धके समयमें था, परन्तु तबकी दशा और अबकी दशा इस प्राचीन भारतको अवश्य ही जमीन आस्मान जैसा अन्तर रखती है। इतना महत अतर और फिर एकता। यही यथार्थ सत्यकी विचित्रता है। आज कर्णफूलों और गलेबन्दसे कामिनीकी शोभा बढ़ रही थी—कल तबियत बदली—कर्णफूल और गलेबन्द नष्ट कर दिये गये—चदनहार और कंगन उसके वक्षस्थल एवं करोंको अलकृत करने लगे। यहा तो पूरा कायापलट होगया, परंतु सोना तो वहीका वही रहा, मूल उसका जब था सो अब है।

अस्तु, भारतवर्ष वही है जो भगवान महावीर और म० बुद्धके समयमें था, परन्तु उसमें हर तरफसे उलट फेरके चिन्ह नजर आते हैं। आज यहाके मनुष्य ही न उतने प्रतिभा और शक्तिसम्पन्न हैं और न उतने दीर्घजीवी हैं। आजके भारतकी नैतिक और धार्मिक प्रवृत्ति न उस समय जैसी है और न उसकी प्रधानताका सिक्का किसीके हृदयपर जमा हुआ है। आज यहाके निवासी बिलकुल दीन हीन रंक बने हुये हैं। बुद्धि, बल, ऐश्वर्य सबका दिवाला निकाले बैठे हैं। तबके भारतका अनुकरण अन्य देश करते थे और उसकी

अपना गुरु मानकर यूनान तकसे उत्सुकतासे देशके विद्वान् जैसे पैरहो (Pyrrho) यहां विद्याध्ययन करने आते थे परन्तु आज उल्टी गंगा बह रही है। सर्व भारतीय इन विदेशोंमें जाकर अपनी धार्मिकता मिला कर रह है और उन देशोंकी नकल आंख मींचकर किए चले जारहे हैं। इस भौतिक-सम्यताकी उपासनाका कितना कटु परिणाम भारतको शीघ्र ही भुगतना पड़ेगा, यह अभी इस देशके अधिवासियोंकी समझमें नहीं आया है परन्तु समयपर उनकी आंखें खोलेगा अवश्य ! और तब वे प्राचीन भारतकी ओर आशासे नेत्रोंसे देखेंगे। इसलिये यहांपर प्राचीन और अर्वाचीन भारतकी तुलना न करके हम उसकी ईसासे पूर्व छठी शताब्दिमें जो दशा थी उसका ही किंचित् दिग्दर्शन कराके उस समयके उन दो चमकते हुये रत्नोंका परिचय प्राप्त करेंगे जिनके प्रति आज प्रायःभीय सम्यताके विद्वान् और बने हुये हैं।

किसी भी देशकी किसी समयकी हालत जाननेके लिये उस देशकी राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितिको जानना आवश्यक है। जबतक उस देशकी इन तीन दशाओंका चित्र हमारे नेत्रोंके आगाड़ी नहीं खिंच जायगा तबतक उस देशका सच्चा और यथार्थ परिचय पाना कठिन है। आज भारतियोंके पतनका यह भी एक मुख्य कारण है कि वे अपने प्राचीन पुरखोंके इतिहाससे प्रायः अनभिज्ञ हैं। प्रत्येक व्यक्तिका अध्ययन उसके प्राचीन आदर्शोंको उसके प्रत्यक्ष सरलताके हृदयमें विठा देनेपर बहुत कुछ अवलम्बित है, अतएव यहांपर हम उस समयके भारतकी इन दशाओंका किंचित् वृत्त निम्नमें अंकित करते हैं।

ईसाकी छठी शताब्दि भारतके लिये ही नहीं बल्कि सारे ससारके लिए एक अपूर्व शताब्दि थी। कोई भी देश ऐसा न बचा था जो इसके क्रांतिकारी प्रभावसे अछूता रहा हो। भारतमें इसका रोमाचकारी प्रभाव खूब ही रङ्ग लाया था। राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक सब ही अवस्थाओंमें इसने रूपान्तर लाकर खड़े कर दिये थे। मनुष्य हर तरहसे सच्ची स्वाधीनताके उपासक बन गये थे, परन्तु इसमें उस समयके दो चमकते हुए रत्नों —भगवान महावीर और म० बुद्ध—का अस्तित्व मूल कारण था।

उस समय यहाकी राजनैतिक परिस्थिति अजब रङ्ग लारही थी। साम्राज्यवादका प्राय सर्व ठौर एकछत्र राज्य नहीं था, प्रत्युत प्रजातत्रके ढगके गणराज्य भी मौजूद थे। एक ओर स्वाधीन राजाओंकी बाकी आनमें भारतीय प्रजा सुखकी नींद सो रही थी, तो दूसरी ओर गणराज्योंकि उत्तरदायित्वपूर्ण प्रबधमें सब लोग स्वतत्रता पूर्वक स्वराज्यका उपभोग कर रहे थे। दोनों ओर रामराज्य छा रहा था। इन गणराज्योंका प्रबध ठीक आजकलके ढगके प्रजातत्रात्मक राज्योंकी तरह किया जाता था। नियमितरूपसे प्रतिनिधियोंका चुनाव होता था, जो राज्यकीय मन्डल अथवा 'साथागार' में जाकर जनताके सच्चे हितकी कामनासे व्यवस्थाकी योजना करते थे। न्यायालयोंका प्रबध भी प्राय आजकलके ढगका था, परन्तु उस समय वकील—बैरिष्टरोंकी आवश्यक्ता नहीं थी। न्यायाधीश स्वय वादी—प्रतिवादीके कथनकी जाच करते थे और यही नहीं कि प्रारभिक न्यायालय जो जाच करदे वही बहाल रहे, प्रत्युत ऊपरके न्यायालय भी स्वय स्थितिकी पड़ताल करते थे। प्रचलित

कानूनोंकी विधान भी मौजूद थी और 'फुटवेन्की तरह मर्ट्रूसल्क' न्यायालय सदृश न्यायालय भी थे। इस प्रकारके प्रजातंत्रात्मक गणराज्यका आदर्श हमें उस समयके लिच्छवि क्षत्रियोंके विषयमें मिलता है। जैन और बौद्ध ग्रंथ इनके विषयमें प्रचुर प्रकाश उपस्थित करते हैं। इन ग्रंथोंके अध्ययनसे मालूम होता है कि उस समय मुख्यतः गणराज्य इसप्रकार थे –

(१) लिच्छिवि गणराज्य–इसमें इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रियोंका आधिपत्य था और इसकी राजधानी विशाला अथवा वैशाली विशेष समृद्धिशाली नगरी थी। इस गणराज्यके प्रधान राजा चेटक थे। बौद्धग्रंथ इस राज्यमें आठ कुलोंके क्षत्रियोंका प्रतिनिधित्व बतलाते हैं परन्तु जैनोंके ग्रंथमें इनकी संख्या नौ है। इस गणराज्यकी राजधानी वैशालीके निकट अवस्थित कुण्डपुर अथवा कुण्डनगरके क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ थे जो भगवान महावीरके पिता थे। वे सम्भवतः इसी गणराज्यमें संमिलित थे और इसी कारण भगवान महावीरका उल्लेख कभी २ 'वैशालीय' के रूपमें हुआ है। यह गणराज्य विशेष समृद्धिशाली था और यहां जैनधर्मकी मान्यता अधिक थी। काशी और कोशलके गणराज्य जिनके प्रतिनिधि (जो 'राजा' कहलाते थे) थे जैन शास्त्र 'कल्पसूत्र' में अठारह बतलाये गये हैं, संभवतः इनसे सम्बंधित थे। इन सब गणराज्योंकी

---

१ देखो वर्तमान लेखककी 'भगवान महावीर' नामक पुस्तक। (पृष्ठ ७०)

२ जैनसूत्र। सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट। भाग २२ पृष्ठ २६६।

३ क्षत्रिय क्लैन्स इन बुद्धिस्ट इण्डिया–(वज्जी और लिच्छिवि) पृष्ठ ४९।

व्यवस्थापक सभा 'वज्जियन राजसघ' कहलाती थी। उस समय इन लोगोंकी शक्ति विशेप प्रवल थी। यहातक कि मगधाधिपति भी सहसा इनपर आक्रमण नहीं कर- सके थे, बल्कि पहले तो स्वय चेटकने एकदफे जाकर राजगृहका घेरा डाल दिया था। और अन्तत राजा श्रेणिक और चेटकमें समझौता होगया था।[1]

(२) शाक्य गणराज्य—इसकी राजधानी कपिलवस्तु थी और यहाके प्रधान राजा शुद्धोदन थे। यही म० बुद्धके पिता थे। बुद्धकी जन्मनगरी यही थी। इनकी भी सत्ता उस समय अच्छी थी।

(३) मल्ल गणराज्यमें मल्लवशीय क्षत्रियोंकी प्रधानता थी। बौद्ध ग्रन्थोंसे पता चलता है कि यह दो भागोंमें विभाजित था। कुसीनारा जिस भागकी राजधानी थी उससे म० बुद्धका सम्वध विशेष रहा था और दूसरे भागकी राजधानी पावा थी, जहासे भगवान महावीरने निर्वाण लाभ किया था। श्वेताम्बरियोंके 'कल्पसूत्र' में यहाके प्रधान राजा हस्तिपाल और नौ प्रतिनिधि राजा बतलाये गये है।

(४) कोलिय गणराज्य था। इसकी राजधानी रामगाम थी और इसमें कोल्यि जातिके क्षत्रियोंका प्रावल्य था।

शेपमें सुन्समार पर्वतका भग गणराज्य, अल्लकप्पके बुलिगण, पिप्पलिवनके मोरीयगण आदि अन्य कई छोटे मोटे गणराज्य भी थे जिनका विशेप वर्णन कुछ ज्ञात नहीं है। इनके अतिरिक्त दूसरी प्रकारकी राज्यव्यवस्था स्वाधीन राजाओंकी थी। इनमें विशेप प्रख्यात प्रजाधीश निम्नप्रकार थे —

(१) मगध—के सम्राट् श्रेणिक विम्बसार। इनकी राजधानी

---

१ देखो वर्तमान लेखकका 'भगवान महावीर- पृष्ठ १४३।

राजगृह थी। यह पहले बौद्ध थे, परन्तु उपरांत रानी चेलनीके प्रभावसे जैनधर्मानुयायी हुए थे।[1]

(२) उत्तरीय कौशल—यह राज्य मगधसे उत्तर पश्चिमकी ओर था; जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी। यहांके राजा प्रसेनजित (पसेनदी) थे। उपरांत उनके पुत्र विदुराम राज्याधिकारी हुए थे।

(३) कौशलसे दक्षिणकी ओर वत्स राज्य था और उसकी राजधानी कौशाम्बी यमुना किनारे थी। यहांके राजा उदेन (उदायन) थे, जिनके पिताका नाम परन्तप बौद्ध शास्त्रोंमें बतलाया गया है। जैन शास्त्रोंमें जो राजा उदायन अपने सम्यक्त्वके लिये प्रसिद्ध हैं वह इनसे भिन्न हैं। ये शास्त्रोंमें इनके पिताका नाम शतानीक बतलाया है। तथापि यही नाम दि० सम्प्रदायके उत्तरपुराणमें भी बतलाया गया है। *

(४) इससे दक्षिणकी ओर अवन्तीका राज्य स्थित था; जिसकी राजधानी उज्जयनी थी और यहांके राजा चन्द्रप्रद्योत विशेष प्रख्यात थे। जैन शास्त्रोंमें इनके विषयमें भी प्रचुर विवरण मिलता है।

(५) कलिङ्गके राजा जितशत्रु थे और यह भगवान महावीरके फूफा थे।

(६) अङ्ग पहले दधिवाहन राजाके आधीन स्वतंत्र राज्य था; परन्तु उपरांत मगधाधिपके आधीन होगया था और यहांके राजा कुणिक अजातशत्रु हुये थे जो सम्राट् श्रेणिकके पुत्र थे।

---

१ देखो हमारा 'भगवान महावीर' पृष्ठ १२२-१४८।
२ बुद्धिस्ट इण्डिया पृष्ठ ३।
३ एन एपीटोम ऑफ जैनिज्म पृष्ठ ६५।
उत्तर पुराण पृष्ठ ६१४।

इनके अतिरिक्त और भी छोटे मोटे राज्य थे, जिनका विशेष परिचय यहापर कराना दुष्कर है। इतना स्पष्ट है कि उस समय जो प्रख्यात राज्य थे, फिर चाहे वह गण राज्य थे अथवा स्वाधीन साम्राज्य, उनकी सख्या कुल सोलह थी। मि० रीस डेविड्स उनकी गणना इस प्रकार करते हैं —

(१) अङ्ग–राजधानी चम्पा, (२) मगध–राजधानी राजगृह, (३) काशी–रा० धा० बनारस, (४) कौशल (आधुनिक नेपाल)–रा० धा० श्रावस्ती, (५) वज्जियन–रा० धा० वैशाली, (६) मल्ल रा० धा० पावा और कुसीनारा, (७) चेतीयगण–उत्तरीय पर्वतोंमें अवस्थित था, (८) वन्स या वत्स–रा० धा० कौशाम्बी, (९) कुरु–राजधानी इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली)। इसके पूर्वमें पाञ्चाल और दक्षिणमें मत्स्य था। रत्थपाल कुरुवंशीय सरदार थे, (१०) पाञ्चाल, यह कुरुके पूर्वमें पर्वतों और गगाके मध्य अवस्थित था और दो विभागोंमें विभाजित था, रा०धा० कपिल्ल और कन्नौज थी, (११) मत्स्य–कुरुके दक्षिणमें और जमनाके पश्चिममें था, (१२) सूरसेन–जमनाके पश्चिममें और मत्स्यके दक्षिण-पश्चिममें था,–रा०धा०मथुरा, (१३) अस्सक–अवन्तीके उत्तर-पश्चिममें गोदावरीके निकट अवस्थित था–रा० धा० पोतन या पोतलि, (१४) अवन्ती–रा०धा० उज्जयनी, ईशाकी दूसरी शताब्दि तक यह अवन्ती कहलाई, परन्तु ७वीं या ८वीं शताब्दिके उपरात यह मालव कहलाने लगी, (१५) गान्धार–आजकलका कन्धार है–रा०धा० तक्षशिला, राजा पुक्कु साति और (१६) कम्बोज–उत्तर-पश्चिमके ठेठ छोरपर थी, राजधानी द्वारिका थी।[१]

---

१ बुद्धिस्ट इण्डिया पृष्ट २३।

इन राज्योंमें परस्पर मित्रता थी और बहुधा वे एक दूसरेसे सम्बंधित भी थे परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इनमें कभी परस्पर झगड़े न चलते हों। यद्यपि संग्राम होनेका उल्लेख भी हमें शास्त्रोंमें मिलता है, किन्तु इतना स्पष्ट है कि इन राज्योंकी प्रजा विशेष शांति और सुखका उपभोग करती थी। उसे ऐसा भय नहीं था कि वह अपनी उन्नत प्रगति सानन्द न कर सकी। साम्राज्यके आधीन भी वह सुखी थी और गणराज्योंकी छत्रछायामें उसे किसी बातकी तकलीफ नहीं थी। इस प्रकार उस समयकी राजनैतिक परिस्थितिका वातावरण था। यह सर्वथा स्वाधीन भावोंके उपयुक्त था। सचमुच आजकी दुनियाके लिए यह अनुकरणीय आदर्श है।

उस समयकी सामाजिक परिस्थिति भी अजीब हालतमें थी। उस समयके पहले एक दीर्घकालसे ब्राह्मणोंकी प्रधानताका सिक्का समाजमें जम रहा था। ब्राह्मणोंने सामाजिक व्यवस्थाको एकतरहसे अपनी आजीविकाका साधन बना लिया था। उसी अपेक्षा उन्होंने धर्मशास्त्रोंके पठन पाठनका अधिकार इतरवर्णों—अर्थात् क्षत्रिय, वैश्य शूद्रों—को नहीं दे रक्खा था प्रत्युत उनके आत्मकल्याणके लिये अपने आपको पुजवाना ही इष्ट रक्खा था। जनताको यह बताया था कि तुम अमुक प्रकार यज्ञ आदि क्रियाओंको कराकर हमारी संतुष्टि करो तो तुमको स्वर्गसुखकी प्राप्ति होगी और इस स्वर्गसुखके लालचमें लोग उस समय भी बकरोंकी निरापराध मूक पशुओंकि रक्तसे रंगते नहीं हिचकते थे। यहाँ भी शूद्रादि मनुष्योंको बहुत ही नीची दृष्टिसे देखा जाता था। परिणामतः

राज्यकीय स्वतन्त्रताके उस युगमें लोगोंको ब्राह्मणोंकी यह भेद-व्यवस्था और एकाधिपत्य अखर उठा। प्रचलित सामाजिक व्यवस्थाके बन्धनोंका उल्लंघन किया जाने लगा। सचमुच वर्तमानमें जो सामाजिक क्रान्ति कुछ अस्पष्ट रूपमें दिखाई पड़ रही है, ठीक वैसी ही क्रान्ति उस समयके समाजमें अपना रंग ला रही थी। ब्राह्मणोंने जहां स्वार्थभरे कठोर नियम सिरज रक्खे थे वहां बिल्कुल ढिलाईसे काम लिया जाने लगा। सामाजिक नियमोंमें सबसे मुख्य विवाह नियम है सो उस समय इसका क्षेत्र विशेष विस्तृत था और इसकी वह दुर्दशा नहीं थी जो आजकल होरही है। युवावस्थामें वर-कन्याओंके सराहनीय विवाह सम्बन्ध होते थे। उनमें गुणोंका ही लिहाज किया जाता था। जैन और बौद्धशास्त्रोंमें इस व्याख्याकी पुष्टिमें अनेकों उदाहरण मिलते हैं। ऐसा मालूम होता है कि उस जमानेमें व्यक्तिगत विवाह सम्बन्धकी स्वाधीनताने इतना उग्ररूप धारण किया था कि किन्हीं २ राज्योंमें विवाह-सम्बन्धके खास नियम भी बना लिये गये थे। इस व्याख्याके अनुरूप अभीतक केवल एक वैशालीके लिच्छवियोंके विषयमें विदित है। उनके यहां यह नियम था कि वैशालीकी कन्यायें वैशालीके बाहर न दी जावें।[१] तथापि जिस तरह वैशाली तीन खण्डों (१) क्षत्रिय खण्ड, (२) ब्राह्मण खण्ड और (३) वैश्य खण्ड-में विभाजित थी उसी तरह इनके निवासियोंमें अपने और अपनेसे इतर खण्डकी कन्यासे विवाह करनेका नियम नियत था। शायद इस ही कारणसे

---

१ देखो विवाहक्षेत्रप्रकाश। २ देखो 'हिस्टॉरीकल ग्लीनिंग्स' पृष्ठ ७३।

'सम्राट् श्रेणिकके साथ राजा चेटक अपनी कन्याका विवाह नहीं करेंगे' यह संभावना जैन शास्त्रोंमें की गई है। यद्यपि वहां इसका कारण राजा चेटकका जैनत्व और सम्राट् श्रेणिकका बौद्धत्व बतलाया गया है। इसमें भी संशय नहीं है कि राजा चेटक जैन धर्मानुयायी थे परन्तु इससे वैशालीमें उक्त प्रकार नियम होनेमें कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। वस्तुतः वैशाली, जहां जैनधर्मका प्रचार प्रारम्भसे अधिक था, यदि अपनी सामाजिक परिस्थितिको नये सुधारके प्रचलित रिवाजोंसे कुछ विलक्षण रखनेमें गर्व करे तो कोई असम्भव नहीं क्योंकि यह हमको ज्ञात ही है कि लिच्छविगण बड़े स्वाभिमानी थे और वह अपने उच्चवंशी जन्मके कारण सारी समाजमें अपना सिर ऊंचा रखते थे। किन्तु इससे भी उस समयकी सामाजिक क्रान्तिके अस्तित्वका समर्थन होता है, जिसके विषयमें मान्य विद्वान् महाशय स मि रीसडेविड्स भी लिखते हैं कि उस समय—

"ऊपरके तीन वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्री वैश्य) तो वास्तव मूलमें एक ही थे क्योंकि राज्य, सरदार और विप्रादि तीसरे वर्ण वैश्यके ही वंशज थे; जिन्होंने अपनेको उच्च सामाजिक पदपर स्थापित कर लिया था। वस्तुतः ऐसे परिवर्तन होना जरा कठिन थ परन्तु ऐसे परिवर्तनोंका होना संभव था। गरीब मनुष्य राज्य सरदार (Nobles) बन सके थे और फिर दोनों ही ब्राह्मण होसके थे। ऐसे परिवर्तनोंके अनेकों उदाहरण ग्रन्थोंमें मिलते हैं।......

१ देखो 'श्रेणिकचरित्र'।

२ देखो दी बुद्धिस्ट इंडिया पृ० ५२।

इसके अतिरिक्त ब्राह्मणोंके क्रियाकाडके एव सर्व प्रकारकी सामाजिक परिस्थितिके पुरुप-स्त्रियोंके परस्पर सम्बन्धके भी उदारण मिलते हैं और यह उदाहरण केवल उच्च परिस्थितिके ही पुरुप और नीच कन्याओंके सबधके नहीं है, वल्कि नीच पुरुष और उच्च स्त्रियोंके भी हैं।"[१]

अतएव वस्तुत उस समय ऐसी सामाजिक परिस्थित होना कुछ अचरज भरी वात नहीं है। स्वय म० बुद्ध और भगवान महावीरके उपदेशमे सामाजिक परिस्थितिकी उल्झी गुत्थी प्राय सुलझ गई थी। म० बुद्धने स्पष्ट रीतिसे कहा था कि कोई भी मनुष्य जन्मसे ही नीच नहीं होता है वल्कि वह द्विजगण जो हिंसा करते नहीं हिचकते हैं और हृदयमें दया नहीं रखते हैं, वही नीच हैं। 'वासेट्ठसुत्त' में जब ब्राह्मणोंसे वाद हुआ तब बुद्धने कहा कि "जन्मसे ब्राह्मण नहीं होता है, न अब्राह्मण होता है किंतु कर्मसे ब्राह्मण होता है और कर्मसे ही अब्राह्मण होता है।"[३] भगवान महावीरने अपने अनेकात तत्वके रूपमें इस परिस्थितिको विलकुल ही स्पष्ट कर दिया। उन्होंने कहा कि जन्मसे भी ब्राह्मण आदि होता है और कर्मसे भी। आचरणपर ही उसका महत्व अवलम्बित बतलाया। स्पष्ट कहा है कि—

"सताणकमेणागय जीवयणरस्स गोदमिदि सण्णा।
उच्च नीच चरण उच्चं नीचं हवे गोदं ॥"

॥ गोमटसार ॥

---

१ देखो 'बुद्धिस्ट इंडिया' पृष्ठ ५५-५९।
२ सुत्तनिपात (SBE) ११७।
३ सुत्तनिपात (SBE) ११५।

'सम्राट् श्रेणिकके साथ राजा चेटक अपनी कन्याका विवाह नहीं करेंगे यह संभावना जैन शास्त्रोंमें की गई है। यद्यपि यहां इसका कारण राजा चेटकका जैनत्व और सम्राट् श्रेणिकका बौद्धत्व बतलाया गया है। इसमें भी संशय नहीं है कि राजा चेटक जैन धर्मानुयायी थे परन्तु इससे वैशालीमें उक्त प्रकार विवाह होनेमें कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। वस्तुतः वैशाली यद्यपि जैनधर्मका प्रचार प्रारम्भसे अधिक था, यदि अपनी सामाजिक परिस्थितिके गर्वसे गुप्त रूपसे प्रचलित रिवाजोंमें कुछ विलक्षण रखनेमें यत्न करे तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि यह हमको ज्ञात ही है कि लिच्छविगण बड़े स्वाभिमानी थे और वह अपने उच्चवंशी जन्मके कारण भारी समाजमें अपना सिर ऊंचा रखते थे। किन्तु इससे भी उस समयकी सामाजिक स्थितिके अस्तित्वका समर्थन होता है, जिसके विषयमें मान्य विद्या महार्णव रा. मि. रीसडेविड्स भी लिखते हैं कि उस समय—

"ऊपरके तीन वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य) तो वास्तव मूलमें एक ही थे क्योंकि राजा, सरदार और विप्र तीसरे वर्ण वैश्यके ही सदस्य थे; जिन्होंने अपनेको उच्च सामाजिक पदपर स्थापित कर लिया था। वस्तुतः ऐसे परिवर्तन होना यद्यपि कठिन थे परन्तु ऐसे परिवर्तनोंका होना संभव था। गरीब मनुष्य राजा सरदार (Nobles) बन सके थे और फिर दोनों ही ब्राह्मण होसके थे। ऐसे परिवर्तनोंके अनेकों उदाहरण ग्रन्थोंमें मिलते हैं।... ...

१ देखो 'श्रेणिकचरित्र'।

२ देखो दी बुद्धिस्ट इंडिया पृ० ६०।

स्थामें हलचल खड़ी हो गई थी, क्योंकि भगवान नेमिनाथके दीर्घ अन्तराल कालमें ब्राह्मण सम्प्रदायका प्राबल्य अधिक बढ़ गया था और विप्रगण अपने स्वार्थमय उद्देश्योंकी पूर्तिमें मनुष्य समाजके प्रारम्भिक स्वत्वोंको अपहरण कर चुके थे। इस दशामें जब भगवान पार्श्वनाथने जनताको वस्तुस्थिति बतलाई तो उसके कान खड़े हो गये, और उसमेंसे प्रभावशाली व्यक्ति अगाड़ी आकर ब्राह्मणों द्वारा प्रचलित सामायिक व्यवस्थाके विरुद्ध लोगोंको उपदेश देने लगे। फलत एक सामाजिक क्रान्तिसी उपस्थित हुई। जिसका शमन म० बुद्ध और फिर पूर्णत भगवान महावीरके अपूर्व उपदेशसे हुआ। जिन सुधारोंकी आवश्यक्ता थी, वह सुगमतासे पूर्ण हुए और मनुष्योंमें आपसी भेद अधिक बढ़ रहे थे उनका अन्त हुआ। तत्कालीन जैन और बौद्ध विवरणोंको ध्यान पूर्वक पढ़नेमें यही परिस्थिति प्रति भाषित होती है। सचमुच इस समय भी आर्यत्वकी रक्षाके लिये भगवान महावीरके दिव्य सदेशको दिगन्तव्यापी बनानेकी आवश्यक्ता है। मनुष्य समाज उससे विशेष लाभ उठा सक्ता है।

जिस तरह हम सामाजिक परिस्थितिके सम्बन्धमें देखते हैं कि उस समय उसमें एक क्रान्तिसी उपस्थित थी, ठीक यही दशा धार्मिक वातावरणमें होरही थी। सर्वत्र अशान्तिका साम्राज्य था। ईसासे पूर्व आठवीं शताब्दिमें भगवान पार्श्वनाथने जो उपदेश दिया उसका जो प्रभावकारी फल हुआ उसका दिग्दर्शन हम ऊपर कर चुके हैं। सचमुच लोगोंको राज्यनैतिक और सामाजिक स्वतन्त्रताके उस-समृद्धशाली जमानेमें अपने असली स्वाधीनता—आत्मस्वातंत्र्यको प्राप्त करनेकी धुन सवार होगई थी और वह प्रचलित

अर्थात्–संतान क्रमसे चले आये हुए जीवके आचरणकी गोत्र संज्ञा है। जिसका ऊँचा आचरण हो उसका ऊँच गोत्र और जिसका नीच आचरण हो उसका नीच गोत्र है।" यह नहीं है कि यदि कोई व्यक्ति नीच वर्णमें उत्पन्न हुआ है और वह सत्संगतिमें पड़कर अपने आचरणको सुधारकर उन्नत बना ले तो भी वह नीच बना रहे प्रत्युत उसके उच्चाचरणी होने पर उसका गोत्र भी यथा समय उच्च हो जायेगा। भगवान महावीरके इस यथार्थ संदेशसे जनताको वास्तविक परिस्थितिका पता चल गया और वह आपसके अमानुषी व्यवहारको तिलांजलि देकर मनुष्य व्यवहार करने पर उतारु हो गई। आधुनिक विद्वान् भी इस अपूर्व घटना पर आश्चर्य प्रगट करते हैं, किन्तु सत्यके साम्राज्यमें ऐसी घटना-ओंका घटित होना स्वाभाविक है।[1]

इस तरह उस समयकी सामाजिक परिस्थिति भी इस समयसे विशेष उदार थी और छोटी उपजातियोंको उसमें स्थान शेष नहीं रहा था। भगवान पार्श्वनाथके[2] दिव्योपदेशसे सामाजिक [illegible]

---

१ कवि सम्राट् डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुरने स्पष्ट शब्दोंमें भगवान महावीरके इस विशेष प्रभावका महत्व स्वीकार किया है। देखो "भगवान महावीर" पृष्ठ २०१।

२ भगवान पार्श्वनाथ, भगवान महावीरके पूर्वगामी और जैन धर्मके माने हुए २४ तीर्थंकरोंमें २३वें थे। आधुनिक विद्वानोंने इनको ईसासे ८वीं–९वीं शताब्दिका ऐतिहासिक व्यक्ति स्वीकार किया है। २२वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ इनसे बहुत पहले हुए थे। वे श्री कृष्णके समकालीन थे।

पोषक विप्रोंकि साथ २ चले आरहे थे। अन्तत भगवान पार्श्वनाथके उपदेशको सुनकर इनमेंसे भी ऋषिगण अलग होकर अपनी स्वतंत्र आम्नाय "आजीवक" नामक बना चुके थे[1]। इनकी गणना दूसरे दलमें की जाती है। यह दूसरा दल ज्ञान और ध्यानके साथ २ चारित्रको विशेष आदर देता था[2]। इसकी मान्यता थी कि विना चारित्रके मनुष्य आत्मोन्नति कर ही नहीं सक्ता है। इस दलके प्रख्यात प्रवर्तकोंकी सख्या म० बुद्धने अपने सिवाय छह बतलाई है। इनको वह 'तित्थिय' कहते थे। इनके नाम इस तरह बताये गये हैं (१) पूर्णकाश्यप (२) मस्करि गोशालिपुत्र (मक्खलि गोशाल) (३) सजयवैरत्थी पुत्र (४) अजितकेशकम्बलि (५) पकुढकात्यायन और (६) निगन्थनातपुत्त (महावीर)[3]। और यह प्रत्येक अपने२ "सघके नेता, गणाचार्य, तीर्थंकर, तत्ववेत्तारूपमें विशेष प्रख्यात्, मनुष्यों द्वारा पूज्य अनुभवशील और दीर्घ आयुके समन (श्रमण)"[4] बतलाये गए हैं। इनमें म० बुद्ध और भगवान महावीर विशेष प्रख्यात् हैं। अतएव इनके विषयमें खासी तौरपर परिचय पानेका प्रयत्न निम्नके पृष्ठोंमें किया जायगा, परन्तु शेषके पाच मतप्रवर्तकोंकि विषयमें भी यहापर किंचित ज्ञान प्राप्त कर लेना बुरा नहीं है।

पहले पूर्णकाश्यपके विषयमें बतलाया गया है कि वह नग्न श्रमण था। नग्न श्रमण वह कैसे हुआ इसके लिये एक अटपटी

१ मेरा "भगवान महावीर" पृष्ठ १७७-१७९।

२ जैसे म० बुद्धका 'मध्यमार्ग' (महावग्ग १ ६) और जैनियोंका 'मोक्षमार्ग (तत्वार्थसूत्र १-१)

३ दिव्यावदान् पृ० १४३। ४ दीघनिकाय प्रथम भाग पृष्ठ ४७ ४८।
५ मेरा "भगवान महावीर" पृ० १८४।

लोग क्रियाकाण्डोंको हेय दृष्टिसे देखने लगे थे। इस दशामें उस समय धार्मिक वातावरणमें दो विभाग स्पष्टतः नजर आते थे। एक तो प्राचीन क्रियाओं और यज्ञ रीतियोंका पालक ब्राह्मण वर्ग था और दूसरा नवीन सुधारको समक्ष लानेवाला 'समण' (श्रमण) दल था। यह द्वितीय दल अनेक मतिप्रवर्तकोंमें विस्तृत मिलता था। जैन शास्त्र इनकी संख्या तीन सौ त्रेसठ बतलाते हैं, परन्तु बौद्ध सिर्फ त्रेसठ ही। इस मतभेदका निष्कर्ष यही प्रतीत होता है कि उस समय अनेक विविध पंथ प्रचलित थे। सामाजिक स्थितिके दौरदौरेमें जो कोई भी ब्राह्मणके विरुद्ध कितने भी नजर सिद्धान्तोंको लेकर खड़ा हो जाता था, उसीको लोग अपनाने लगते थे। विशेषकर क्षत्रिय वर्ग ऐसे विरोधकोंका सहायक बन रहा था और वह उनके लिये मंदिर आराम आदि भी बनवा देता था।

प्रथम ब्राह्मण वर्ग विशेषकर यज्ञ क्रियाओं और पशु बलिदानको मुख्यता देता था और उनमें जो विशेष उन्नति किए हुए परिव्राजक लोग थे, जिनकी उपनिषद् आदि रचनायें प्रसिद्ध हैं वह ज्ञान और ध्यानको ही आत्मस्वातंत्र्यके लिये आवश्यक समझते थे। तथापि भगवान पार्श्वनाथके परिश्रमसे ही [illegible]

१ सुत्तनिपात (S. B. E. Intro) XII.

२ [illegible] गाथा नं ७१।

३ सुत्तनिपात (S. B. E.) ५१८।

४ [illegible] पृष्ठ १७।

५ धर्मसूत्र ११४; न्यायसूत्र १११ और ब्रह्मसूत्र १-१-४।

'अक्रियावाद'में की है[1]। यद्यपि दिगम्बर शास्त्र 'दर्शनसार' में मस्करि गोशालि पुत्र (मक्खलिगोशाल) और पूर्णकाश्यपको एक व्यक्ति मानकर इनके मतकी गणना 'अज्ञानवाद'में की है।[2] इस मतभेदका कारण अन्यत्र देखना चाहिये। पूर्णकाश्यपकी इसप्रकार आत्माके निष्क्रियपनेकी मान्यताका आधार ब्राह्मण ऋषि भारद्वाज और नचिकेतोंके सिद्धान्तमें ख्याल किया जाता है, यद्यपि श्वे० टिकाकार शीलाङ्क काश्यपके सिद्धान्तोंकी सादृश्यता साख्यमतसे बतलाता है। (देखो प्री० बुद्धिस्टक इन्डियन फिलासफी पृष्ठ २७९) परन्तु यदि हम भगवान पार्श्वनाथके उपदेश पर दृष्टि डालें तो हम जान जाते है कि काश्यपने भगवान पार्श्वनाथकी निश्चयनयका महत्व भुलाकर केवल एक पक्ष केवल अपने मतकी पुष्टी की थी। निश्चयनयकी अपेक्षा मूलमें आत्मा सब सासारिक क्रियायोंसे विलग है, यही भगवान पार्श्वनाथका उपदेश था। अतएव काश्यप पर उन्हींके उपदेशका प्रभाव पड़ना चाहिए।

इसके बाद दूसरे मतप्रवर्तक मक्खलिगोशाल थे। यह भी नग्न रहते थे। यह पहले भगवान पार्श्वनाथकी शिष्यपरपराके एक मुनि थे, परन्तु जिस समय भगवान महावीरके समवशरणमें इनकी नियुक्ति गणधरपद पर नहीं हुई तो यह रुष्ट होकर श्रावस्तीमें आकर आजीवकोंके सम्प्रदायके नेता बन गये और अपनेको तीर्थ-

---

१ हिस्टॉरिकल ग्लीनिन्ग्ज पृष्ठ ३६।

२ इसका क्या कारण है, इसके लिए हमारा लेख "वीर" वर्ष ३ के 'जयंती अङ्क' और 'दिगम्बर जैन' के वीर नि० म० २४५२ के विशेषाङ्कमें देखना चाहिये।

न्तम् करिस्सन्ति)।[1] पाताञ्जलिने भी अपने पाणिनिसूत्रके भा गोशालके सम्बन्धमें कुछ ऐसा ही सिद्धान्त निर्दिष्ट किया है। वहा लिखा है कि वह 'मस्करि' केवल वासकी छडी हाथमें लेनेके कारण नहीं कहलाता था प्रत्युत इसलिए कि वह कहता था-" कर्म मत करो, कर्म मत करो, केवल शान्ति ही वाञ्छनीय है।" (मा कृत कर्माणि, मा कृत कर्माणि इत्यादि)[2]। 'इसतरह मक्खलिगोशालकी मान्यता थी, परन्तु अन्तमें भगवान महावीरके दिव्य उपदेशके धवल प्रकाशमें मक्खलिगोशालका महत्त्व जाता रहा और वह एक पागलकी भाति मृत्युको प्राप्त हुआ। श्वेताम्बर शास्त्रोंमें इसे भगवान महावीरका शिष्य बतलाया है,[5] परन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि भगवान महावीर छद्मस्थ अवस्थामें उपदेश देते अथवा बोलते नहीं थे, यह स्वय श्वेताम्बर शास्त्र प्रकट करते हैं[6]। ऐसी दशामें उस अवस्थामें गोशालका भगवानका शिष्य होना असगत है।

श्वे० के इस मिथ्या कथनके आधारसे लोगोंका ख्याल है कि महावीरजीने गोशालसे बहुत कुछ सीखा था और वह नग्न इसीके देखादेखी हुये थे, परतु ऐसी व्याख्यायें निरी निर्मूल है, यह हम अन्यत्र बता चुके हैं। (वीर वर्ष ३ अक १२-१३) स्वय श्वे० ग्रन्थ भगवतीसूत्रमें कहा गया है कि जब गोशाल महावीरजीसे मिला था तब वह वस्त्र पहने हुए था और जब

---

१ हिस्टॉरीकल ग्लीनिंग्स पृष्ठ ३९। २ आजीविक्स प्रथम भाग पृष्ठ १९। ३ हमारा ' भगवान महावीर ' पृष्ठ १७९। ४ दी हार्ट ऑफ जैनीज्म पृष्ठ ६०। ५ भगवतीसूत्र १५। ६ आचारागसूत्र (S. B E) पृष्ठ ८०-८७

कर अज्ञानका यह उपदेश देने लगा कि ज्ञानसे मोक्ष नहीं होता, अज्ञानसे ही मोक्ष होता है। देव या ईश्वर कोई है ही नहीं। इसलिए स्वेच्छापूर्वक शून्यका ध्यान करना चाहिये। भावसंग्रह नामक प्राचीन दि० जैन ग्रन्थमें इसके विषयमें यही कहागया है, परन्तु यहां पर किसी कारणवश मस्करि और पूरणका उल्लेख एक साथ किया है, यथा —

"मसयरि-पूरणरिसिणो उप्पण्णो पासणाहतित्थम्मि।
सिरिवीर समवसरणे अगहियझुणिणा नियत्तेण ॥१७६॥
बहिणिग्गएण उत्तं मज्झं एयारसांगधारिस्स।
णिग्गइ झुणी ण, अरुहो णिग्गय विस्सास सीसस्स ॥१७७॥
ण मुणइ जिणकहिय सुयं संपइ दिक्खाय गहिय गोयममो।
विप्पो वेयब्भासी तम्हा मोक्खं ण णाणाओ ॥१७८॥
अण्णाणाओ मोक्खं एवं लोयाण पयडमाणो हु।
देवो अ णत्थि कोई सुण्णं झाएह इच्छाए ॥ १७९ ॥

इसके अतिरिक्त 'दर्शनसार' और 'गोम्मटसार जीवकाण्ड' में भी मस्करिगोशालकी अज्ञानमतमें गणना की है। बौद्धोंके समन्न सुत्तमें भी गोशालकी इस मान्यताका उल्लेख इस प्रकार मिलता है कि 'अज्ञानी और ज्ञानवान संसारमें भ्रमण करते हुए समान रीतिसे दुःखका अन्त करते हैं (सन्धाविता संसरित्वा दुःखस्स

---

१ इस सम्बन्धमें विशेष जानने के लिये हमारी पुस्तक भगवान महावीर में मस्करि-गोशाल और पूरण कस्सप का वर्णन देखना चाहिये।

(अग्निवैश्यायन)के नामसे किया है, परन्तु हम जानते हैं कि भगवान महावीरका गोत्र काश्यप था और उनके गणधर सुधर्मास्वामीका अग्निवैश्यायन गोत्र था[1]। इस तरह महावीरजीके शिष्यकी गोत्र अपेक्षा उनका उल्लेख करके बौद्धाचार्यने भी जैनाचार्यकी भांति गल्ती की है। अतएव इसमें सशय नहीं कि मौद्गलायन भगवान पार्श्वनाथकी शिष्यपरपराका एक जैनमुनि था। जैनग्रन्थोंमें इनके गुरुका नाम नही दिया गया है, परन्तु बौद्धशास्त्र इनके गुरूका नाम सजय अथवा संजयवैरत्थीपुत्र* बतलाते हैं। जैनशास्त्रोंमें भी हमें इस नामके एक जैन मुनिका अस्तित्व उस समय मिलता है। यह चारणऋद्धिधारी मुनि थे और इनको कतिपय शङ्कायें थीं जो भगवान महावीरके दर्शन करते ही दूर होगई थीं[2]। श्वेताम्बरोंके उत्तराध्ययन सूत्रमें भी एक सजय नामक जैन मुनिका उल्लेख है[3]। ऐसी अवस्थामें जैन मुनि मौद्गलायनके गुरू सजयका जैनमुनि होना बिल्कुल सभव है और यह सभवत चारणऋद्धिधारी मुनि सजय ही थे। इसकी पुष्टि दो तरहसे होती है। पहिले तो सजयकी शिक्षायें जो बौद्धशास्त्रोंमें अंकित हैं वह जैनियोंके स्याद्वाद सिद्धा-

---

१ जैनसूत्र (S B E) भाग २ XXI.

* बौद्ध शास्त्रोंमें सजय वैरत्थीपुत्र और सजय परिव्राजक नामक दो व्यक्तियोंका उल्लेख मिलता है। विद्वानोंको सशय है कि यह दोनों एक व्यक्ति थे। किन्तु महावस्तु (III P 59) में इन दोनों व्यक्तियोंको एक ही बतलाया है। अतएव यहा परिव्राजकके अर्थ साधारण विचरते हुए भिक्षुके समझना चाहिये। इसी भावमें यह शब्द पहले व्यवहृत होता था। देखो हिस्टॉरीकल ग्लीनिंग्स पृष्ठ ९

२ महावीर चरित्र पृष्ठ २५५। ३ उत्तराध्ययन (S. B. E) पृष्ठ ८२।

महावीरजीने उसे शिष्य बनाया तब उसने अपने व्याख्यान बंद किये थे। (देखो उपासकदशासूत्र Biblio. Ind. का परिशिष्ट) इस कथामें महावीरजी पर गोशालका प्रभाव पड़ा बताना कोरा भ्रम ही है।

तीसरे संजयवैरत्थीपुत्रको बौद्धशास्त्रोंमें मोग्गलान (मौद्गलायन) और सारीपुत्तका गुरु बतलाया गया है[१]। उपरान्त संजयके यह दोनों शिष्य बौद्धधर्ममें दीक्षित होगये थे। मौद्गलायनके विषयमें हमें श्री अमितगति आचार्यके निम्न श्लोकसे विदित होता है कि वह पहिले जैन मुनि था–

"रुष्टः श्रीवीरनाथस्य तपस्वी मौडिलायनः।
शिष्यः श्रीपार्श्वनाथस्य विदधे बुद्धदर्शनम्॥६॥
शुद्धोदनसुतं बुद्धं परमात्मानमब्रवीत्।'

अर्थात्–"पार्श्वनाथकी शिष्यपरम्परामें मौडिलायन नामक तपस्वी था। उसने महावीर भगवान्‌से रुष्ट होकर बुद्धदर्शनको चलाया और शुद्धोदनके पुत्र बुद्धको परमात्मा कहा।" श्लोकके इस कथनपर शायद कतिपय पाठक ऐतराज करें; क्योंकि बौद्धदर्शनके संस्थापक तो स्वयं म० बुद्ध थे परन्तु बौद्ध शास्त्रोंमें मौडिलायन (मौद्गलायन) और सारीपुत्र विशेष बलवान् थे और वे बौद्धधर्मके प्रधान प्रचारक थे, ऐसा लेख है। इस अपेक्षा यदि मौद्गलायनको ही बौद्धदर्शनका प्रवर्तक बतलाया गया है तो कुछ अत्युक्ति नहीं है। स्वयं बौद्ध ग्रन्थोंमें भी भगवान महावीरके सम्बन्धमें ऐसी ही गलती की गई है। उनमें एक स्थान पर उनका उल्लेख 'अग्गिवेसन'

१ महावग्ग १।२३–२४। २ डायलॉग्स ऑफ बुद्ध पृ० ७५।

(अग्निवेश्यायन)के नामसे किया है, परन्तु हम जानते हैं कि भगवान महावीरका गोत्र काश्यप था और उनके गणधर सुधर्मास्वामीका अग्निवेश्यायन गोत्र था[1]। इस तरह महावीरजीके शिष्यकी गोत्र अपेक्षा उनका उल्लेख करके बौद्धाचार्यने भी जैनाचार्यकी भांति गल्ती की है। अतएव इसमें सशय नहीं कि मौद्गलायन भगवान पार्श्व-नाथकी शिष्यपरपराका एक जैनमुनि था। जैनग्रन्थोंमें इनके गुरुका नाम नहीं दिया गया है, परन्तु बौद्धशास्त्र इनके गुरूका नाम सजय अथवा सजयवैरत्थीपुत्र* बतलाते हैं। जैनशास्त्रोंमें भी हमें इस नामके एक जैन मुनिका अस्तित्व उस समय मिलता है। यह चारणऋद्धिधारी मुनि थे और इनको कतिपय शङ्कायें थीं जो भग-वान महावीरके दर्शन करते ही दूर होगई थीं[2]। श्वेताम्बरोंकि उत्तराध्ययन सूत्रमें भी एक सजय नामक जैन मुनिका उल्लेख है[3]। ऐसी अवस्थामें जैन मुनि मौद्गलायनके गुरू सजयका जैनमुनि होना बिल्कुल सभव है और यह सभवत चारणऋद्धिधारी मुनि सजय ही थे। इसकी पुष्टि दो तरहसे होती है। पहिले तो सजयकी शिक्षायें जो बौद्धशास्त्रोंमें अकित हैं वह जैनियोंके स्याद्वाद सिद्धा-

---

१ जैनसूत्र (S B E) भाग २ XXI.

* बौद्ध शास्त्रोंमें सजय बेरत्थीपुत्र और संजय परिव्राजक नामक दो व्यक्तियोंका उल्लेख मिलता है। विद्वानोंको सशय है कि यह दोनों एक व्यक्ति थे। किन्तु महावस्तु (III P, 59) में इन दोनों व्यक्तियोंको एक ही बतलाया है। अतएव यहा परिव्राजकके अर्थ साधारण विचरते हुए भिक्षुके समझना चाहिये। इसी भावमें यह शब्द पहले व्यवहृत होता था। देखो हिस्टॉरीकल ग्लीनिंग्स पृष्ठ ९.

२ महावीर चरित्र पृष्ठ ३५५। ३ उत्तराध्ययन (S. B E) पृष्ठ ८२।

रूपकी विरद्ध रूपान्तर ही है[1]। इससे इस मतका समर्थन होता है कि स्याद्वादसिद्धान्त भगवान महावीरसे अविच्छिन्न है, जैसे कि जैन विद्वानोंकी मान्यता है; और उसको संजयने पार्श्वनाथकी शिष्य परंपराके किसी मुनिसे सीखा था परन्तु वह उसको ठीक तौरसे न समझ सका और विरद्ध रूपमें ही उसकी घोषणा करता रहा। जैनशास्त्र भी अव्यक्त रूपमें इसी मतका समर्थन करते हैं; अर्थात् वह कहते हैं कि संजयके हृदयमें भी जो भगवान महावीरके दर्शन करनेसे दूर होगए[2]। यदि यह बात इस तरह नहीं थी तो फिर भगवान महावीर और म. बुद्धके समयमें इतने मतमतान्तर स्थापन तत्पश्चात् क्या हुआ यह क्यों नहीं विदित होता? इसलिए हम जैन मान्यताको विश्वसनीय पाते हैं और देखते हैं कि संजय वैरट्ठी पुत्र जो मोग्गल्लान (मौद्गलायन) के गुरु थे वह जैन मुनि संजय ही थे। दूसरी ओर इस व्याख्याकी पुष्टि इस तरह भी होती है कि इन संजयकी शिक्षाकी सादृश्यता यूनानी अपेक्षा पैरहोकी शिक्षाओंसे बतलाई गई है[3]। इन दोनोंमें समानता है और इस पैरहोने जैम्नोसूफिस्ट सूफियोंसे जो ईसासे पूर्वकी चौथी शताब्दिमें यूनानी लोगोंको भारतके उत्तर पश्चिमीय भागमें मिले थे, यह शिक्षा ग्रहणकी थी। यह जैम्नोसूफिस्ट अपेक्षा निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधुओंके अतिरिक्त और कोई नहीं थे। यूनानियोंने इन जैन साधुओंका नाम जैम्नोसूफिस्ट रक्खा था, अतएव जैन साधुओंसे शिक्षा पाये हुये

---

१ 'डायलाग्स आफ बुद्ध' (S. B. B. Vol II.)
२ हिस्टोरिकल ग्लीनिंग्स पृ० ४९।
[३] हिस्टोरी आफ फिलासफी पृ० ४९। ४ एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका भाग १९।

यूनानी तत्ववेत्ता पैर्‌हो की शिक्षाओंसे उक्त समयकी शिक्षाओंका सामञ्जस्य बैठ जाना, हमारी उक्त व्याख्याकी पुष्टिमें एक और स्पष्ट प्रमाण है। इस तरह यह तीसरे प्रख्यात मतप्रवर्तक जैन मुनि थे इसमें संशय नहीं है, अतएव इनकी गणना 'अज्ञानमत'में नहीं होसक्ती और न यह कहा जा सक्ता है कि इनकी शिक्षाओंका संस्कृतरूप भगवान महावीरका स्याद्वाद सिद्धान्त है, जैसे कि कतिपय विद्वान खयाल करते हैं[1]।

चौथे मत प्रवर्तक अजित केशकम्बलि थे। यह वैदिक क्रिया-काण्डके कट्टर विरोधी थे और पुनर्जन्म सिद्धान्तको अस्वीकार करते थे। इनका मत था कि लोक पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुका समुदाय है और आत्मा पुद्गलके कीमयाई ढगका परिणाम है। इन चारों चीजोंके विघटते ही वह भी विघट जाता है। इसलिए वह कहता था कि जीव और शरीर एक हैं ("तम् जीवो तम् सरीरम्") और प्राणियोंकी हिंसा करना दुष्कर्म नहीं है[3]। इसकी इस शिक्षामें भी जैन सिद्धान्तके व्यवहारनय अपेक्षा आत्मा और पुद्गलके सम्मि-श्रणका विकृतरूप नजर आता है। भगवान पार्श्वनाथने इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया था ही, उसहीके आधार पर अजितने अपने इस सिद्धांतका निरूपण किया, जिसके अनुसार हिंसा करना भी बुरा नहीं था। विद्वान लोग अजितको ही भारतमें केवल पुद्-लवादका आदि प्रचारक ख्याल करते हैं। चार्वाक मतकी सृष्टि

१ जैनसूत्र (S. B E) भाग २ भूमिका XXVII.
२ हिस्टॉरीकल्ग्लीनिंग्स पृष्ठ ३५।
३ जैनसूत्र (S B. E) भाग २ भूमिका XXIII.

व्यक्तिके सिद्धान्तोंके मत हुवे हों तो आश्चर्य नहीं। (देखो भी बुद्धिस्टिक इण्डियन फिलासफी पृष्ठ १८८)।

पांचवें मतप्रवर्तक प्रकुधकात्यायन थे। 'प्रश्नोपनिषद्' में इनको ब्राह्मण ऋषि पिप्पलादका समकालीन बतलाया गया है और यह ब्राह्मण थे।* इनकी मान्यता थी कि असत्‌मेंसे कुछ भी उत्पन्न नहीं होता और जो है उसका नाश नहीं होता।' (सतो नत्थि विनासो, असतो नत्थि सम्भवो। सूत्रकृतांग १-१-१६) इस अनुरूपमें इनने सात सनातन तत्व बतलाये; यथा (१) पृथ्वी (२) जल (३) अग्नि (४) वायु (५) सुख (६) दुःख और (७) आत्मा। इन्हीं सातके सम्मिलन और विच्छेदसे जीवन व्यापार है। सम्मिलन सुखतत्वसे होता है और विच्छेद दुःखतत्वसे। इस कारण इनका परस्पर एक दूसरे पर कुछ प्रभाव है नहीं, जिससे किसी व्यक्तिको स्वयं नुकसान पहुंचाना भी मुश्किल है। प्रकुधकी प्रथम मान्यता सांख्य, वैशेषिक, वेदांत, उपनिषद जैन और बौद्धोंके अनुरूप है। यद्यपि अंतिम कुछ अटपटे ही ढंगका विवेचन है। यह शील अर्थमें मोक्ष होना भी मानते थे।

इन सब मतप्रवर्तकोंमें हम इस बातका खास उद्देश देखते हैं कि वह पुण्य-पापको लेकर हिंसात्मकी पुष्टि करते हैं। न इनने भी पशुओंके मांस खानेका विरोध नहीं किया, जैसे कि हम अगाड़ी देखेंगे। अस्तु, इससे जैनधर्मका इनसे पहिले अस्तित्व प्रमा-

* श्री बुद्धिस्टिक इण्डियन फिलासफी पृष्ठ १८९। १ जैनसूत्र (S. B. E.) भाग २ भूमिका, XXIV २ डिक्शनरी… पृष्ठ १४। ३ जैनसूत्र (S. B. E.) भाग २ भूमिका XXIV

णित होता है अर्थात् भगवान पार्श्वनाथकी शिष्यपरम्पराके ऋषि-गण भी उस समय मौजूद थे और उन्होंने जो अहिंसामई स्याद्वाद कर संयुक्त धर्म प्रतिपादन किया था उससे लोग भड़क गये थे, परन्तु वे सहसा अपनी मांसलिप्साका मोह नहीं त्याग सके थे। इसी कारण उन्होंने भगवान पार्श्वनाथके उपदेशको विकृतरूप देकर अपनी जिह्वालम्पटताके उद्देश्यकी सिद्धि की थी* यहां तक कि ऐसे तापस

---

* सचमुच जैनधर्मके दिव्य उपदेशसे प्रभावित हो यह मतप्रवर्तक भगवान महावीरके पहिलेसे विकृतरूपमें अपने मनोनुकूल धर्मका प्रचार कर रहे थे, इसका स्पष्ट समर्थन आधुनिक विद्वान भी करते दृष्ट पड़ते हैं। स्व० जेम्स डेऽल्विस साहबके लेखसे स्पष्ट है कि 'दिगम्बर' एक प्राचीन सम्प्रदाय समझा जाता था और उपरोक्तलिखित मतप्रवर्तकोंके सिद्धान्तोंपर जैनधर्मका प्रभाव पड़ा नजर पड़ता है। ('In James d' Alwis' paper (Ind Anti VIII.) on the six Tirthakas the "Digambaras appear to have been regarded as an old order of ascetics and all of these heretical teachers betray the influence of Jainism in their doctrines" Ind Ant Vol IX P. 161) यही बात जैनदर्शनदिवाकर डॉ० हर्मन जैकोबी भी प्रकट करते मालूम पड़ते हैं यथा —

"The preceding four Tirthakas appear all to have adopted some or other doctrines or practices, which makes part of the Jaina System, probably from the Jains themselves .It appears from the preceding remarks that Jaina ideas and practices must have been current at the time of Mahavira and independently of him.

भी मौजूद थे जो वर्षभरके लिए एक हाथीको मारकर रख छोड़ते थे और उसी द्वारा उदरपूर्ति करते हुए साधु होनेकी हामी भरते थे।

सारांशतः यह प्रकट है कि उस समय धार्मिक प्रवृत्ति भी बड़ी ही नाजुक अवस्थामें हो रही थी। भगवान महावीर और म० बुद्धके समयमें उपरोक्त मत प्रवर्तकों द्वारा इसका सुधार नहीं हो पाया था। परिणामतः इस सामाजिक और धार्मिक क्रान्तिके अवसर पर म० बुद्धने परिस्थितिको बहुत कुछ सुधारा और फिर भगवान महावीरके दिव्योपदेशसे जनता यथार्थताको पाई और अपनी सुख समृद्धताकी दशामें सामाजिक उदारता और आत्मिक स्वाधीनताके सुख—स्वप्नमें लीन होगई। अतएव निम्नके पृष्ठोंमें हम तुलनात्मक रीतिसे म० बुद्ध और भगवान महावीरके जीवनों और उनके सिद्धान्तोंपर एकदृष्टि डालेंगे।

This Combined with ther arguments, leads us to the opinion that the Nirgranthas were really in existence long before Mahavira, who was the reformer of the already existing sect." (Ind. Ant. Vol. IX. P 162).

१ जैन सूत्र (उत्तराध्ययन १-५ ४१ S. B. E.) पृष्ठ २१८।

(२)

भगवान महावीर और म० बुद्धका प्रारंभिक जीवन।

ईसासे पूर्वकी छठी शताब्दिके भारतमे जो क्रान्ति उपस्थित थी उसके शमन करनेके लिये ही मानो भगवान महावीर और म० बुद्धका शुभागमन हुआ था। यह दोनों ही महानुभाव इक्ष्वाकु वंशीय क्षत्रियोंके गृहमें अवतीर्ण हुये थे।[१] यद्यपि दोनों ही युगप्रधान पुरुष हम आप जैसे मनुष्य थे, परन्तु अपने पूर्वभवोंमें विशेष पुण्य उपार्जन करनेके कारण उनके जीवन साधारण मनुष्योंसे कुछ अधिकता लिये हुये थे। यही बात बौद्ध और जैन ग्रन्थ प्रगट करते हैं। बौद्धशास्त्र कहते हैं कि जिस समय म० बुद्धका जन्म हुआ उस समय कतिपय अलौकिक घटनायें घटित हुई थीं और जब वे अपनी माताके गर्भमें आये थे तब उनकी माताने शुभ स्वप्न देखे थे।[२] भगवान महावीरके विषयमें भी कहा गया है कि जब वे अपनी माताके गर्भमें आये थे तब उनकी माताने सोलह शुभ स्वप्न देखे थे जिनके सांकेतिक अर्थसे एवं उस समय स्वर्गलोकके देवगणों द्वारा उत्सव मनानेसे यह ज्ञात होगया था कि अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीरका जन्म शीघ्र ही होगा। चैत्र शुक्ला त्रयोदशीके रोज जब उनका जन्म हुआ तब दिशायें निर्मल होगई थीं, समुद्र स्तब्ध

---

१ बुद्ध जीवन (S B. E XIX) पृष्ठ ५-१० और जैनसूत्र (S B E.) भाग १ पृष्ठ १५१।

२ बुद्ध जीवन (S. B E. XIX) पृष्ठ ५-१०।

[होगया था, पृथ्वी किंचित् हिल गई थी और सब जीवोंको क्षण भरके लिए परम शान्तिमय अनुभव मिल गया था। इस समय भी एवं अन्य तीनों अवसर, केवलज्ञान प्राप्ति और मोक्षगमनके अवसरोंपर भी देवगणोंने आकर उत्सव मनाये थे।

म० बुद्धका पूर्व नाम गौतमबुद्ध था और वह सिद्धार्थके नामसे भी प्रख्यात थे किन्तु उनकी प्रख्याति अधिकतर केवल म० बुद्धके नामसे होरही है; यद्यपि वस्तुतः यह उनका एक विशेषण ही है जैसे भगवान महावीरको तीर्थंकर कहलाना। बौद्धधर्ममें बुद्ध शब्दका प्रयोग इसी तरह हुआ है जिस तरह 'तीर्थंकर' शब्दका व्यवहार जैनधर्ममें होता है। तथापि जिस तरह जैन शास्त्रोंमें भगवान महावीरके पूर्वभवोंका दिग्दर्शन कराया गया है उसी तरह म० गौतम बुद्धके भी पूर्वभवोंका रूपमें बौद्ध साहित्यमें "जातक कथाओं" के नामसे विख्यात है। म० बुद्धने भी तिर्यंच, मनुष्य देव आदि कितनी ही योनियोंमें जीवन व्यतीत करके अन्ततः देवयोनिसे चयकर राजा शुद्धोदनके यहां जन्म धारण किया था। कहा जाता है कि इस अवसाने बीस असंख्य-कल्प-काल' अर्थात् बुद्ध होनेके 'सर्वोपरि निर्वाण' से पहले अन्यतम बुद्धने तीस 'पारमिताओं' का पूर्ण पालन किया था तब ही वह बुद्ध हुये थे। यह पारमितायें मूलमें दस हैं, परन्तु साधारण उप और परमार्थके भेदसे वे ही तीस कहलाती हैं। बुद्ध पदको प्राप्त होनेके लिए इनका पालन कर लेना आवश्यक है। वे यह हैं, (१) दानपारिमिता-चीजोंके तीन प्रकार

---

१ बुद्धचर्या पृष्ठ १ ३-११४ और जैनसूत्र (S. B. E.) भाग पृष्ठ २१०-२४० ।

रका दान देना, * (२) शीलपारिमिता—बौद्ध व्रतोंका पालन करना, (३) नैसक्रर्मपारिमिता—ससारसे विरक्त होकर त्यागावस्थाका अभ्यास करना, (४) प्रज्ञापारिमिता—बुद्धिसे प्राप्त गुणोंको प्रगट करना, (५) वीर्यपारिमिता—दृढ वीरत्वको प्रगट करनेवाला साहस, (६) क्षान्ति पारिमिता—उत्कृष्ट प्रकारकी सहनशीलता, (७) सत्तपारिमिता—सत्य भाषण, (८) अदिष्टान पारिमिता—दृढ़ प्रतिज्ञाकी पूर्णता, (९) मैत्री पारिमिता—प्रेम और दयाका व्यवहार करना, (१०) और उपेक्षा पारिमिता—शत्रु मित्रपर समान भाव रखना। म० बुद्धने अपने पूर्वभवोंमें इनके अभ्यासमें कमाल हासिल कर लिया था, यह बात बौद्ध शास्त्रोंमें कही गई है। यह भी कहा गया है कि बुद्ध देवलोकमें अधिक नहीं ठहरते थे—वह अपने उद्देश्य प्राप्तिके लिए मनुष्य भवको ही बार२ प्राप्त करनेका प्रयत्न करते थे क्योंकि देवलोकमें रहकर वह अपने उद्देश्यकी प्राप्ति नहीं कर सक्ते थे। जैनधर्ममें भी परमार्थ साधन और सर्वज्ञपद पानेके लिए मनुष्यभव लाजमी बतलाया गया है। परन्तु वहा तीर्थङ्करपद पानेके लिए निदान बाधना आवश्यक नहीं है, जैसा कि गौतमबुद्धने बुद्धपद पानेके लिए अपने एक पूर्वभवमें किया था। निदान बाधना जैन धर्ममें एक नि कृष्ट क्रिया है, जबकि बौद्ध धर्ममें वह ऐसी नहीं मानी गई है। पारिमिताओंकि

* नेत्र मांस, रक्त आदि शरीर अवयवोंका देना साधारण दान है। यह प्रथम प्रकारका दान बौद्ध धर्ममें बतलाया गया है। दूसरे प्रकारका दान सतान स्त्री, घोड़े, पशुधन, पृथिवी, हीरा, जवाहिरात आदिको देना है। यह पहिलेसे उत्तम है और तीसरा सर्वोत्तम दान प्राणोंकी परवा न करके शरीरको पशुओं या राक्षसोंको भक्षण करने देना है। (Manual of Buddhism P. 102)

साथ ३ बुद्ध पदको पानेके लिए जिनके आठ गुण भी उस व्यक्तिमें होना आवश्यक हैं—(१) वह मनुष्य होना चाहिये न कि देव। इसी लिये बोधिसत्व (बुद्धपद पानेका इच्छुक) एक शील-कर्मोंको पालन करते हैं कि उनके फल स्वरूप वह मनुष्यका जन्म धारण करें; (२) वह पुरुष होना चाहिये, न कि स्त्री * (३) उसका पुण्य इतना प्रबल होना चाहिये जिससे वे अर्हत् हो सकें (४) वह अवसर भी उसको मिल चुका हो जिसमें उसने एक परमेश्वर बुद्धकी उपासना की हो और उनमें पूर्ण श्रद्धा रखती हो; (५) विरक्त-गृहत्याग अवस्थामें रहना आवश्यक है (६) ध्यान आदि क्रियाओंके साधनसे प्राप्त फलका वह अधिकारी होना चाहिए, (७) उसे विश्वास होना चाहिए कि जिस गुणसे वह धर्मशील (Jnanaakatra) बनता है वह लोकसे परे है और वह उसे उस दशाको प्राप्त होगा (८) और उसे बुद्ध पद प्राप्तिके निमित्त दृढ़ निश्चय करना चाहिए। इन आठ गुणोंको भी गौतमबुद्धने प्राप्त किया था। इसी कारण वह बुद्धत्वके अधिकारी हुये थे। (Hardy' Manual of Buddhism. P P 101-100) अपने वैश्यन्तरभवसे वह देवलोकके तुषित विमानमें सन्तुषित नामक देव हुये थे। यहां वह बड़ी विभूति सहित १७ कोटि ६ लाख वर्ष तक रहे थे, यह बौद्ध शास्त्र प्रगट करते हैं। इस भव राज्यके अन्तमें सब देवोंमें ध्वना कि एक बुद्धका जन्म होगा और

*दिगम्बर जैन शास्त्र भी तीर्थंकरत्वके लिये पुरुषलिंग ही आवश्यक बतलाते हैं। डा. बेसेलर लिखतेके भी इस तथ्य अधिकारी प्रगट करते हैं परन्तु उनकी इस आवश्यकता विशेष है शास्त्रोंमें वर्णित रीतिसे भिन्न हुआ मिलता है। बौद्धोंकी यह मान्यता भी दिगम्बरोंके समान है।

वह सन्तुतुसित हैं तो वे सब इनके पास जाकर बुद्धपदको धारण करनेके लिए कहने लगे। इसपर बुद्धने वहा 'पच महाविलोकन' किये अर्थात् इन पाच वातोंको जाना कि (१) उस समय मनुष्यकी आयु १०० वर्षकी थी, जो बुद्धपदके लिए उपयुक्त काल था, (२) बुद्ध जम्बूद्वीपमें जन्म लेते हैं, (३) मध्य मण्डल अथवा मगधका प्रदेश उत्तम क्षेत्र है, × (४) उस समय क्षत्रिय वर्ण प्रधान था, इसलिए उसमें जन्म लेना उचित है, (५) और राजा शुद्धोदनकी रानी महामायाके मृत्यु दिवससे २०७ दिन पहिले उनके गर्भमें उनको पहुच जाना चाहिये। इस तरह इन पाच वातोंको जानकर उनने नियत समयमें राजा शुद्धोदनकी रानी महामायाके गर्भमें पदार्पण किया और फिर उनका जन्म हुआ, यह हम ऊपर देख चुके हैं।

भगवान महावीरने तीर्थंकर पद प्राप्त करनेके लिए वैसा कोई निदान नहीं वाधा था जैसा कि म० बुद्धको करना पड़ा था। हा, यह अवश्य है कि जैनधर्ममें भी खास भावनायें और विशेष गुण तीर्थंकर पद प्राप्त करनेके लिए आवश्यक बतलाये गये हैं। इन खास भावनाओ और गुणोंकि आराधनसे उस पुरुषके 'तीर्थंकर नामकर्म' नामक कर्मका वध होता है, जिससे वह स्वभावतः उस परमपदको प्राप्त करता है। श्री तत्वार्थसूत्रजीमें इस सम्बन्धमें यही कहा गया है, यथा—

× जैन शास्त्रोंमें भी तीर्थंकरोंकी जन्मभूमियां गगा और जमुनाके मध्य प्रदेशमें ही बताई गई है, किन्तु उनका यह कथन है कि तीर्थंकर सदैव क्षत्रीय वर्णोंमें ही जन्म लेते हैं।

"दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नताशीलव्रतेष्वनतीचारोऽभी-क्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौशक्तितस्त्यागतपसीसाधुसमाधिर्वैयावृत्त्यक-रणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभाव-नाप्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥२४-६॥"

अर्थात्–तीर्थंकर कर्मका आस्रव निम्न १६ भावनाओं द्वारा होता है–

(१) दर्शनविशुद्धि–सम्यग्दर्शनकी विशुद्धता (२) विनय सम्पन्नता–मुक्तिप्राप्तिके साधनों अर्थात् रत्नत्रय मार्गके प्रति विनय और उनके प्रति भी जो उनका अभ्यास कर रहे हैं (३) शीलव्रतेष्वनतिचार–अतीचार रहित पांचव्रतोंका पालन और कषायोंका पूर्ण दमन, (४) अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग–सम्यग्ज्ञानकी संलग्नतामें–स्वाध्यायमें अविरत प्रयास (५) संवेग–संसारसे विरक्तता और धर्मसे प्रेम, (६) शक्तितस्त्याग–अपनी शक्ति अनुसार त्याग भावका अभ्यास, (७) शक्तितस्तप–अपनी शक्तिके परिमाण तपका पालन करना, (८) साधु समाधि–साधुओंकी सेवा–सुश्रूषा और रक्षा करना, (९) वैयावृत्यकरण–सर्व प्राणियोंकी खासकर धर्मात्मा पुरुषोंकी वैयावृत्य करना, (१०) अर्हद्भक्ति–अर्हंत भगवानकी भक्ति करना (११) आचार्यभक्ति–आचार्य परमेष्ठीकी उपासना करना (१२) बहुश्रुतभक्ति–उपाध्याय परमेष्ठीकी भक्ति करना, (१३) प्रवचनभक्ति शास्त्रोंकी विनय करना (१४) आवश्यका परिहाणि–आपने षडावश्यकोंके पालनमें शिथिल न होना, (१५) मार्गप्रभावना–मोक्षमार्ग अर्थात् जैनधर्मका प्रकाश करना और (१६) प्रवचनवत्सलत्व–मोक्षमार्गरत साधर्मी भाइयोंके प्रति वात्सल्यभाव रखना,

इनका पूर्ण ध्यान ही तीर्थंकरपद प्राप्त करनेमें मूल कारण है। तथापि उनका पुरुष होना, क्षत्रियकुलमें जन्म धारण करना, जन्मसे ही तीन ज्ञान और मलमूत्रादि रहित शरीर धारण किए हुए होना, माता पिता अथवा किसी अन्य व्यक्तिको नमस्कार न करना,* आदि विशेषण भी होते हैं। भगवान महावीरने अपने पूर्व भवोंमें उक्त भावनाओंका पालन समुचित रीतिसे किया था, जिसके फलस्वरूप वे राजा सिद्धार्थके गृहमें तीर्थंकर पदपर आरूढ़ होनेके लिये जन्मे थे। अपने सिंहके भवसे वे देवलोकके पुष्पोत्तर विमानमें अपूर्व सम्पत्तिके धारक देव हुए थे। वहांके भोग भोगकर वे राजा सिद्धार्थकी रानी त्रिशलाकी कोखमें आए थे और फिर उनका सुखकारी जन्म हुआ था। तीनों लोक इस कल्याणकारी जन्मावतारसे मुदित होगये थे।

म० बुद्धके पिताका नाम शुद्धोदन था और वह उस समय शाक्य गणराजके प्रमुख राजा थे। इनकी राजधानी कपिलवस्तु थी। म० बुद्धका जन्म यहीं वैशाख शुक्ला २ को हुआ था,[1] किन्तु

---

*म० बुद्धके विषयमें भी कहा गया है कि वह किसी भी व्यक्तिको नमस्कार नहीं करते थे। बौद्ध शास्त्र कहते हैं कि यदि बुद्ध किसीको नमस्कार करें तो उस व्यक्तिके मस्तकके सात टुकड़े होजावें। इसीलिए म० बुद्धके जन्मसमय उनके चरणोंको असित नामक साधुने और उनकी देखादेखी बुद्धके पिता शुद्धोदनने अपने मस्तकसे लगाया था। (See Hardy's Manual of Buddhism P 147) इससे पितृभक्तिकी अवज्ञा होती ख्याल करना निरा भ्रम है। भाव इन युगप्रधान पुरुषोंकी चारित्रविशिष्टता स्पष्ट करनेका है। वैसे हमें मालूम है कि भगवान महावीर अपने माता-पिताको हर तरह प्रसन्न रखते थे और उनसे पूछकर ही उन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी।

१ बुद्धजीवन (S. B E XIX) पृष्ठ १०

जन्मान्तर इनके जन्मते ही इनकी माताके प्राणपखेरू इस नश्वर शरीरको छोड़कर चल बसे थे। इनका लालन–पालन इनकी विमाताने किया था। इनके जन्म होनेपर एक असित नामक ऋषिने आकर राजा शुद्धोदनको बतलाया था कि उनका पुत्र गौतम राज्य सामग्रीका उपभोग नहीं करेगा प्रत्युत वह युवावस्थामें ही गृह त्यागके एक नवीन धर्मका बीजारोपण करेगा। पितृगण इस समाचारको सुनकर जरा खेदितचित्त हुये थे, परन्तु वे खूब लाड़चावसे पुत्रका पालन पोषण करने लगे। अपने पुत्रके निकट कोई भी ऐसा कारण उपस्थित नहीं होने देते थे जिससे उसके कोमल चित्तपर संसारकी नश्वरताका चित्र खिंच जावे। म कुछ भी दिनोंदिन हाथोंहाथ बढ़ने लगे।

दूसरी ओर भगवान महावीरके पिताका नाम नृपसिद्धार्थ था और भगवानकी माता त्रिशला प्रियकारिणी वैशालीके वज्जियन राज संघके प्रमुख राजा चेटककी पुत्री थीं। नृपसिद्धार्थके विषयमें यह कहा जाता है कि वे नाथ (ज्ञात्रि) वंशीय क्षत्रियोंकी ओरसे वज्जियन राजसंघमें सम्मिलित थे। [1] इन ज्ञात्रवंशी क्षत्रियोंकी मुख्य राजधानी कुण्डग्राम थी जो वैशालीके निकट अवस्थित थी। नृपसिद्धार्थ स्वयं नाथवंशीय (ज्ञात्रिवंशीय) काश्यपगोत्री क्षत्री थे। भगवान् महावीर अपने इस क्षत्रियवंश–ज्ञात्रि अथवा नाथवंशके कारण ही बौद्ध ग्रन्थोंमें निगन्थ नातपुत्तके नामसे उल्लिखित हुये हैं। भगवानका शुभकारी जन्म इन्हीं भाग्यवान दम्पतिके यहां कुण्डनगरमें हुआ था।

१ पूर्व पृष्ठ ११–१२... । २ क्षत्र इण्डियन ट्राईब्स पृ० १३।
२ उत्तरपुराण पृष्ठ ६ ५

इनके जन्मसे पितृगणको बडा आनन्द प्राप्त हुआ था और उनके राज्यमें विशेष रीतिसे हर बातमें वृद्धि होते नजर आई थी, इसलिये उन्होंने भगवानका नाम 'वर्द्धमान्' रक्खा था।[1] उपरान्त जब सौ धर्मेन्द्रने भगवानके जन्मोत्सवपर उनकी सस्तुतिकी तो उनका नाम 'महावीर' रक्खा।[2] इसी समय भगवानके जन्म सम्बन्धी शुभ समाचार सुनकर सजय नामक चारण ऋद्धिधारी मुनि, जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं, एक अन्य विजय नामक मुनिके साथ भगवानके दर्शन करने आये थे, और उनके दिव्यरूपके दर्शनसे उनकी शङ्काओंका समाधान होगया था इसलिये उन्होंने भगवानका नाम 'सन्मति' रक्खा था।[3] भगवानका इस प्रकार जन्म होगया और वह देव देवियोंकी सरक्षतामें दिनोंदिन वृद्धिको प्राप्त होने लगे।

म० बुद्धके पिता राजा शुद्धोदन किस धर्मके उपासक थे, यह स्पष्टत ज्ञात नहीं है। किन्तु बौद्ध ग्रन्थोंमें इन्हें पूर्वके बुद्धोंका उपासक बतलाया है।[4] यह पूर्वबुद्ध कौन थे, यह अभीतक पूर्णत प्रमाणित नहीं हुआ है, क्योंकि म० बुद्धके पहिले बौद्ध धर्मका अस्तित्व किसी तरह भी सिद्ध नहीं होता। बौद्ध शास्त्रोंमें इन बुद्धोंकी संख्या २४ बताई है। जैनधर्ममें भी 'बुद्ध' विशेषण तीर्थङ्कर भगवानके लिये व्यवहृत हुआ मिलता है, ऐसी दशामें समव है कि २४ बुद्ध जैनधर्ममें स्वीकृत जैन तीर्थंकर हों और राजा

---

१ जैनसूत्र (S B E) भाग १ पृ० १९२। २ जैनसूत्र (S B E) भाग १ पृ० १९३ किंतु दि० उत्तरपुराणमें लिखा है कि यह नाम उस देवने रक्खा था जो भगवानके पौरुषकी परीक्षा लेने आया था। ३ अशग कविकृत 'महावीर चरित्र' पृ० २५५। ४ बुद्ध-जीवन (S. B E. XIX)

इस तरह स्वाधीन गणराज्योंमें प्रधान प्रमुख राजाओंके समृद्धशाली क्षत्रिय कुलोंमें जन्म लेकर दोनों ही युगप्रधान पुरुष दिनोंदिन चन्द्रमाकी भांति बढ़ रहे थे। शीघ्र ही ये कौमार अवस्थाको प्राप्त हुये और कौमारकालकी निश्चिन्त रंगरलियोंमें व्यस्त होगये, किन्तु आजकलके युवकोंकी भांति विलासिताकी आधीनता इनके निकट छू भी नहीं गई थी। यह हो भी कैसे सक्ता था ? वे स्वाधीन वातावरणमें जन्म लिये युगप्रधान पुरुष थे, और आजकलके युवक परतन्त्रताके आधीन अल्प भाग्यवान व्यक्तियां हैं। इसलिए इनके शरीर और मन सर्वथा गुलामीकी बूसे भरे हुये हैं। वस्तुत इन विलासिताके गुलाम युवकोंके लिये इन दोनों युगप्रधान पुरुषोंके बालपनके चरित्र अनुकरणीय आदर्श है।

कौमारावस्थामें म० बुद्ध अपने कुलके अन्य राजपुत्रोंके साथ आनन्दसे क्रीड़ायें किया करते थे। स्वाधीन अहिंसाप्रिय कुलमें जन्म लेकर उनका हृदय पितृसंस्कृतिके अनुरूप अति कोमल और दयार्द्र था। एक दिवस वह अपने चचेरे भाई देवदत्तके साथ धनुं-कौशलका अभ्यास कौतूहलवश कर रहे थे। यकायक देवदत्तने एक बाण उड़ते हुये पक्षीके मार दिया। वह बेचारा निरापराध पक्षी धड़ामसे इन दोनोंके अगाडी आ गिरा। बुद्धकेलिये वह करुणाजनक दृश्य अश्रुत और असह्य था। वह झटसे उस घायल पक्षीकी ओर लपके और देवदत्तके इस दुष्कृत्यपर घृणा प्रकट करते हुए उस घायलपक्षीके शरीरमेंसे बाण खींच लिया और उसकी उचित सुश्रूषा की। दयाका क्या अच्छा नमूना है। आजके नवयुवकोंको भी निरपराध पशुओंके प्राण लेनेका शौक चर्राया हुआ है। उन्हें म० बुद्धके इस चरित्रसे शिक्षा लेना आवश्यक है।

भगवान महावीरके विषयमें भी हमें ज्ञात है कि वे अपनी कौमारावस्थामें राजकुमारों, मंत्रीपुत्रों और देवसहचरोंके साथ अनेक प्रकारकी क्रीड़ायें करते थे। स्वाधीन क्षत्रियकुलमें परमोच्च पदवीको प्राप्त करनेके लिये जन्म लेकर उन्होंने अपने बाल्यजीवनसे ही अहिंसा, क्षमा और सौम्यतामय आदर्श लोगोंके समक्ष रक्खा था। आठ वर्षकी अल्पसी अवस्थामें ही उन्होंने यत्नपूर्वक किसीके प्राणोंको पीड़ा न पहुंचानेका संकल्प कर लिया था। यह निश्चय कर लिया था कि किसी दशामें भी जान बूझकर प्राणि हिंसा नहीं करूंगा और सदैव संयम ही अभ्यास करूंगा। पराई वस्तु ग्रहण करके वे किसीको मानसिक दुख नहीं पहुंचाते थे। पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करते हुये वे विलासिता और कामवासनासे कोसों दूर थे। परिमितरूपमें वे आवश्यक सामग्रीको रखते थे। भोगके लिये अनावश्यक वस्तुओंका ढेर एकत्रित नहीं करते थे। ऐसा संयममय जीवन व्यतीत करते हुये वे वीर-वेषमें कुमारकालीन क्रीड़ायें करते विचरते थे। एक दिवस राजोद्यानमें वे अपने अन्य सहचरों सहित क्रीड़ा करते थे कि एक ओरसे विकराल सर्प उधर आ धमका। बिचारे अन्य सखा भयभीत हो इधर उधर भाग निकले, परन्तु भगवान महावीर जरा भी भयभीत नहीं हुये। उन्होंने क्षणभरमें उस विषधरको वश कर लिया और उसपर दया करके उसे वैसा ही छोड़ दिया। वास्तवमें वह सर्परूपधारी एक देव था जो भगवानके दृढ़ चित्त और अपूर्व शक्तिशाली शरीरकी प्रसिद्धि सुनकर उनकी परीक्षा लेने आया था। इसतरह भगवानकी परीक्षा करके वह विशेष हर्षित हुआ और भगवानकी

वदना करके अपने स्थानको चला गया। भगवानका यह बाल्यावस्थाका चरित्र हमारे लिए एक अत्युत्तम अनुकरणीय आदर्श है।[1]

कुमारकालमें दोनों ही युगप्रधान पुरुषोंने किस प्रकारकी शिक्षा ग्रहणकी यह ज्ञात नहीं है। भगवान महावीरके विषयमें जैन शास्त्रोंमें कहा गया है कि वह जन्मसे ही मति, श्रुति और अवधिज्ञानकर सयुक्त थे।[2] इस अपेक्षा उनका ज्ञान बाल्यावस्थासे ही विशिष्ट था। इसमें सशय नहीं कि उस समय जो शिक्षायें और कलायें प्रचलित थीं, उनमें ये दोनों युगप्रधान पुरुष पारागत थे। साथ ही इन दोनोंका शारीरिक बल और सौन्दर्य भी अपनी सानीका निराला था। म० बुद्धके विषयमें कहा गया है कि वे जन्मसे ही महापुरुषके बत्तीस लक्षणोकर सयुक्त सुदर शरीरके धारी थे।[3] भगवान महावीरके विषयमें भी हमें विदित है कि वे एक हजार आठ लक्षणों कर चिन्हित थे और उनके शरीरकी आकृति और शोभा अपूर्व थी। उन्होंने अपने पूर्व जन्मोंमें इतना विशेष पुन्य उपार्जन किया था कि उनका शरीर बिल्कुल विशुद्ध, मलमूत्र आदिकी बाधाओंसे रहित था। प्रत्युत उनके शरीरसे हर समय एक अच्छी सुगध निकलती रहती थी। उनके शरीरका रुधिर दुग्धवत था। उनका पराक्रम अतुल था और शरीरमें क्षति पहुचना असमव थी।[4] म० बुद्ध और म० महावीर सदैव मिष्ट

---

१ भगवान महावीरके विशद दिव्य चरित्रके लिये 'उत्तरपुराण' 'महावीर पुराण', 'महावीरचरित' और 'भगवान महावीर' नामक ग्रन्थ देखना चाहिये। २ महावीरपुराण। ३ बुद्ध जीवन (S B E. XIX) पृ० १२ इत्यादि। ४ उत्तरपुराण पृ० ६०७ और जैनसूत्र (S. B. E) भाग १ पृष्ठ २५०-२५२।

धारण करते थे यह भी दोनों सम्प्रदायोंके शास्त्रोंसे स्पष्ट है।

इस प्रकार जब वे सुन्दर सुगम शरीरके धारी राजकुमार युवावस्थाको प्राप्त हुये तो उनके माता-पिताको उनके पाणिग्रहण करानेकी सुध आई। राजा शुद्धोदन अपने पुत्रका विवाह करा देनेमें बड़े व्यग्र थे क्योंकि उन्हें भय था कि कहीं वैराग्य उनके पुत्रके कोमल हृदयपर अपना प्रभाव न जमा ले। तदनुसार म० बुद्धका शुभ विवाह यशोधा नामकी एक राजकन्यासे होगया और वह दाम्पत्य सुखका उपभोग करने लगा। इन्हीं यशोधाके गर्भ और म० बुद्धके औरससे राहुल नामके पुत्रका जन्म हुआ था। भगवान महावीरके माता-पिताको भी उनकी युवावस्था निहारकर विवाह करा देनेकी आलोचना करनी पड़ी थी। देशदेशांतरोंके राजागण अपनी कन्याओंको भगवानके साथ परणाना चाहते थे। इनमें मुख्यतः राजा जितशत्रु अपनी कन्या यशोदाको विशेष रीति और आग्रहसे भगवानको समर्पण करना चाहते थे; परन्तु विशिष्ट ज्ञानी, त्यागकी प्रत्यक्ष मूर्ति भगवान महावीरको यह रमणीरत्न भी न मोह सका।

---

१ बुद्ध जीवन (S. B. E. XIX.) पृ० १२ इत्यादि।

२ श्वेताम्बर शास्त्रोंमें कहा गया है कि भगवानने अपने माता पिताके आग्रहसे यशोदा नामक कन्यासे पाणिग्रहण कर लिया था और उनके एक पुत्री भी जन्म हुआ था। उपरान्त जब उनके माता-पिता स्वर्गवास कर गये तब अपने भाई नन्दिवर्द्धनकी आज्ञासे उन्होंने गृहत्याग कर मुनिव्रत धारण किया था। इस मतभेदका कारण समझमें नहीं आता। दिगम्बर शास्त्र अन्य तीर्थंकरोंका विवाह होना बतलाते हैं, परन्तु उनके पुत्रीका जन्म होना स्वीकार नहीं करते। संभव है कि इसी सिद्धान्तभेदको पुष्टि देनेके लिये थे [illegible] ग्रन्थोंमें यह कथा लिखी

उन्होंने ससारके कल्याणके लिए अपने सर्वस्वका त्याग करना ही परमावश्यक समझा। माता-पिताने बहुत समझाया परन्तु वैराग्यका गाढ़ा रङ्ग जिसके हृदय पर चढ गया हो, फिर वह उतारे नहीं उतरता। भगवान महावीरने विवाह करना अस्वीकार किया। उन्होंने उस समयके राजोन्मत्त युवा राजकुमारों और आवजीविकों तथा ब्राह्मण ऋषियों जैसे साधुओंको[2] मानो पूर्ण ब्रह्मचर्यका महत्व हृदयगम कराया। जहा ऋषिगण भी इन्द्रियनिग्रह और सयमसे विमुख हों वहा ऐसे आदर्शकी परमावश्यक्ता थी। भगवान महावीरके

गई हो। बौद्ध ग्रथोंमें भी भगवानके भाई और जमाई व स्त्री आदिका कोई उल्लेख नहीं मिलता है। तिसपर उस समय सामाजिक वातावरणमें ब्रह्मचर्यका महत्व कम हो चला था। इस तरह अपने अखण्ड ब्रह्मचर्यमें मानो उसको शिक्षा देना भगवानको अभीष्ट था। दि० शास्त्र यशोदराके साथ विवाह करनेकी आयोजनाका जिक्र करते हैं, परन्तु म० महावीरने स्वीकार नहीं किया यह स्पष्ट कहते हैं —

'भवान्न किं श्रेणिक वेत्ति भूपतिं, नृपेन्द्र सिद्धार्थकनीयसीपतिं।
इमं प्रसिद्ध जितशत्रुमाख्यया, प्रतापवन्तं जितशत्रुमण्डलम् ॥ ६ ॥
जिनेन्द्रवीरस्य समुद्भवोत्सवे, तदागतः कुण्डपुरं सुहृत्पृत ।
सुपूजितः कुण्डपुरस्य भूभृता नृपोऽयमाखण्डलतुल्यविक्रम ॥७॥
यशोदयायां सुतया यशोदया पवित्रया वीरविवाहमङ्गलम् ।
अनेक कन्या परिवारयाऽऽरुहत्समीक्षितु तुङ्गमनोरथ तदा ॥ ८ ॥
—हरिवंशपुराण।

१ भगवान महावीर पृष्ठ २३९। २ जैन और बौद्ध ग्रथ प्रकट करते हैं कि आजीविकगण ब्रह्मचर्यको अनावश्यक समझ व्यभिचार रत होते भी नहीं हिचकते थे। (देखो आजीवक्स भाग १) तथापि ब्राह्मण ऋषियोंके पत्नियां थीं यह सर्व प्रकट है। बौद्धोंके सुत्तनिपातके तेविज्जसुत्तमें इसका स्पष्ट उल्लेख है।

दिव्य चरित्रमें मनुष्यको इस आदर्शके दर्शन होगये। आजके कर्तव्यमय वीभत्स वातावरणमें प्रत्येक देशके नवयुवकोंके समक्ष ऐसा आदर्श उपस्थित करना परम आवश्यक है। जिस पवित्र भारतवर्षमें भगवान महावीरके दिव्य चरणन्द ब्रह्मचर्यका अनुपम आदर्श उपस्थित रहा था वहीं आज ब्रह्मचर्यका नाम सर्वथा अभाव देखकर हृदय धर्रा जाता है। भारतवर्षके लिये भगवान महावीरका आदर्श परम शिक्षापूर्ण और हितकर है।

इस प्रकार दोनों युगप्रधान पुरुष अपने गृहस्थ जीवनमें सानन्द काल यापन कर रहे थे। भगवान महावीरने अपने गृहस्थ जीवनसे ही संयम और त्यागका अभ्यास करना प्रारम्भ कर दिया था और वे कुछ नियमित ढंगसे सम्यक्त्वमूलक उपभोग कर रहे थे। अस्तु।

(१)

गृहत्याग और साधुजीवन।

मनुष्य अपनी जगमें बड़ेसे बड़ा कुशल और चतुर समझता है। वास्तवमें जीवित संसारमें उससे बढ़कर और कोई बुद्धिमान् प्राणी है भी नहीं, किन्तु उसकी बुद्धिमत्ता, कुशलता, और चतुरताके भी कान काट कर देनेवाली एक शक्ति भी इस संसारमें विद्यमान् है। यह शक्ति यद्यपि जीती जागती शक्ति नहीं है परंतु इसका प्रभाव स्वयं मनुष्यकी जीती जागती क्रियापर ही जमा हुआ है। मनुष्य अपनी आंखोंसे देखता रहता है और यह शक्ति अपना कार्य करती चली जाती है। उसके जीवनकी

दशाओंका अत यही लाती है। इसीको लोग काल कहते हैं। सच-मुच कालकी शक्ति अति विचित्र है। कालचक्र सासारिक परिवर्तनमें एक मुख्य कारण है। इस ही कालचक्रकी कृपासे प्रत्येक क्षणमे ससारका कुछका कुछ होजाता है। ऐसे प्रबल कालचक्रका प्रभाव बडे बड़े आचार्यों और चक्रवर्तियोंका भी लिहाज नहीं करता है।

भगवान महावीर और म० बुद्ध भी इसी कालचक्रकी इच्छानुसार अपने बाल्य और कुमार अवस्थाको त्यागकर पूर्णयुवावस्थाको प्राप्त होगये थे। म० बुद्ध रानी यशोदाके साथ सासारिक सुखका उपभोग कर रहे थे कि एक दिन वे नगरमे होते हुये वन-विहारके लिये निकले। उन्होंने रास्तेमें एक रोगीको देखकर अपने सार्थीसे उसका हाल पूछा। रोगोंके आताप और बुढ़ापेके दुख सुनकर उनका हृदय व्यथासे व्याकुल होगया। इस आकुल व्याकुल हृदयको लिए वे अगाड़ी बढ़े कि मृत पुरुषको लिए विलाप करते स्मशान भूमिको जाते अनेक मनुष्य दिखाई दिये। सार्थीसे फिर पूछा और हकीकतको जानकर उनका आकुल हृदय एकदम थर्रा गया। उन्होंने कहा जब यह शरीर नश्वर है, युवावस्था हमेशा रहनेकी नहीं, बुढ़ापेके दुख दर्द सबको सहने पड़ते है, तो इससे उत्तम यही है कि उस मार्गका अनुसरण किया जाय जिससे इन जन्मजराके दुखोंको न भुगतना पडे। इसके साथ ही हृदयपर इन विचारोंका इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि म० बुद्ध फिर लौटकर राजमहलमें अधिक दिन नहीं ठहरे। एक दिन रात्रिके समय छन्न नामक सार्थीको लेकर और घोड़ेपर सवार होकर निकल पडे। बहुत दूर चलकर आखिर उनने सार्थीके सुपुर्द सब वस्त्राभूषण किये और

आप साधारण वस्त्रोंको धारण करके दक्षिणकी तरफको एक ओरको चल दिये। इस फिकरमें घूमते फिरते रहे कि कोई सच्चा गुरु मार्गदर्शक जानकर कामिल पुरुष मिले तो मैं उसके चरणोंकी सेवा करके आत्मिक उत्तम ज्ञानका अधिकारी बनूं। इसही विचारमें निमग्न म० बुद्ध जारहे थे कि पीछेसे इनके पिताके भेजे हुये मनुष्य मिले। उन्होंने म० बुद्धको घर लौट चलनेके लिये बहुत समझाया। परन्तु पिताके अनुरोध और पत्नीकी करुण कातर प्रार्थना सब निरर्थक गई। म० बुद्ध अपने निश्चयमें दृढ़ रहे। वे लोग हताश होकर कपिलवस्तुको लौट गये।

अगाडी चलकर म० बुद्ध परिव्राजक ब्रह्मचारियोंके आश्रममें पहुंचे और वहां साधु आरालकालामकी प्रशंसा सुनकर वह उनके पास चले गए। इन साधुका मत सांख्यदर्शनसे बहुत कुछ मिलता जुलता था। म० बुद्ध इस मतका अध्ययन कुछ दिवस करते रहे। किंतु अन्तमें उन्हें विश्वास होगया कि "जो कुछ आरालने बतलाया है उससे मेरे हृदयकी संतुष्टि नहीं होसकती है।" इसलिये वे वहांसे भी प्रस्थान कर गये और आगे उद्रामके पास पहुंचे। वहां भी कुछ दिन रहे। उपरांत वहांसे भी निराश होकर किसी उत्तम मार्गको पानेकी खोजमें अगाडी चल दिये। आखिरकार वे चलते 'गया-शी' (गया-शासनम)में पहुंचे। यहां एक परीषह जय वन ([illegible] forest) नामक ग्राम था। यहां पहलेसे पांच भिक्षु मौजूद थे। म० बुद्धने देखा कि ये पांचों भिक्षु अपनी इन्द्रियोंको पूर्णतः वश किये हुये हैं और उत्तम चारित्रके नियमोंका

---

१ बुद्ध जीवन (S. B. E. XIX.) पृष्ठ १३ – २ बुद्ध पृष्ठ १३१

पालन कर रहे हैं तथापि तपश्चरणके भी अभ्यासी है।[1] यह देखकर म० बुद्ध विचारमग्न होगये। उपरात उन भिक्षुओंका अभिवादन और नियमित क्रियाओं—सेवाओं (Having finished their attentions and dutiful services) से निर्वृत होकर उनने वहीं नैरञ्जरा नदीके निकट एक स्थानपर आसन जमा लिया[2] और अपने उद्देश्य सिद्धिके लिये वे तपश्चरण करने लगे। शारीरिक विषय कषायका निरोध करने लगे और शरीर पुष्टिका ध्यान बिल्कुल छोड बैठे। 'हृदयकी विशुद्धता पूर्वक वे उन उपवासोंका पालन करने लगे, जिनको कोई गृहस्थ सहन नहीं कर सक्ता। मौन और शात हुये वे ध्यानमग्न थे। इस रीतिसे उन्होंने

१ 'भिक्षु' शब्दका व्यवहार जैनों और बौद्धोंके लिये पहिले होता था परन्तु उपरान्त केवल बौद्ध साधुओंके लिये ही उसका व्यवहार सीमित हो गया बतलाया गया है। यद्यपि जैन मुनिके पर्याय वाची शब्दके रूपमें अब भी इस शब्द (भिक्षु) का व्यवहार जैन लेखकों द्वारा होता है। (देखो बृहद् जैन शब्दार्णव भाग १ पृष्ठ ४) मि० ह्रीस डेविड्सका कथन है कि 'भिक्षु शब्द पहिले पहिले जैनों अथवा बौद्धों द्वारा व्यवहृत हुआ था। ("Perhaps the Jain or the Buddhist's first used it." Dialogues of Buddha Intro S B B Series) ऐसी दशामें यहां पर जिन भिक्षुओंका उल्लेख किया जा रहा है वह जैन भिक्षु हों तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि म० बुद्धके पहिले बौद्धधर्मका अस्तित्व अभीतक तो प्रमाणित हुआ नहीं है। उसका पुष्टि उपरोक्तके अगाड़ी जो विवरण मिलता है, उससे भी होती है। अस्तु यह भिक्षु जैन साधु ही थे। इनके नाम भी जैन साधुओंके ना से मिलते जुलते है, यथा कौन्डिन्यकुलपुत्त, दशबल, काश्यप, वाप्प, अश्वजित और भद्र। २ बुद्ध जीवन (S B E XIX) पृष्ठ १४१। ३ पूर्ववद।

छः वर्ष निष्फल किये।¹

म० बुद्धने जो इस प्रकार छः वर्ष तक साधु जीवन व्यतीत किया था वह जैन साधुकी उपवास और ध्यानमय, मौन और कायोत्सर्ग आदि अवस्थाके बिल्कुल समान है। अतएव इस अवस्थामें वह जैन शास्त्रोंकी इस मान्यताका समर्थ प्रमाण है कि म० बुद्ध अपने साधु जीवनमें किसी समय जैन मुनि भी रहे थे। जैन शास्त्रकार कहते हैं कि "श्री पार्श्वनाथ भगवानके तीर्थमें सरयू नदीके तटवर्ती पलाश नामक नगरमें पिहितास्रव साधुका शिष्य बुद्धकीर्ति मुनि हुआ जो महाश्रुत या बड़ा भारी शास्त्रज्ञ था। परंतु मत्स्योंके आहार करनेसे वह ग्रहण की हुई दीक्षासे भ्रष्ट होगया और रक्ताम्बर (लाल वस्त्र) धारण करके उसने एकांतमतकी प्रवृत्ति की। फल, दही, दूध, शक्कर आदिके समान मांसमें भी जीव नहीं है, अतएव उसकी इच्छा करने और भक्षण करनेमें कोई पाप नहीं है। जिस प्रकार जल एक द्रव द्रव्य अर्थात् तरल या बहनेवाला पदार्थ है उसी प्रकार शराब है वह त्याज्य नहीं है। इस प्रकारकी

---

१. "With full purpose of heart (he set himself) to endure mortification to restrain every bodily passion, and give up thought about sustenance. With purity of heart to observe the fast rules, which no worldly man (active man) can bear silent and still, lost in thoughtful meditation, and so for six years he continued."—बुद्धचरित (S. B. E. XIX) पृ० १४१

२ जैनसूत्र (S. B. E.) भाग १ पृष्ठ ४१–४२ और तत्त्वार्थराजवार्तिक १-१

घोषणा करके उसने संसारमें सम्पूर्ण पापकर्मकी परिपाटी चलाई। एक पाप करता है और दूसरा उसका फल भोगता है, इस तरहके सिद्धान्तकी कल्पना करके और उससे लोगोंको वशमें करके या अपने अनुयायी बनाकर वह मृत्युको प्राप्त हुआ।" जैन शास्त्रकारके इस कथनको सहसा हम अस्वीकार नहीं कर सकते हैं। अन्तिम वाक्योंसे यह स्पष्ट है कि शास्त्रकार बौद्ध धर्म और म० बुद्धका उल्लेख कर रहा है, क्योंकि 'क्षणिकवाद' बौद्धधर्मका मुख्य लक्षण है जिसका ही प्रतिपादन इन वाक्योंमें किया गया है। इतनेपर भी जो जैन शास्त्रकारने बौद्धोंके प्रति मद्यपान करनेका लाञ्छन लगाया है वह ठीक नहीं है।[2] इसमें किसी प्रकारकी भूल नजर आती है, किन्तु इसके कारण हम उक्त वाक्योंकी सर्वथा उपेक्षा नहीं कर सकते! बेशक यह उस जमानेकी—ईसाकी नवीं शताब्दिकी रचना है, जब

---

१ सिरिपासणाहतित्थे सरयूतीरे पलासणयरत्थो।
पिहियासवस्स सिस्सो महासुदो बुड्ढकित्तिमुणी ॥ ६ ॥
तिमिपूरणासणेहिं अहिगयपवज्जाओ परिब्भट्ठो।
रत्तंबरं धरित्ता पवट्टियं तेण एयंतं ॥ ७ ॥
मंसस्स णत्थि जीवो जहा फले दहिय-दुद्ध सक्कराए।
तम्हा तं वंछित्ता तं भक्खंतो ण पाविट्ठो ॥ ८ ॥
मज्जं ण वज्जणिज्जं दवदव्वं जह जलं तहा एदं।
इदि लोए घोसित्ता पवट्टियं सव्वसावज्जं ॥ ९ ॥
अण्णो करेदि कम्मं अण्णो तं भुंजदीदि सिद्धंतं।
परिकप्पिऊण णूणं वसिकिच्चा णिरयमुववण्णो ॥ १० ॥

—दर्शनसार।

२ बौद्धोंके पंच व्रतोंमें अन्तिम 'मद्यपान त्याग' है। इस कारण यहांपर किसी तरहकी भूल नजर पड़ती है। (महावग्ग)।

भारतीय धर्मोंमें पारस्परिक स्पर्धा बहुत स्पष्ट और अधिकतापर हो गई थी, अतएव जैनाचार्यका तत्कालीन परिस्थितिके अनुसार म० बुद्धका उक्त प्रकार उल्लेख करना कुछ अनोखी क्रिया नहीं है, परन्तु इसपर भी जो कुछ उन्होंने लिखा है, उसमें केवल मत्स्य-भक्षी बातको छोड़कर शेष सब यथार्थताको लिए हुए हैं। जिस स्थानपर पहिले पहिल म० बुद्धने जैन मुनिकी दीक्षा ग्रहण की थी उसका नाम टीकामें बतलाया गया है। जैन और बौद्ध दोनों ही उस स्थानको वनग्राम (बौद्ध Forest town और जैन पलाश-ग्राम=पलाश-वनग्राम) बतलाते हैं और कहते हैं कि नदी उसके पासमें थी; जैसे कि हम ऊपर देख चुके हैं। तथापि बौद्ध शास्त्रकार म० बुद्धकी दीक्षा ग्रहण करनेकी क्रियाका भी उल्लेख "अभिवादन और नियमित क्रियाओं और सेवाओंसे निवृत्त होने।" (Having finished their attentions and dutiful services) रूपमें करता है और अंतिम वाक्योंके द्वारा जो जैनाचार्यने बौद्ध मान्यताओंका उल्लेख किया है, सो भी बिलकुल ठीक है। बौद्धधर्मका क्षणिकवाद विख्यात ही है तथापि बौद्ध धर्ममें प्रारंभसे ही मृत मांसके भोजनमें ग्रहण करना बुरा नहीं बतलाया गया है। जो जैनोंके अनुसार एक पापक्रिया है। इस दशामें हम जैन शास्त्रकारके कथनको मान्यता देनेके लिये बाध्य हैं। इसके साथ ही हमको ज्ञात है कि जब म० बुद्ध सर्व प्रथम अपने धर्म प्रचारके लिये

---

१ [illegible] हो, जो बौद्ध भिक्षु स्वीकार [illegible] बौद्धशास्त्रोंके [illegible] प्रमाणित है—मज्झिम [illegible] और [illegible] महापरिनिब्बान सुत्त [illegible] और बुद्धचर्या [illegible] (पृष्ठ [illegible])

राजगृहमें गये थे तो वहाके 'सुप्पतित्थ' नामक मदिरमें ठहरे थे।[1] इसके उपरात फिर कभी भी उनका उल्लेख हमें इस या ऐसे मदिरमें ठहरनेका नहीं मिलता है। इस मदिरका नाम जो 'सुप्पतित्थ' है, सो उसका सम्बध किसी 'तित्थिय' मतप्रवर्तकसे होना चाहिये, परन्तु हम देखते हैं कि उस समयके प्रख्यात् छ मत-प्रवर्तकोंमें इस तरहका कोई नाम नहीं मिलता। हा, जैन तीर्थंकरोंमें एक सुपार्श्वनाथजी अवश्य हुये हैं और उनके सक्षिप्त नामकी अपेक्षा उनके मूल नायकत्वका मदिर अवश्य ही 'सुप्पतित्थ' का मदिर कहला सक्ता है। जैन तीर्थंकरोंके नामोंका उल्लेख ऐसे सक्षिप्त रूपमें होता था, यह हमें जैन शास्त्रोंके उल्लेखोंमें मिलता है। 'दर्शनसार' ग्रन्थमें 'विपरीतमत' की उत्पत्ति वतलाते हुये आचार्य लिखते हैं—

"सुव्वयतित्थे उज्झो खीरकदवुत्ति सुद्धसम्मत्तो।"

इसमें वावीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथजीका नामोल्लेख केवल 'सुव्वय' के रूपमें किया गया है। इसी तरह लोक व्यवहारत. संक्षेपमें सुपार्श्वनाथजीका नामोल्लेख 'सुप्प' के रूपमें किया जासक्ता है। इस रीतिसे जिस 'सुप्पतित्थ' के मदिरमें म० वुद्ध पहिले पहिल ठहरे थे, वह जैन मदिर ही था।* और उसमें उनके वाद

---

१ महावग्ग १-२२-१३ (S B E पृष्ठ १३४) में स्पष्ट लिखा है कि म० वुद्ध पहिले ही जब अपने धर्मका प्रचार करने आये तो राजगृहमें लाठीवनमें 'सुप्पतित्थ' के मदिरमें ठहरे। यहा सेनिय विम्बसारने उनका उपदेश सुना तो उनके लिए वेलुवनमें एक 'आराम' बनकर दिया। *उस समय इस प्रकार सातवें तीर्थंकर श्री पार्श्वजीका मन्दिर विद्यमान होना, जैन तीर्थंकरोंकी ऐतिहासिकता और जैनधर्मकी विशेष प्राचीनताका द्योतक है।

फिर उनके उपरनेका उल्लेख नहीं मिलता है । उसका यही कारण प्रतीत होता है कि जैनियोंने मान लिया कि बुद्ध अब मिथ्यामती बनके विरक्त होगये हैं, इसलिये उन्होंने प्राय जैन मुनियोंके पुन आश्रय देना उचित नहीं समझा । इस तरह भी जैनोंकी इस मान्यताका समर्थन होता है कि म० बुद्ध एक समय जैन मुनि भी रहे थे।

अन्तत म० बुद्ध स्वयं अपने मुखसे जैनियोंकी इस मान्यताको स्वीकार करते हैं । एक स्थानपर वे कहते हैं कि “ मैंने सिर और दाढ़ीके बाल नोचनेकी भी परीषह सहन की है । यह मुनियोंकी केशलोंच क्रिया है । अतएव इसका अभ्यास बुद्धने तब ही किया होगा जब वह जैन मुनि रहे होंगे । इस तरह यह स्पष्ट है कि म० बुद्ध अपने धर्मका प्रचार करनेके पहिले जैन मुनि थे और हम देखते हैं कि उन्होंने किसी एक संप्रदायकी मुनि-क्रियाओंका पालन नहीं किया था । एक समय वे वानप्रस्थ सन्यासी थे तो दूसरे समय जैन मुनि थे । *

भगवान महावीरके विषयमें जब हम विचार करते हैं तो देखते हैं कि उनका साधुजीवन म० बुद्धके विपरीत एक निश्चित और सुव्यवस्थित जीवन था । जैन शास्त्रोंके अध्ययनसे हमको ज्ञात होता है कि भगवान महावीर गृहस्थावस्थासे ही आत्माके उत्कर्षका अभ्यास करते हुये अपने पिताके राज्यकार्यमें सहायक बन रहे थे। वे इस गृहस्थावस्थामें ही संयमका विशेष रीतिसे अभ्यास

---

१ डिक्शनरी व ऑफ बौद्धधर्म और मि० [illegible] 'बौद्धधर्म' पृष्ठ १२.८. पूर्वकार १२१ और जैनसूत्र (S. B. E.) भाग १ पृष्ठ ५६. * श्री आत्मारामजीने भी म० बुद्धका जैनमुनि होना स्वीकार किया है । देखो जैनहितैषी भाग ७ अंक १२ पृष्ठ १

कर रहे थे। एक दिवस ऐसे ही विचारमग्न थे कि सहसा उनको अपने पूर्वभवका स्मरण हो आया और आत्मज्ञान प्रगट हुआ। उन्होंने विचारा कि स्वर्गोंके अपूर्व विषयसुखोंसे मेरी कुछ तृप्ति नहीं हुई तो यह सासारिक क्षणिक इन्द्रियविपयसुख किस तरह मुझे सुखी बना सक्ते हैं? हा! वृथा ही मैंने यह अपने तीस वर्ष गुमा दिये। मनुष्यजन्म अति दुर्लभ है, उसको वृथा गवा देना उचित नहीं। यही बात उत्तरपुराणमें इस प्रकार कही गई है—

"त्रिंशच्छरद्भिस्तस्यैव कौमारमगमद्वयः।
ततोन्येद्युर्मतिज्ञानक्षयोपशमभेदतः ॥ २९६ ॥
समुत्पन्नमहाबोधिः स्मृतपूर्वभवांतरः।
लौकांतिकामरैः प्राप्य प्रस्तुतस्तुतिभिः स्तुतः ॥२९७॥
सकलामरसंदोहकृतनिःक्रमणक्रियः।
स्ववाक्प्रीणितसद्बंधुसंभावितविसर्जनः ॥ २९८ ॥

अर्थात—"इसप्रकार भगवानके कुमारकालके तीस वर्ष व्यतीत हुए। उसके दूसरे ही दिन मतिज्ञानके विशेष क्षयोपशमसे उन्हें आत्मज्ञान प्रगट हुआ और पहिले भवका जातिस्मरण हुआ। उसी समय लौका-तिक देवोंने आकर समयानुसार उनकी स्तुति की और इन्द्रादि सब देवोंने आकर उनके दीक्षाकल्याणकका उत्सव मनाया। भगवानने मीठी वाणीमे सब भाईबन्धुओंको प्रसन्न किया और सबसे विदा ली।"

इस तरह सबको सतुष्ट करके वे भगवान अपनी चन्द्रप्रभा पालकीपर आरूढ होकर वनषड नामक वनमें पहुचे। वहापर आपने अपने सब वस्त्राभूषण आदि उतारकर वितरण कर दिये और सिद्धोंको नमस्कार करके उत्तराभिमुख हो पचमुष्टि लोंचकर परम

उपासनीय निर्ग्रन्थ मुनि होगये । यह भगवान की छद्मस्थ गुप्त विषम था, वास्तवमें संसारका कल्याण जिसके निमित्तसे होना अनिवार्य था और जिसके व्यक्तित्वमें त्रिलोकपूज्यनीय होना अंकित था, उसकी प्रत्येक जीवनक्रिया इतनी स्पष्ट और प्रभावशाली हो तो कोई आश्चर्य नहीं भगवान महावीर ऐसे ही एक परमोत्कृष्ट महापुरुष थे । वे अपने इस जीवनमें ही अनुपम जीवित परमात्मा हुए थे यह हम आगाड़ी देखेंगे ।

भगवान महावीरने निर्ग्रन्थ मुनिकी दिगम्बरीय (नग्न) दीक्षा ग्रहण की थी, यह दिगम्बरशास्त्र प्रगट करते हैं, परन्तु श्वेताम्बर संप्रदायके शास्त्र इससे सहमत नहीं हैं। उनका कथन है कि भगवानने दीक्षासमयमें एक वर्ष और कुछ महीने उपरान्त तक देवदूष्य वस्त्र धारण किये थे पश्चात् वे नग्न हो गये थे। 'देवदूष्य वस्त्र'की व्याख्यामें कुछ भी स्पष्ट रीतिसे नहीं बतलाया गया है कि इसका यथार्थभाव क्या है ? इतना स्पष्ट किया है कि इस वस्त्रको पहिने हुये भी भगवान नग्न प्रतीत होते हैं । श्वेताम्बरियोंके इस कथनसे एक निष्पक्ष व्यक्ति सहसा उनके कथनपर विश्वास नहीं कर सकेगा । देवदूष्यवस्त्र पहिने हुये भी वे नग्न दिखते थे इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि वे नग्न थे ।

---

१ जैनसूत्र (S. B. E.) भाग १ पृष्ठ ७. २. में जैकोबी (?) श्वेताम्बरोंके इस कथनपर यही प्रश्न किया है, यथा—
"Jaines do not understand properly what it means, or do not wish t explain it. It might have meant, he become a Digambara, had this not been opposed to what follows." (Kalpasutra & Navatattwa. F N P 85).

यदि हम श्वेताम्बर आगम ग्रथोंपर इस सम्बन्धमें एक गभीर दृष्टि डालें तो उनमें भी हमें नग्नावस्थाकी विशिष्टता मिल जाती है। अचेलक—नग्न अवस्थाको उनके 'आचाराङ्गसूत्र'में सर्वोत्कृष्ट बतलाया है। उसमे लिखा है कि "उपवास करते हुये नग्न मुनिको जो पुद्गलका सामना करता है, लोग गाली भी देंगे, मारेंगे और उपसर्ग करेंगे और उसकी ससार अवस्थाकी क्रियाओंको कहकर चिढायेंगे और असत्य आक्षेप करेंगे, इन सब उपसर्गोंको—कार्योंको चाहे वे प्रियकर हों या अप्रियकर हो, पूर्वकर्मोंका फल जानकर, उसे शातिसे सतोषपूर्वक विचरना चाहिये। सर्व सासारिकताको त्यागकर सम्यक्दृष्टि रखते हुये सब अप्रिय भावनायें सहन करना चाहिये। वही नग्न है और सासारिक अवस्थाको धारण नहीं करते, प्रत्युत धर्मपर चलते हैं। यही सर्वोत्कृष्ट क्रिया है।"[१] इसके उपरान्त उसी सूत्रमें इसकी प्रशसा करके कहा है कि 'तीर्थ-

---

१ "The naked, fasting (monk), who combats the flesh, will be abused, or struck, or hurt, he will be upbraided with his former trade, or reviled with untrue reproaches Accounting (for this treatment) by his former sins, knowing pleasant and unpleasant occurences, he should patiently wander about Omitting all worldliness one should bear all (disagreeable) feelings, being possessed of the right view (2) Those are called naked, who in this world, never returning (to a worldly state), (follow) my religion according to the commandment This highest doctrine has here been declared for men." (Js Pt I P. P. 55-56)

कुरोंने भी इस नग्नवेशको धारण किया थे। ऐसी अवस्थामें स्पष्ट है कि न केवल भगवान महावीर और अन्यस्वेकने ही इस नग्न-अवस्थाको धारण किया था, प्रत्युत प्रत्येक तीर्थंकरने अपने मुनि जीवनमें इस परीषहको सहन किया था।

वास्तवमें श्वे॰ ग्रन्थोंमें भी जैन मुनियोंका मार्ग वैसा ही मार्ग निर्दिष्ट किया गया है जैसा कि दि॰ शास्त्रोंमें बतलाया गया है। यदि उसमें अन्तर है तो वह उपरान्तके टीकाकारोंके मन्तव्योंका फल है। उनके इसी आचारांगसूत्रमें सर्वोत्कृष्ट नग्न—अचेलक अवस्थाका निरूपण करके अगाड़ी क्रमशः तीन वस्त्रधारी, दो वस्त्रधारी और एक वस्त्रधारी या नग्न साधुके रूप और उसका कर्तव्य प्रतिपादित किया गया है। एक वस्त्रधारी और नग्न मुनिको उनने एक ही कोटिमें रखकर प्रायः अनिच्छितता प्रकट की है। इनके उपदेशक्रमसे यह स्पष्ट है कि वे वस्त्रको त्याग करना आवश्यक समझते थे और यह है भी ठीक, क्योंकि यदि वस्त्रधारी अवस्थासे मुक्ति प्राप्त होसका तो कठिन नग्न दशाका प्रतिपालन करना वृथा ठहरता है। इसीलिये श्वेताम्बर शास्त्रोंमें वस्त्रधारी साधुओंको ऐसे साधु बतलाये हैं जो सांसारिक बन्धनोंसे छूटनेके लिये प्रोत्साहित होते हैं। (Aspiring to freedom from bonds) और एक वस्त्रधारी साधुको अन्ततेव धारण करनेका भी परामर्श दिया गया है। दिगम्बर आम्नायमें वस्त्रधारी

---

१. जैनसूत्र (S. B. E) भाग १ पृष्ठ ५७-५८ २. पूर्व पृष्ठ ६०-६८ ३. पूर्व पृष्ठ ६६-७० ४. पूर्व पृष्ठ ७१-७२ ५. पूर्व पृष्ठ ७३ ७४ ६. पूर्व पृष्ठ ६६-७६ ७. पूर्व ग्रंथ ।

साधु उदासीन श्रावक माने गये है और उत्कृष्ट श्रावक 'क्षुल्लक' 'ऐलक' कहलाते हैं। श्वे० के उत्तराध्ययनसूत्रमें भी क्षुल्लकको लक्ष्यकर एक व्याख्यान लिखा गया है।[1] अतएव यह शब्द वहा भी उदासीन उत्कृष्ट श्रावकके लिए व्यवहृत हुआ प्रतीत होता है। ऐसी दशामें यह स्पष्ट है कि श्वे० आचार्य भी मुनिके लिये नग्न अवस्था आवश्यक समझते हैं और वही सर्वोत्कृष्ट क्रिया है। तथापि तीर्थङ्कर भगवानका जीवन सर्वोत्कृष्ट होता है। इसलिये उनकेद्वारा सर्वोत्कृष्ट क्रियाका पालन और प्रचार होना परम युक्तियुक्त और आवश्यक है। इसीलिये अन्तत श्वे० आचार्यको भी भगवान् महावीरके विषयमें कहना पड़ा है कि "उन (भगवान्)के तीन नाम इस प्रकार ज्ञात हैं अर्थात् उनके माता पिताने उनका नाम वर्द्धमान रखखा था, क्योंकि वे रागद्वेषसे रहित थे, वे 'श्रमण' इसलिये कहे जाते थे कि उन्होंने भयानक उपसर्ग और कष्ट सहन किये थे, उत्तम नग्न अवस्थाका अभ्यास किया था, और सासारिक दु खोंको सहन किया, और पूज्यनीय श्रमण महावीर, वे देवों द्वारा कहे गये थे।[2]

---

१ जैनसूत्र (S B E) भाग २ पृष्ठ २४–२७

२ "His three names have thus been recorded by tradition by his parents he was called Vardhamana, because he is devoid of love and hate, (he is called) Sramana (i e. Ascetic), because he sustains dreadful dangers and fears, the noble nakedness, and the miseries of the world, the name Venerable Ascetic Mahâvîra has been given to him by the gods" (Jaina Sutras S B E Pt I. P 193)

इसी प्रकार श्वेतांबर टीकाकारोंके कथनका अभिप्राय है। उन्होंने उक्त धर्मभेद मात्र 'जिनकल्पी' और 'स्थविरकल्पी' प्रभेदमें जो किया है, वह भी हमारे उक्त कथनकी पुष्टि करता है। 'जिनकल्पी' के भाव यही होसके हैं कि 'जिनकल्प'के और 'स्थविरकल्पी'के इसी तरह 'स्थविरकल्प'के समझना चाहिये, और यह भाव उनके मान्यताके अनुकूल है, क्योंकि तीर्थङ्करोंके समयमें तो वे नग्न जिनकल्पी साधुओंका होना मानते ही हैं। स्वयं तीर्थङ्कर भगवानने नग्न भेषको धारण किया था। अतएव 'जिनकल्प'के तीर्थंकर भगवानके समयके साधुओंको 'जिनकल्पी' बतलाना ठीक ही है और उपरांत स्थविरकल्प पंचमकालमें वस्त्रधारी मुनियोंको 'स्थविरकल्पी' संज्ञा अपनी मान्यताके अनुसार देना युक्तियुक्त है। अतएव इस प्रभेदमे भी नग्न अवस्थाका महत्व और प्राचीनत्व प्रमाणित है।

वास्तवमें सांसारिक बंधनोंसे मुक्ति उस ही अवस्थामें मिल सक्ती है जब मनुष्य बाह्य पदार्थोंसे रंच मात्र भी सम्बंध या संसर्ग नहीं रखता है। इसीलिये एक जैन मुनि अपनी इच्छाओं और सांसारिक आकांक्षाओंपर सर्वथा विजयी होता है। इस विजयमें उसे सर्वोपरि 'लज्जा'को परास्त करना पड़ता है। यह एक प्राकृतिक और परमावश्यक नियम है। उस व्यक्तिकी निस्पृहता और इंद्रियनिग्रहताका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस अवस्थामें सांसारिक संसर्ग छूट ही जाता है। एक अमरीकनवासी लेखकके शब्दोंमें "कपड़ोंकी संसर्गसे छुटनेपर मनुष्य अन्य अनेक संसर्गोंसे छूट जाता है, एक मैलके मिटाने विशेष आवश्यक जो जल है सो इस अवस्थामें उसको धोनेके लिये उसकी जरूरत ही नहीं रहती। वस्तुतः हमारी

बुराई भलाईकी जानकारी ही हमारे मुक्त होनेमे बाधक है। मुक्ति लाभ करनेके लिये हमें यह भूल जाना चाहिये कि हम नग्न है। जैन निर्ग्रन्थ इस बातको भूल गये है, इसीलिए उनको कपड़ोंकी आवश्यक्ता नही है"।[1] यह परमोत्कृष्ट और उपादेय अवस्था है। दि० और श्वे० शास्त्र ही केवल इस अवस्थाकी प्रशसा नहीं करते, प्रत्युत अन्य धर्मोंमें भी इसको साधुपनेका एक चिह्न माना गया है। हिंदुओंकि यहा भी नग्नावस्थाको कुछ कम गौरव प्राप्त नहीं हुआ है। शुकाचार्य दिगम्बर ही थे, जिनके राजा परीक्षितकी सभामें आनेपर हजारो ऋषि और स्वय उनके पिता एव परपिता उठ खडे हुए थे।[2] हिन्दुओंकि देवता शिव और दत्तात्रय नग्न ही है।[3] यूनानवासियोंकि यहा भी नग्न देवताओंकी उपासना होती थी। ईसाईयोकी बायबिलमें भी नग्नता साधुताका चिह्न स्वीकार की गई है यथा –

"और उसने अपने वस्त्र उतार डाले और सैमुयलके समक्ष ऐसी ही घोषणा की और उस सपूर्ण दिवस और रात्रिको वह नग्न रहा। इसपर उन्होंने कहा, " क्या आत्मा भी पैगम्बरोंमेंसे है ?"—(सैमुयल, १९–२४)

" उसी समय प्रभूने अमोजके पुत्र ईसाय्यासे कहा, जा और अपने वस्त्र उतार डाल और अपने पैरोंसे जूते निकाल डाल। और उनने यही किया, नग्न और नगे पैरो विचरने लगे। "

—(ईसाय्या २०–२)

मुसलमानोंकि बारेमें भी कहा गया है कि "अरबोंकि यहा भी

---

१ दी हार्ट ऑफ जैनीज्म पृष्ठ ३५ २. जैन इतिहास सीरीज् भाग १ पृ० ११ ३ पूर्वप्रमाण

नग्न अवस्था संसार त्यागका एक चिह्न माना जाता था। मि० वाशिंग्टन इरविंग अपनी "लाइफ ऑफ मुहम्मद" (Appendix) में कहते हैं कि 'तीफ अर्थात् काबाकी परिक्रमा देना मुहम्मदसे पहिलेकी एक प्राचीन क्रिया थी और स्त्री पुरुष दोनों ही नग्न होकर इस क्रियाको करते थे। मुहम्मदने इस क्रियाको वस्त्र पहिन और इहराम अर्थात् यात्रीके वस्त्रकी व्यवस्था की थी।' ईसा-मसीहका बिना सिया हुआ चोगा अखंडत्व भावमें नग्नताका द्योतक है। (St John XIX 23)." इस प्रकार यह प्रगट है कि एक समय संसारमें सर्वत्र नग्नता साधुपनेका आवश्यक चिह्न समझी जाती थी। भगवान महावीरके समयमें आजीविक जाति भी नग्न रहते थे यह हम देख चुके हैं। आज भी हिंदुओंमें नंगे साधु मिलते हैं। उसी तरह जैन निर्ग्रन्थ साधु भी प्राचीन दिगम्बर भेषमें विचरते दृष्टि पड़ते हैं।

इस परिस्थितिमें यह सहसा जीको नहीं लगता कि उस प्राचीन कालमें जैन निर्ग्रन्थ मुनि वस्त्रधारी होते हों। जैन शास्त्रोंके अतिरिक्त बौद्ध शास्त्रोंमें जैन मुनियोंका उल्लेख नग्नरूपमें किया गया है। साथ ही उनमें 'एक वस्त्रधारी' और 'श्वेतवस्त्रधारी निर्ग्रन्थ-श्रावकों (भक्तों) का भी उल्लेख मिलता है। और यह

---

१. इन्साइक्लो० ऑफ रिलीजन ऑफ एथिक्स, पृ० १
२ देखो दिव्यावदान पृ० १६५ धम्मपद (S. B. B. Vol. I) पृ० १४ विनयपिटक-महावग्ग (P T S. Vol. I) भाग २ पृ० ४८० डायलॉग्स ऑफ दी बुद्ध भाग ३ पृ० १४ महावग्ग १।७०।३ ८।१५।१ चुल्लवग्ग ८।२८।२ अंगुत्तरनिकाय ३।७।१
३ इन्साइक्लो० एण्टीक्वेरी भाग ४२.

दिगम्बर जैन शास्त्रोंके सर्वथा अनुकूल है। व्रती श्रावकोंको श्वेतवस्त्र धारण करनेका विधान उनमें मिलता है तथा ग्यारहवीं प्रतिमाधारी श्रावक 'एकवस्त्रधारी' कहा गया है।[1] इसके अतिरिक्त बौद्धशास्त्रमें जैन मुनियोंकी कतिपय प्रख्यात् दैनिक क्रियायोंका भी इस प्रकार वर्णन मिलता है–

"डायोलॉगस ऑफ बुद्ध" नामक पुस्तक (S B B)के 'कस्सप–सिंहनाद–सुत्त'में विविध साधुओंकी क्रियायोंका वर्णन दिया हुआ है। उनमें एक प्रकारके साधुओंकी क्रियायें निम्नप्रकार दी हैं और यह जैन साधुओंकी क्रियायोंसे बिलकुल मिल जाती है। इसलिये हम दोनोंको यहापर देते हैं —

बौद्धशास्त्र—

१–" वह नग्न विचरता है।"

जैनशास्त्र—

१–यह जैन मुनिके २८ मूलगुणोंमेसे एक है और यो है –
'वत्थाजिणवक्केण य अहवा पत्ताइणा असंवरणं।
णिब्भूसण णिग्गंथ अचेलक्कं जगदि पूज्जं ॥३०॥'–मूलाचार।

२–" वह ढीली आदतोंका है। शारीरिक कर्म और भोजन वह

---

१ यथा'–तद्द्वेधा प्रथम श्मश्रुमूर्धजानपनाययेत्सिते।
सितकौपीन स व्यान कर्तर्या वा क्षुरेण वा ॥३८॥
तद्वत् द्वितीय किन्त्वार्यसंज्ञो लुचत्यसौ कचान।
कौपीनमात्रयुग्धत्ते यतिवत्प्रतिभासनम् ॥ ४८ ॥
—सागारधर्मामृत।

'उत्कृष्ट श्रावको भवेत् द्विविध वस्त्रैकधर प्रथम कौपीनपरिग्रहोऽन्यस्तु।"
—स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा टीका

नग्न अवस्था संसार त्यागका एक चिह्न माना जाता था। मि॰ वाशिंगटन अरविंग अपनी "लाइफ ऑफ मुहम्मद" (Appendix) में कहते हैं कि 'तौफ अर्थात् कावाकी परिक्रमा देना मुहम्मदसे पहिलेकी एक प्राचीन क्रिया थी और स्त्री पुरुष दोनों ही नग्न होकर इस क्रियाको करते थे। मुहम्मदने इस क्रियाको बन्द किया और इहराम अर्थात् यात्रीके वस्त्रकी व्यवस्था की थी।' ईसा-मसीहका चित्र लिया हुआ [illegible] अवस्थामें नग्नताका द्योतक है। (St. John XIX 23)। इस प्रकार यह प्रगट है कि एक समय संसारमें सर्वत्र नग्नता साधुपनेका आवश्यक चिह्न समझी जाती थी। भगवान महावीरके समयमें आजीवक आदि भी नग्न रहते थे यह हम देख चुके हैं। आज भी हिंदुओंमें नंगे साधु मिलते हैं। इसी तरह जैन निर्ग्रन्थ साधु भी प्राचीन दिगम्बर भेषमें मिलते दृष्टि पड़ते हैं।

इस परिस्थितिमें यह सहसा बोधमें नहीं आता कि उस प्राचीन कालमें जैन निर्ग्रन्थ मुनि वस्त्रधारी होते हों। जैन शास्त्रोंके अतिरिक्त बौद्ध शास्त्रोंमें जैन मुनियोंका उल्लेख नग्नरूपमें किया गया है। साथ ही उनमें 'एक वस्त्रधारी' और 'श्वेतवस्त्रधारी' निर्ग्रन्थ-श्रावकों (श्रावकों) का भी उल्लेख मिलता है। और यह

---

१. [illegible] ऑफ [illegible] पृष्ठ १० [illegible]
२ देखो दिव्यावदान पृष्ठ १६५ [illegible] (S. B. E. Vol. I) पृष्ठ १४ विशाखावत्थु-धम्मपदट्ठ कथा (P T S. Vol. I), भाग २ पृष्ठ ३८४ डायलॉग्स ऑफ दी बुद्ध भाग ३ पृष्ठ १४ [illegible] १५०,१ [illegible] संयुत्तनिकाय २,३,१
३ [illegible] ४५.

६–'वह (उस भोजनको भी) नहीं लेता है (यदि पता दिया जाय कि वह खासकर उसके लिये बनाया गया है) ।'

६–इसमें भी कारित अनुमोदना दोष प्रकट है ।

७–'वह कोई निमन्त्रण स्वीकार नहीं करता '

७-यहा भी उक्त दोष है, जैन मुनि निमन्त्रण स्वीकार नहीं करते ।

८–'वह नहीं लेगा (भोजन जो उस वर्तनमेंसे निकाला गया होगा) जिसमें वह राधा गया हो ।'

८–यह 'स्थापित या न्यस्त' दोष है ।

९–(वह भोजन) नहीं (लेगा) आगनमेंसे (कि शायद वह वहां खासकर उसके लिये ही रक्खा हो)'

१०–(वह भोजन) नहीं (लेगा) जो लकडियोंके दरमियान रक्खा गया हो ।'

९ १० प्रादुष्कर दोष है ।

११–(वह भोजन) नहीं (लेगा) जो सिलवट्टेके दरमियान रक्खा हो ।

११–यहा 'उन्मिश्र अशन दोष का भाव है ।

१२–जब दो व्यक्ति साथ२ भोजन करते है तो वह नहीं लेगा केवल एक ही देगा ।

१२–यह अनीश्वर व्यक्ताव्यक्त अनीशार्थ दोषका रूपान्तर है ।

१३–'वह दूध पिलाती हुई स्त्रीसे भोजन नहीं लेगा ।'

१४–'वह पुरुषके संग रमण करती हुई स्त्रीसे भोजन नही लेगा ।'

१३-१४–यह दायक अशनदोषके भेद हैं ।

१५–'वह भोजन नहीं लेगा (जो अकालके समय) एकत्रित किया गया हो ।'

भाड़ २ करता है, (जसे भानमतीकी भाँति मुखपर या केश नहीं करता।"

२–इसमें २४ वें (अप्रमाण) २६ वें (अङ्गारधूम) और २७ वें (भिन्नभोजन) मूलगुणोंका उल्लेख है।

३–"वह अपने हाथ चाटकर साफ करलेता है।"

३–जैन मुनि हाथोंकी अञ्जुलियें जो भोजन रखता जावे उसे वैसा ही खा लेते हैं ग्रास बनाकर नहीं खाते। यहांपर बौद्धाचार्य इसी क्रियाके विरुद्ध आक्षेपरूपसे कहरहे हैं।

४–(जब वह अपने आहारके लिये जाता है, यदि सम्यक्पूर्वक नजदीक आनेको या ठहरनेको कहा जाय कि जिससे भोजन उसके पात्रमें रख दिया जाय तो) वह वैसीमें नहीं जाता है...।"

५–यह मूलाचारकी एषणा समितिकी टीकामें स्पष्ट कर दिया गया है; यथा—

"भिक्षावेलायां ग्रामा गच्छन्ते भूमयुक्तमादिसत्वे मार्गं प्रविष्टे मुनिः। तत्र गच्छताविहृते, न मन्ते, न विसम्भिवं मध्यान्न ॥ १२१ ॥'

६–"वह (उस) भोजनको नहीं लेता है। (जो उसके निमित्त आहारके लिये निमन्त्रणके पहिले बनाया गया हो)।

६–एषणा समितिमें मुनिको ४६ दोषरहित, मल, भावना, काय इत, कारित अनुमोदनासे ९ प्रकारके दोषोंसे रहित भोजन ग्रहण करना आवश्यक बतलाया है, अतएव अपना हुआ भोजन मात्र उनके निमित्तसे बना जानकर वे ग्रहण नहीं करते।

२०—यह साकाक्षानशन नामक व्रत है।

इन क्रियायोंकि विशद विवेचनके लिये 'वीर' वर्ष २ अक २३में 'जैन मुनियोंका प्राचीन भेष' शीर्षक लेख देखना चाहिए।

इसके साथ ही ब्राह्मणोंकि शास्त्रोंमें भी जैन मुनियोका भेष नग्न बतलाया गया है।[1] इन सब प्रमाणोंको देखते हुये यही उचित मालूम होता है कि जैन तीर्थंकरोंने निर्ग्रन्थ मुनिका भेष नग्न ही बतलाया था। और जब उन्होंने इस तरह इसका प्रतिपादन किया था तो वह स्वय भी नग्न भेपमें अवश्य रहे थे यह प्रत्यक्ष है।

अतएव भगवान् महावीरने परम उपादेय दिगम्बरीय दीक्षा धारण करके ढ़ाई दिनका उपवास (वेला) किया था। उसके उपरात जब वह सर्व प्रथम मुनि अवस्थामें आहार निमित्त निकले तो कूलनगरके कूलनृपने उनको पड़गाहकर भक्तिपूर्वक आहारदान दिया था।[3] यही बात श्री गुणभद्राचार्यजी निम्न श्लोको द्वारा प्रकट करते है –

---

१ ऋग्वेद १०।१३९, वराहमिहिर सहिता १९।६१ और ४५।१८, महाभारत ३।२६।२७, रामायण बालकाण्ड भूषण टीका १४।२२, विष्णुपुराण ३।१८ अध्याय, वेदान्तसूत्र २।२।३३-३६, दशकुमार चरित २ २ महावीर पुराण ३ राजा और नगरका एक ही नाम होना हमें सदेहमें डाल देता है कि कहीं यहाँ किसी गणराज्यके राजाका उल्लेख न किया गया हो। इसी अनुरूप हमने अपने 'भगवान महावीर' में इन राजाको 'कोलियगणराज्य' का एक राजा और उसके गणराज्यकी राजधानी देवदहि' को कुलग्राम बतलाया है। किन्तु प० विहारीलाल जी सी टी का कथन है कि यह नगर भगवान महावीरके कुलका नगर अर्थात् कुण्डग्राम होना चाहिये क्योंकि भगवानने अपने जन्मस्थानके निकट ही दीक्षा ग्रहण करके योग धारण किया था। यह भी अनुमान 'कुल ग्राम' के अर्थ 'कुलका ग्राम'

१९–वह अभिग्रह उत्तम होन दीप्ता है ।
१६– वह वहां भोजन स्वीकार नहीं करेगा जहां पासमें कुत्ता लाभ्रो।
१६–भवन बाहार भीव सम्पात वा सद्यक अन्तराय होय है ।
 ४ के यहां भी यह स्वीरुत है ।
१७ वह वहां भोजन नहीं लेगा जहां मक्खियोंका ढेर बना हो।
१७–यहां 'पाणिभोयण' अन्तरायका अभिप्राय है ।
१८–वह (भोजनमें) मच्छी, मांस मद्य आसव, सौरवा ग्रहण नहीं करेगा । १८–वह स्पष्ट है, यथा—
'स्सीरदहिसप्पितिल गुडलवणाणं च जं परिचयणं ।
तित्तकटुकसायंविलमधुररसाणं च जं चयणं ॥१५ ॥
चत्तारि महावियडी य होंति णवणीद मज्जमांसमधू ।
कंसापसंगदप्पा संममकारीओ एदाओ ॥ १५६ ॥'
—मूलाचार ।
१९–वह एक घर जानेवाला होता है.. एक ग्रास भोजन करनेवाला होता है या वह 'दो घर जानेवाला' होता है... दो ग्रास भोजन करनेवाला है; या वह 'सात घर जानेवाला है–सात ग्रास तक करनेवाला है । वह एक आहार निमित्त दो निमित्त या ऐसे ही साततक जानेका नियमी होता है ।
१९–वह वृत्तिपरिसंख्यान क्रिया है ।
२ –वह भोजन दिनमें एक बार करता है, अथवा दो दिनमें एकबार अथवा ऐसे ही सात दिनमें एक बार करता है । इस प्रकार वह नियमानुसार निश्चित अन्तरालमें–अर्ध मास तकमें–भोजन ग्रहण करता रहता है ।

२०—यह साकाक्षानशन नामक व्रत है।

इन क्रियायोंके विशद विवेचनके लिये 'वीर' वर्ष २ अक २३में 'जैन मुनियोंका प्राचीन भेष' शीर्षक लेख देखना चाहिए।

इसके साथ ही ब्राह्मणोंके शास्त्रोंमें भी जैन मुनियोंका भेष नग्न बतलाया गया है।[1] इन सब प्रमाणोंको देखते हुये यही उचित मालूम होता है कि जैन तीर्थंकरोंने निर्ग्रन्थ मुनिका भेष नग्न ही बतलाया था। और जब उन्होंने इस तरह इसका प्रतिपादन किया था तो वह स्वय भी नग्न भेषमें अवश्य रहे थे यह प्रत्यक्ष है।

अतएव भगवान् महावीरने परम उपादेय दिगम्बरीय दीक्षा धारण करके ढाई दिनका उपवास (वेला) किया था। उंसके उपरात जब वह सर्व प्रथम मुनि अवस्थामें आहार निमित्त निकले तो कूलनगरके कूलनृपने उनको पड़गाहकर भक्तिपूर्वक आहारदान दिया था।[3] यही बात श्री गुणभद्राचार्यजी निम्न श्लोकों द्वारा प्रकट करते है –

---

१ ऋग्वेद १०।१३६, वराहमिहिर सहिता १९।६१ और ४५।१८; महाभारत ३।२६।२७, रामायण बालकाण्ड भूषण टीका १४।२२, विष्णुपुराण ३।१८ अध्याय, वेदान्तसूत्र २।२।३३-३६, दशकुमार चरित्र २. २ महावीर पुराण ३ राजा और नगरका एक ही नाम होना हमें सदेहमें डाल देता है कि कहीं यहाँ किसी गणराज्यके राजाका उल्लेख न किया गया हो। इसी अनुरूप हमने अपने 'भगवान महावीर' में इन राजाको 'कोलियगणराज्य' का एक राजा और उसके गणराज्यकी राजधानी देवदलि' को कुलग्राम बतलाया है। किन्तु प० विहारीलाल जी सी टी का कथन है कि यह नगर भगवान महावीरके कुलका नगर अर्थात् कुण्डग्राम होना चाहिये, क्योंकि भगवानने अपने जन्मस्थानके निकट ही दीक्षा ग्रहण करके योग धारण किया था। यह भी अनुमान 'कुल ग्राम' के अर्थ 'कुलका ग्राम'

धारण करनेवाले उन भगवानको उस राजाने पूज्य स्थानपर विराजमान कर अर्घादिकसे उनकी पूजा की । उनके चरणकमलके समीपवर्ती पृथिवीका भाग गधादिकसे विभूषित किया और बड़ी विशुद्धिके साथ उन्हें इष्ट अर्थको सिद्ध करनेवाला परमान्न समर्पण किया । "

भगवान पारणा करके पुन वनमें आकर ध्यानलीन और तपश्चरण रत होगये । 'वहापर निशकरीतिमे रहकर उन्होंने अनेक योगोंकी प्रवृत्ति की और एकात स्थानमें विराजमान होकर वारवार दश तरहके धर्मध्यानका चिंतवन किया ।' उपरान्त विचरते हुये वे उज्जयनीके निकट अवस्थित अतिमुक्तक नामक श्मशानमें पहुचे और वहा प्रतिमायोग धारण करके तिष्ट गये । उसी समय एक रुद्रने आकर उनपर घोर उपसर्ग किया, किन्तु भगवान जरा भी अपने ध्यानसे चलविचल नहीं हुये । हठात् रुद्रको लज्जित होना पड़ा और उसने भगवानकी उचित रूपमें सस्तुति की ।[१] सचमुच जो धीर वीर होते हैं वे इस प्रकार उपसर्ग आनेपर उद्देश्य-पथसे विचलित नहीं होते हैं । कितनी ही बाधायें आयें, कितने ही सकट उपस्थित हों, और कितने ही कण्टक मार्गमें बिछे हों, परन्तु धीर वीर मनीषी उनको सहर्ष सहन करके अपने इष्ट स्थानपर पहुच जाते हैं । उन्हें कोई भी इष्ट पथसे विचलित नहीं कर सक्ता ।

भगवान महावीर परम धीरवीर गंभीर महापुरुष थे । वास्तवमें वे अनुपमेय थे । उन्होंने नियमित ढगसे बाल्यपनेके नन्हें जीवनसे सयमका अभ्यास किया था । क्रमानुसार उसमें उन्नति करते हुये वे उसका पूर्ण पालन करनेके लिये परम दिगम्बर मुनिभेषमें सुशो-

१ उत्तरपुराण पृष्ठ ६१२-६१३.

मिल हुये थे और इस अवस्थामें उन्होंने लगातार बारह वर्षका ज्ञान ध्यानमय तपश्चरण किया था। इस तरह म० बुद्ध और भगवान महावीरके साधुजीवन व्यतीत हुये थे। म० बुद्धने किसी नियमित साधुसंप्रदायका व्यवस्थित अभ्यास नहीं किया था और भगवान महावीरने प्राचीन निर्ग्रन्थ श्रमणोंकी क्रियाओंका पालन अपने गृहत्यागके प्रथम दिनसे ही किया था। अतएव इन दोनों युगप्रधान पुरुषोंके साधुजीवन भी बिल्कुल विभिन्न थे।

---

(५)
ज्ञानप्राप्ति और धर्मप्रचार।

मनुष्यमें पूर्णपनेकी संपूर्ण शक्ति विद्यमान है यह विश्वास आत्मधर्मके पुरस्य जमानेमें प्रत्येक व्यक्तिको हस्तगत था। किन्तु इस आधुनिक पुद्गलवादके दौरदौरेमें यह विश्वास बहुत कुछ लुप्त होरहा है। लोग इस प्राकृतिक सत्यज्ञान—आत्मविश्वासकी ओरसे विमुख होरहे हैं। आत्मज्ञानकी रहस्यमय घटनाओंको उपहासकी दृष्टिसे देखते हैं। मनुष्यकी अपरिमित आत्मशक्तिमें आज प्रायः लोगोंको अविश्वास ही है किन्तु सत्य कभी ओझल हो नहीं सकता! सूर्यको कोटिराशि धूल पर डाली जाय परन्तु उसका प्रखर प्रकाश ओझल क्यों रहेगा। आत्मवाद एक प्राकृतिक सिद्धान्त है उसका प्रभाव कभी मिट नहीं सकता। परिणामतः आज इस भौतिक सभ्यतामें लालित पालित और शिक्षित दीक्षित हुये विद्वान् ही इसके अनादिनिधन सिद्धान्तोंको प्रकट प्रमाणों-

द्वारा स्वीकार करनेको वाध्य हुये हैं। सर ओलीवर लॉज महोदय इन विद्वानोंमें अग्रगण्य हैं। इन्होंने अपने स्वतंत्र प्रयत्नों और आविष्कारों द्वारा यह प्रमाणित कर दिया है कि मनुष्यमें अनन्त शक्ति है। स्वयं परमात्माकी प्रतिमूर्ति उसके भीतर मौजूद है। इस शरीरके नाशके साथ, उसका अन्त नहीं होजाता। वह जीवित रहता और परमोच्च जीवनको प्राप्त करता है। [१]

ये उद्गार यथार्थ सत्य हैं। भारतमें इनकी मान्यता और उपासना युगों पहिलेसे होती आई है। और आज भी इस पवित्र भूमिमें इस मान्यताको ही आदर प्राप्त है, किन्तु नूतन सभ्यताके मदमाते नवयुवक आज इस प्राचीन सत्यको सहसा गले उतारनेमें हिचकते दृष्टि पड़ते हैं। अतएव आत्मवादके लिये भौतिक संसारके प्रख्यात् विद्वान्के उक्त उद्गार हर्षोत्पादक शुभ चिन्ह हैं। इनमें आशाकी वह रेखा विद्यमान है जो निकट भविष्यमें संसारको आत्मवादके सुखमार्ग पर चलते दिखायगी! उस समय सारा संसार यदि जैनाचार्यके साथ यह घोषणा करते दिखाई दे तो कोई आश्चर्य नहीं कि – 'यः परात्मा स एवाहं योऽहं स परमस्तथा।
अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः॥'

भावार्थ–'जो परमात्मा है वही मैं हूं तथा जो मैं हूं सो ही परमात्मा है। इसलिये मैं ही मेरे द्वारा भक्ति किये जानेके योग्य हूं और कोई नहीं, ऐसी वस्तुकी स्थिति है।' वस्तुतः इस यथार्थ वस्तुस्थितिके अनुरूपमें यदि मनुष्य निरालम्ब हो पौद्गलिक प्रभावसे मुख मोडले तो वह इस सत्यके दर्शन सुगम करले।

---

१. देखो 'बोम्बेक्रॉनिकल' भाग १२ संख्या ४८ ई. पृष्ठ ११'

फिर इसी धुनमें उसे शांति और सुखका अनुभव प्राप्त हो और वह इसी सत्यकी उच्च तान लगाये और कहे—

'निज घटमें परमात्मा, चिन्मूरति भइया।
ताहि विलोक सुदृष्टिधर, पंडित परखैय्या' ॥

यही प्राचीन सत्य है। भारतके पुरुषोंने इस ही की सर्वदा घोषणा की थी! घोषणा ही नहीं, प्रत्युत तद्रूप आचरण करके उन्होंने यथार्थरूपमें—वस्तुस्थितिके—परमका दर्शन लोगोंको करा दिये थे। भगवान महावीर और म. बुद्ध भी उन्हीं भारतीय पुरातन पुरुषोंकी गणनामेंसे बाहिर नहीं हैं, यद्यपि म. बुद्धके विषयमें इतना अवश्य है कि उन्होंने तत्कालिक परिस्थितियोंके सुधारनेके लिये प्रगटरूपमें आत्माके अस्तित्वसे इन्कार किया था, परन्तु अन्ततः अप्रगटरूपमें उनको उसका अस्तित्व और महत्व स्वीकार करना पड़ा था, यह हम अगाड़ी देखेंगे। अतएव यहांपर हमको देखना है कि इन दोनों पुण्यशाली पुरुषोंने किसरीतिसे इस यथार्थ मार्ग सत्यके दर्शन किये थे!

म. बुद्धके विषयमें हम देख आये हैं कि वे परिव्राजक आदि साधुओंके मतोंका अभ्यास करके, जैन साधुकी धर्म—ध्यान मय अवस्थाको प्राप्त हुये थे। इस अवस्थामें उन्होंने छः वर्षका कठिन तपश्चरण धारण किया था। इस तपश्चरणमें उनका शरीर बिल्कुल सूखगया था। वे बिल्कुल शिथिल हो गये थे परन्तु उनने यह सब तपश्चरण नियम पालकर मुक्त होनेकी तीव्र आकांक्षासे किया था; इसीलिये वह इच्छित फलको न दे सका। वह,

म० बुद्धने जब देखा कि इस कठिन तपश्चरण द्वारा भी उनको उद्देश्यकी प्राप्ति नहीं होती, तो उन्होंने कहा —

"न इन कठिनाइयोंकि सहन करनेवाले नागवार मार्गसे मैं उस अनोखे और उत्कृष्ट पूर्ण (आर्योंके) ज्ञानको, जो मनुष्यकी बुद्धिके वहार है, प्राप्त कर पाऊगा । क्या सम्भव नहीं है कि उसके प्राप्त करनेका कोई अन्य मार्ग हो ?"

(E R E Vol II P 70.)

इसके साथ ही उन्होंने शरीरका पोषण करना पुन प्रारम्भ कर दिया, परन्तु इस दशामें भी उनका श्रद्धान आर्योंके उत्कृष्ट एव विशिष्ट ज्ञानमें तनिक भी कम न हुआ । उनको उस उत्कृष्ट ज्ञानके पानेकी लालसा अब भी रही और वह उसको अन्य सुगम उपायों द्वारा प्राप्त करनेके प्रयत्नमें सलग्न होगये, किन्तु इतना दृढ श्रद्धान म० बुद्धको जो आत्माके उत्कृष्ट ज्ञानकी शक्तिमें हुआ, सो कुछ कम आश्चर्यपूर्ण नहीं है । अवश्य ही इतना दृढ़ श्रद्धान इस उत्कृष्ट ज्ञानमें उसी अवस्थामें हो सक्ता है जब उसके साक्षात् दर्शन उस श्रद्धानीको होगये हों । अतएव इसमें सशय नहीं कि म० बुद्धने अवश्य ही भगवान पार्श्वनाथके तीर्थके किसी केवलज्ञानी ऋषिराजके दर्शन किये होंगे । इसी कारण उनका इतना दृढ़ श्रद्धान था ।

म० बुद्ध अपने इस दृढ श्रद्धानके अनुरूपमें अन्य सुगम रीतिसे इस उत्कृष्ट आर्यज्ञानको प्राप्त करनेमें सलग्न थे । इतनी कठिन तपश्चर्या जो उन्होंने की थी वह वृथा ही जानेवाली न थी।

१ बुद्ध जीवन (S B E. XIX) पृष्ठ १४७ .

परिणामतः उनको बोधि-वृक्षके निकट उस मार्गके दर्शन होगये, जिसकी वे खोजमें थे। बौद्ध शास्त्रोंका कथन है कि इस अवसरसे उनको पूर्ण ज्ञानकी प्राप्ति हुई थी और वे 'तथागत' होगये थे। बौद्धोंके इस कथनमें कितना तथ्य है, यह हम उन्हींके शास्त्रोंसे देखेंगे।

म० बुद्ध तथागत होगये परन्तु इस अवस्थामें भी वे उन सब प्रश्नोंका उत्तर नहीं देते थे, जो सैद्धांतिक विवेचनमें सर्व प्रथम अगाड़ी आते हैं और सामान्य लोगोंको एक गोरखधंधासा समझ पड़ते हैं। अतएव इन बातोंको ध्यानमें रखते हुए हम सहसा बौद्धोंकी उक्त मान्यताको स्वीकार नहीं कर सके। म० बुद्धको बोधि वृक्ष के नीचे किसी प्रकारके उच्चज्ञानके दर्शन अवश्य हुये थे परन्तु क्या वह पूर्ण ज्ञान (केवलज्ञान) था, यह विचारणीय है। इसके लिये हम स्वयं कुछ न कहकर केवल बौद्धोंके प्रख्य और प्राचीन ग्रंथ 'मिलिन्द पन्ह' के प्रमाण ही उपस्थित करेंगे। वहां म० बुद्धके पूर्णज्ञान (केवलज्ञान या सर्वज्ञता)के विषयमें पूछे जानेपर बौद्धाचार्य कहते हैं—

"यह ज्ञानकी दृष्टि उनके निकट हर समय नहीं रहती थी। भगवानकी सर्वज्ञता विचार करनेपर अवलम्बित थी, और जब वह विचार करते थे तो वह उस बातको जान लेते थे, जिसको वह जानना चाहते थे।"

इसपर मगधवर्ती राजा मिलिन्द उनसे कहते हैं कि—

---

१ [illegible] पृष्ठ १०-७४। २ दी [illegible] बौद्धगुरु-[illegible] (S. B. E. Vol. II.) पृष्ठ १५० और डा० [illegible] 'बुद्धिस्ट [illegible]' पृष्ठ ३६ और ५४।

"इस दशामें जब कि विचार करनेसे बुद्ध किसी बातको जानते थे, तो वह सर्वज्ञ नहीं हो सक्ते।"

बौद्धाचार्य राजाके इस कथनको किन्हीं अंशोंमें स्वीकार करते हुये कहते हैं—

"यदि ऐसे ही है, सम्राट्! तो हमारे बुद्धका ज्ञान अन्य बुद्धोंके ज्ञानकी अपेक्षा सूक्ष्मतामें कम होगा और इसका निश्चय लगाना कठिन है।"[1]

बौद्धशास्त्रके इस कथनसे यह स्पष्ट प्रकट है कि पूर्णज्ञान सर्वव्यापक और उसके अधिकारीमें सर्वथा सदा रहना चाहिये। जैन शास्त्रोंमें सर्वज्ञताकी यही व्याख्या की गई है। इस दशामें यह सहसा नहीं कहा जा सक्ता है कि म० बुद्धको बोधि वृक्षके निकट 'सर्वज्ञता' की प्राप्ति हुई थी। जिस प्रकार सर्वज्ञताकी व्याख्या

---

१ ' the insight' of knowledge was not always and continuence (consciously) present with him. The omniscience of the Blessed One was dependent on reflection. But if he did reflect he knew whatever he wanted to know." Then it is said, "Buddha cannot have been omniscient, if this all-embracing knowledge was reached through investigation" Nagsen replied · "If so, Great King, our Buddha's knowledge must have been less in degree of fineness than that of other Buddhas. And that is a conclusion hard to draw"—Milinda-Panha (S B. E. Vol. XXXV P. 154)

उक्त बौद्ध ग्रन्थमें भी कही है कि इस प्रकार म० बुद्धका ज्ञान पूर्ण नहीं होता। इसी हेतुसे हम इनका सर्वज्ञता साहस कर रहे हैं, परन्तु ऐसा ही किसीकी मान्यताको स्वीकार करनेकी पृच्छा नहीं की जाती। तिसपर यह व्यवस्था केवल उक्त बौद्ध ग्रन्थ पर ही अवलम्बित नहीं है; प्रत्युत म० बुद्धने स्वयं इस बातको स्पष्ट स्वीकार नहीं किया है। जब उनसे सर्वज्ञताके विषयमें प्रश्न हुआ तो उन्होंने टालनेकी ही कोशिश की थी।[1] एकबार राजा पसेन-दीने उनसे पूछा कि—

"अर्हतों (सर्वज्ञों) में कौन सर्व प्रथम है?"

बुद्धने कहा कि "तुम गृहस्थ हो, तुम्हें इन्द्रिय सुखमें ही आनन्द आता है। तुम्हारे लिये संभव नहीं है कि तुम इस प्रश्नको समझ सको।"

इसतरह यह प्रकट प्रगट है कि बोधिवृक्षके निकट जिस दिव्यज्ञानके दर्शन म० बुद्धको हुये थे वह पूर्णज्ञान अथवा सर्वज्ञता नहीं थी; प्रत्युत उससे कुछ हेय प्रकारका वह ज्ञान था। जैन दृष्टिसे उसे हम अवधिज्ञान (विभंगावधि) कह सकते हैं। मेरी भाषा की भूमिकामें बौद्धाचार्य म० बुद्धकी इस ज्ञानप्राप्तिके

---

१. महापरिनिब्बानसुत्त (S. B. E. Vol. XI.) पृ० ४४

२. "He (King Pasenadi) once asked the Buddha "wh is the foremost among the Arahats? The Buddha replied "You are a householder you find delight in sensual pleasures. It will not be possible for you to unerstand this question. —Samyuta-Nikaya. Pt. I. P P 78-79.

विषयमें कहते हैं कि ' इस समय रातके प्रथम प्रहरमें उन्होंने अपने पूर्व जन्मोंके वृतान्तोंको जान लिया, मध्यरातमें उनकी दिव्य दृष्टि पवित्र होगई, और अतिम प्रहरमें कार्य कारणके सिद्धान्तकी तली तक पैठकर उन्होंने उसको जान लिया।' इस कथनसे हमारे उक्त अनुमानकी पुष्टि होती है। अवधिज्ञान द्वारा विचारकर किसी खास विषयकी परिस्थिति बतलाई जासक्ती है और अवधि-ज्ञानी अपने व किसीके भी पूर्वभव जान सक्ता है। इसप्रकार इसमें सशय नहीं कि म० बुद्धको बोधिवृक्षके निकट अवधिज्ञानकी प्राप्ति हुई थी।

इस तरह जब म० बुद्धको साधारण ज्ञानसे कुछ अधिककी प्राप्ति हुई, जो कि उनके जीवनकी एक अलौकिक और प्रख्यात घटना है, तो उनके भक्तोंने उनकी 'तथागत' या 'बुद्ध' कहकर ख्याति प्रकट की। भगवान महावीरका भी उल्लेख इन नामोंसे हुआ मिलता है, परन्तु उनकी जो 'तीर्थङ्कर' उपाधि थी, वह म० बुद्धसे बिलकुल विलक्षण और सार्थक है। म० बुद्धके निकट उसका भाव विधर्मी मत प्रवर्तकका था।[2] अस्तु।

जब म० बुद्धको 'सम्बोधी'की प्राप्ति हो चुकी तो उन्होंने उस समयसे धर्मप्रचार करना प्रारभ नहीं किया था, उनको

१ 'In the first watch of the night he recalled his former lives, in the middle watch he purified the eye celestial, in the last watch he sounded the depth of the knowledge of the Causal Law"
—Psalms of the Sisters P 5

२. जैनसूत्र (S B E.) भाग १ भूमिका XX

उन पाच ऋषियोंको उपदेश देना उचित समझा जिनके साथ उन्होंने छ वर्ष तक घोर तपश्चरण किया था। उस समय उन पाचोंको ऋषिपट्टन–बनारस में स्थित जानकर म० बुद्ध उस ही ओर प्रस्थान कर गये।[1] सम्बोधीके पश्चात म० बुद्धने अपने आप आहार करना नियम विरुद्ध समझा था। इसलिये उनका प्रथम आहार तपुस्स और भल्लिक वणिकोंके यहा मार्गमें हुआ था।[2]

उक्त प्रकार जब म० बुद्ध बनारसको अपने धर्मप्रचारके लिये जा रहे थे, तो मार्गमें उनको एक 'उपाक' नामक आजीवक भिक्षु मिला था। इसके पूछनेपर उन्होंने अपनेको 'सम्बुद्ध' प्रकट

---

१ महावग्ग १,६,५ बनारसके निकट ऋषिपटनमें उक्त पांचों ऋषियोंका रहना जो संभवत जैन मुनि थे, इस बातका द्योतक है कि यह स्थान जैन मुनियोंकी तपश्चर्याका मुख्य केन्द्र था। इसकी पुष्टि उत्तरपुराणके इस कथनसे होती है कि भगवान पार्श्वनाथने बनारसके निकट अवस्थित वनमे दीक्षा ग्रहण की थी और यहींपर उनको केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई थी। इस अवस्थामें यह स्थान जैनमुनियोंकी पल्ली हो तो कोई विस्मय नहीं। मज्झिमनकायमें म० बुद्धने एक 'ऋषिगिरि' का उल्लेख किया है और वहां जैन मुनियोंका होना बतलाया है। (P T S Vol 1 P P 92–93) यदि 'ऋषिपटन' और 'ऋषिगिरि एक ही स्थान है तो हमारे उक्त अनुमानका यह एक और प्रमाण है। साथ ही 'बुद्धजीवन' (S B E XIX. P 168)में इस स्थान (बनारस) को 'प्राचीन ऋषियोंका निवास स्थान' (Where dwelt the ancient Rishis) बतलाया है, अतएव इसका जैनस्थान होना बिल्कुल स्पष्टसा मालूम होता है। २ महावग्ग १।५ (S B E XIII P 82) भगवान महावीर प्रबुद्ध होनेके उपरांत कवलाहार नहीं करते थे। उनकी सत्तामेंसे वेदनीय कर्मके अभाव हो जानेसे इसकी आवश्यक्ता नहीं रही थी।

किया था, परन्तु उस भिक्षुकको इस कथनपर संतोष नहीं हुआ। उसने कहा, जो आप कहते हैं शायद वही ठीक हो। आखिर म० बनारस पहुंचाये। वहां ऋषिपत्तनमें उन्होंने अपने पूर्व परिचयके पांच ऋषियोंको पाया। पहिले पहिल उन्होंने म० बुद्धके कथनपर विश्वास नहीं किया और उनका उल्लेख सामान्य रीतिसे 'मित्र' के रूपमें किया। इसपर म० बुद्धने विशेषरीतिसे उनको समझाया और आश्वासन दिया एवं अपनेको तथागत कहनेका आदेश किया। तब उन्होंने म० बुद्धके कथनको स्वीकार किया और उन्हें अपना गुरु माना। इनमें मुख्य कौण्डिन्य कुलपुत्रको सर्व प्रथम म० बुद्धके 'धम्ममार्ग' में प्रकाश हुआ इसलिये वे ही म० बुद्धके पहिले अनुयायी थे। उपरान्त यहीं 'यश' नामक वणिकपुत्रको भी बुद्धने चमत्कार दिखलाकर अपने मतमें दीक्षितकर भिक्षु बनाया था। इस समय म० बुद्धके अनुयायी सात थे और इनको वे 'अर्हत्' कहते थे। भगवान महावीरको भी मनुष्येतर दिव्य शक्तिकी प्राप्ति थी; परन्तु उन्होंने न कभी किसीको अपना शिष्य बनानेकी इच्छा की और न इस शक्तिका उपयोग इस ओर किया। इस प्रकार जब म० बुद्धके अनुयायी ६१ (अर्हत्) होगये तब उनने भिक्षुओंसे कहा कि "हे भिक्षुओ! मैं मानवी दैवी सब बन्धनोंसे मुक्त हुआ हूं। हे भिक्षुओं! तुम भी मानवी और दैवी सब बन्धनोंसे मुक्त हुए हो। अब तुम, हे भिक्षुओ अनेकों

---

१. महावग्ग ११।७ (पृष्ठ ९१) २. महावग्ग १।६।१८. ३ महावग्ग १।७।१९ (पृष्ठ ९२). ४ महावग्ग १।८।१ और 'बुद्धजीवन' (S. B. E. XIX) पृष्ठ १७२ ५ महावग्ग १।११ (पृष्ठ १०२)

शिष्योंके लाभके लिये, अनेकोंकी भलाईके लिये, मसारपर दया लाकर, मनुष्यों और देवोंके लाभ और भलाईके लिये जाओ।"[1] इस समय 'मार' नामक देवताने आकर पुन म० बुद्धको अपने धर्म-प्रचार करनेसे रोका, परन्तु उन्होंने उपेक्षा की और अपने भिक्षुओंको स्वय ही अन्य शिष्य दीक्षित करने—'उपसम्पदा' देनेका अधिकार देकर चहुओर भेज दिया।[2]

अतएव यह स्पष्ट है कि म० बुद्धने तत्कालीन अवस्थाको सुधारनेके भावसे अपने धर्मका नींवारोपण किया था। उन्होंने प्रचलित रीति रिवाजोंको लक्ष्य करके विना किसी भेदभावके मनुष्योंको अपने धर्ममें दीक्षित करनेका द्वार खोल दिया था। इससे सामाजिक वातावरणमें भी सुधार हुआ था। तथापि उनका पूर्ण लक्ष्य अपने धर्मको स्थापित करनेमें प्रचलित साधु धर्मका सुधार करनेका था। उस समय साधुगण आपसी शास्त्रार्थों और वादोंमें ही समयको नष्ट कर देते थे। वर्षभरमें वे तीन चार महीनोंके सिवाय शेष सर्व दिनोंमें सर्वथा इधर उधर विचर कर सैद्धांतिक वादविवादोंमें ही प्राय

---

१. "I am delivered, O Bhikkhus, from all fetters human and divine You, O Bhikkhus, are also delivered from all fetters human and divine Go ye now, O Bhikkhus, and wander, for the gain of the many, for the welfare of the many, out of compassion for the world, for the good for the gain, and for the welfare of gods and men etc" (Mahavagga I, II, I). २. महावग्ग १।११।० और १।१२।१.

व्यस्त रहते थे।[1] इसी कारण म० बुद्धने इन साधुओंके इस रोगसे छुड़ाकर आत्मस्थितिको प्राप्त करानेके लिये सैद्धांतिक विवेचनका सर्वथा विरोध किया। विरोध ही नहीं प्रत्युत उसको आत्मोन्नतिके मार्गमें अनिष्ट स्वरूप घोषित किया। यह बतलाया कि वाद विवादमें आत्मशुद्धि नहीं है। स्पष्ट कहा:—

'या उण्णतीसास्स विघातभूमि, मानातिमानम् वदते पनेसो।
एतमपि दिस्वा न विवादयेथ, नहि तेन सुद्धिं कुसलावदंति
॥ ८३० ॥ सुत्तनिपात ॥

भावार्थ—"जो वाद एक समय व्यक्तिके हर्षका कारण है वही उसके पराजित होनेका स्थान होगा, इसपर भी वह मान और अपमानके

---

1 There were teachers or sophists who spent eight or nine months of every year wandering about precisely with the object of engaging in conversational discussions on matters of ethics and philosophy nature lore and mysticism Like the sophists among the Greeks, they differed v ry much i i telligence in earnestness and in honesty —Buddhist India P 141 भगवान महावीरके वर्णनमें भी ऐसे विवादशील व्यक्तियोंको हेयदृष्टिसे देखा गया है; जैनाचार्य भी विवादके विरुद्ध सिद्धसेन इसी बातको प्रकट करते हैं —

क्व च तत्त्वाभिनिवेशः क्व च संरम्भातुरारुणं वदनम्।
क्व च सा दीक्षा [illegible] ॥ २ ॥
अन्यत एव श्रेयांस्यन्यत एव विचरन्ति वादिवृषाः।
वाक्संरम्भः क्वचिदपि न जगाद मुनिः शिवोपायम् ॥ ७ ॥"

आवेशमें वाद करता है। इसको देखते हुये, किसीको भी वाद नहीं करना चाहिये, क्योंकि कुशल पुरुष कहते हैं कि इसके द्वारा शुद्धि नहीं होती।" इस प्रकार मुख्यत उस समयकी परिस्थितिको लक्ष्य करके उन्होंने सैद्धातिक वादविवादको अनावश्यक बतलाया, परन्तु उस समयके शास्त्रीय वातावरणको वह एकदम पलट न सके। आखिर स्वय उनको भी सैद्धातिक बातोंका प्रतिपादन गौणरूपमें करना ही पड़ा, यह हम अगाड़ी देखेंगे, किन्तु यह स्पष्ट है कि म० बुद्धका उद्देश्य सामयिक परिस्थितिको सुधार कर लोगोंको जाहिरा शातिमय जीवन व्यतीत करनेका मार्ग सुझाना था। उनका सासारिक जीवन सुविधामय साधु जीवन हो, यही उनको इष्ट था। सासारिक बधनोंमें पडे हुये लोगोंको गृहस्थीमेंसे निकाल कर इस मार्गपर लगाना ही उनका ध्येय था। वह येनकेन प्रकारेण मनुष्योंके वर्तमान जीवनको सुविधापूर्ण सुखमय देखना चाहते थे।[1] उनके सघके भिक्षु-भिक्षुणी भी इस ही प्रकारके सुधारक थे। 'थेरगाथा' की भूमिकामें यही कहा गया है कि "ये बौद्ध भिक्षु सामयिक सुधारके लिये कटिबद्ध थे। वे जनताको धर्म, प्रेम, सादा जीवन व्यतीत करने, यज्ञ सम्बन्धी हिंसासे दूर रहने और जाति-पातिके बन्धनोंकी उपेक्षा करनेके उपदेश देते थे।"[2] इसतरह म० बुद्धने जिस धर्मकी नींव

१ डॉ० कीथकी बुद्धिस्ट फिलॉसफी" पृष्ठ ६३ २ "They (Buddhist recluses) stood for the social reforms of their day teaching goodness, amity, the simple life, the abolition of sacrificial and other slaughter, and of the barriers of rank and caste."
—The Psalms of Brethren Intro XLVII

जाती थी, वह वस्तुतः भारतमें एक सामाजिक सुधारकी लहर ही थी।

वास्तवमें म० बुद्धका 'मध्य मार्ग' जिसका प्रतिपादन उन्होंने सर्व प्रथम बनारसमें किया था। एक तरहसे हिन्दुओंकी जाति व्यवस्था और जैनियोंकी कठिन तपस्याके विरोधके सिवा और कुछ न था। इससे कम भारतमें तो वह एक सैद्धांतिक मत नहीं था। इसकी घोषणा जिसरूपमें म० बुद्धने स्वयं की थी—

"हे भिक्षुओ, दो ऐसी बातें हैं जिनसे गृहत्यागियोंको बचना चाहिये। वह दो बातें क्या हैं? एक आमोद प्रमोदमय जीवन वह जीवन जो केवल इन्द्रियजनित सुख और वासनाके लिये हो वह नीच बनानेवाला है। इन्द्रियजनित, उपेक्षाके योग्य और लाभरहित है और अन्य तपस्यामय जीवन है वह पीड़ामय उपेक्षाके योग्य और लाभरहित है। इन दोनों बातोंसे बचते हुए हे भिक्षुओ, तथागतको मध्यमार्ग का ज्ञान प्राप्त हुआ है; जो बुद्धि, ज्ञान, शांति, सम्बोधि, और निर्वाणका कारण है।"

इस कथनसे स्पष्ट है कि म० बुद्धने उस समय प्रचलित मतमतान्तरोंमें स्वयं माध्यमिक आधार एक 'समझौता'—मध्यपथ सा स्थापित किया था। इसमें उनका पूर्ण लक्ष्य जनताके लिये एवं उन सबके लिये, जो उनके मतको माननेके लिये तैयार थे किसी रीतिसे भी पीड़ाका अन्त कर देना था। इसलिये यथार्थमें मध्यमार्ग एक ओर तो कर्मयोगके रूपमें प्रचलित अनियमित सांसारिक सुखजीवनके, जिसमें सब ही सांसारिक कार्य किया

---

१ महावग्ग १।६।१७ ए. बि० कीथकी बुद्धिस्ट फिलॉसफी पृष्ठ १२.

फलप्राप्तिकी इच्छासे किये जाते थे, और दूसरी ओर तपश्चरणके मध्य एक ' राजीनामा ' था।[1]

यह भाषित होता है कि म० बुद्धने अपने मतके सिद्धान्तोंकी आर्षता और वैज्ञानिकताकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। उन्होंने सैद्धान्तिक विवेचनमें पड़नेको एक झञ्झट समझा। बस उनका ध्येय एक मात्र वर्तमान जीवनकी पीडाके दारुण क्रन्दनसे लोगोंको हटानेका था। इसीलिये उन्होंने तपश्चरणको भी एक पीडोत्पादक अति समझा, और कहा कि– " दुःख बुरा है और उससे बचना चाहिये। अति (Excess) दुःख है। तप एक प्रकारकी अति है, और दुःखवर्धक है। उसके सहन करनेमें भी कोई लाभ नहीं है। वह फलहीन है। "—(ERE Vol. II. P 70)

किन्तु म० बुद्धने तपश्चरण किस अनियमित ढंगसे किया था, यह हम देख चुके हैं। वह श्रावककी आवश्यक क्रियाओंका अभ्यास किये बिना ही साधुजीवनमें कमाल हासिल करना चाहते थे। आर्योंके उत्कृष्ट ज्ञानकी तीव्र आकांक्षा रखकर—उसको पानेका निदान बाँधकर वह तपश्चरणका अभ्यास कररहे थे। इस दशामें तपश्चरण पूर्ण कार्यकारी नहीं हो सक्ता था। पर्वतकी शिखरपर पहुंचनेके लिये सीढ़ियोंकी आवश्यक्ता है और फिर जब संतोषपूर्वक उन सीढ़ियोंका सहारा लिया जायगा तब ही मनुष्य शिखिर पर पहुंच सक्ता है। मालूम पड़ता है कि म० बुद्धने इस ओर ध्यान नहीं दिया। इस ही कारण वह उसके द्वारा पूर्णताको प्राप्त न कर सके। परन्तु तो भी उनका यह प्रयास बिल्कुल विफल नहीं गया

१ ' कॉन्फ्ल्यून्स ऑफ ऑपोज़िट्स ' पृष्ठ १४९

जा चुका हम देख चुके हैं। यदि म० बुद्धने इस ओर ध्यान दिया होता तो वस्तुतः हम उनसे और कुछ अधिक ही उत्तम वस्तु पाते! भगवान महावीरने एक नियमित रीतिसे साधुजीवनका अभ्यास किया था और व्यवस्थित ढंगसे तपश्चरणका पालन किया था। इसीलिये वह पूर्ण कार्यकारी हुआ यह हम आगे देखेंगे। जैसे भगवान महावीरने भी ऐसे थोथे तपश्चरणको बुरा बतलाया है। उनके निकट वह केवल कायक्लेश और बालबोध रूप है। परन्तु वह मानते थे कि ज्ञान ध्यानमय अभ्यासके साथ साथ परमपद प्राप्तिके लिये तपश्चरण भी परमावश्यक है। उनके निकट तपस्या वह कीमियाई क्रिया थी जो आत्मामेंसे कर्ममलको दूर करके उसे बिल्कुल शुद्ध बना देती है। यह तपस्या संसारी मनुष्यको पहिले पहिल तो अवश्य ही जरा कठिन और नागवार मालूम पड़ती है परन्तु ज्यों ही मनुष्यको सम्यक् अभ्यास हुआ त्यों ही उसको ही इसकी आवश्यकता नजर पड़ जाती है और फिर इसके पालनमें एक अपूर्व आत्मस्वरूप स्वाद मिलता है। वस्तुतः सिद्धगतिका पथ भी शीघ्र होता

---

१ [illegible] कुमति [illegible] ।
[illegible] ॥ १ ९ ॥
[illegible] ।
[illegible] कुन्दकुन्दाचार्य।
बौद्धके [illegible] (१२। [illegible]) में भी भगवान महावीरकी [illegible] स्वीकार की गई है। [illegible] है कि भगवान महावीरने [illegible] था। [illegible] किया था। ([illegible]) ।

है। तपश्चरण एक परमोत्कृष्ट प्रकारकी मिहनत है, जिसका फल भी परमोत्कृष्ट है। अतएव पवित्र साधुजीवनका यह एक भूषण है। प्रत्येक मत-प्रवर्तकको इस भूषणको किसी न किसी रूपमें धारण अवश्य करना पड़ता है। म० बुद्धने अवश्य इसका विरोध किया परन्तु अन्ततः उनको भी इसे किंचित न्यूनरूपमें स्वीकार करना ही पड़ा।[1]

इस तरह म० बुद्धकी ज्ञान प्राप्तिके तो दर्शन कर लिये, अब पाठकगण आइये, भगवान महावीरके ज्ञान प्राप्तिके दिव्य अवसरका भी दिग्दर्शन कर लें। भगवान महावीरने व्यवस्थित रीत्या श्रावक अवस्थासे ही संयमका अभ्यास करके मुनिपदको धारण किया था। मुनि अवस्थामें भी पहिले उन्होंने ढाई दिन (वेला)का उपवास किया था और फिर एक बारह वर्षके तपश्चरणकी परीषहोंको इन्होंने सहन किया था। इस प्रकार क्रमवार आत्म-उन्नति करते हुये वे इस १२ वर्षके तपश्चरणको पूर्ण करके विचर-रहे थे, कि वैशाख सुदी दसमीके दिन वे जृम्भक ग्रामके बाहर ऋजुकूला नदीके वामतटपर एक सालवृक्षके नीचे विराजमान् हुये तिष्ठते थे। ज्ञान-ध्यानमें लीन थे। समय मध्याह्नका हो गया था। सूर्य अपने प्रचण्ड प्रकाशसे तनिक स्खलित हो चले थे। उसी समय इन भगवान महावीरको दिव्य केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई।[2] मानो इस परम प्रखर आत्मप्रकाशका दिव्य उदय जानकर ही उस समय दिनकर महाराजका भौतिक प्रकाश फीका पड़ चला था।

---

१. सुत्तनिपात (S B E) पृष्ठ ९० ९३, और १४६–१४८, एवं धम्मपद अध्याय १. २ जैनसूत्र (S B E) भाग १ पृष्ठ २०१ और उत्तरपुराण पृष्ठ ६१४.

भगवान महावीर उस शुभमें मध्यान्हमें केवलज्ञानी हो गये। साक्षात् तीर्थंकर बन गये। तीनों लोककी चराचर वस्तुयें उनके ज्ञाननेत्रमें झलकने लगीं। वे सर्वज्ञ हो गये।[1] त्रिलोकवंदनीय बन गये। ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मोंका उनके नाश हो गया इसलिये वे संसारमें ही साक्षात् परमात्मा होगये-सयोग केवली बन गये। उस समयसे एक क्षणके लिये भी उनका ज्ञान मन्द न पड़ा। वह ज्योति ज्यों की त्यों प्रकाशमान् रही और यूं ही हमेशा रहेगा। वही दिव्यजीवन है। परमोत्कृष्ट प्रकाश है। साक्षात् ज्ञान, शांति और सुख है।

जिससमय भगवान महावीर सर्वज्ञ हुये, उस समय संसारमें अलौकिक घटनायें घटित होने लगीं जिससे भगवानको सर्वज्ञत्व प्राप्त हुआ जानकर देवलोकके इन्द्र और देवगण वहां उनके निकट आनन्दोत्सव मनाने आये थे। भगवानकी वन्दना उन्होंने अनेक प्रकारसे की। हम भी उस दिव्य अवसरका स्मरण करके मन वचन, कायकी विशुद्धतासे भगवानके पवित्र ज्ञानकेन्द्र पर चरणोंमें नतमस्तक होते हैं।

उसी समय इन्द्रने भगवानका सभामंडप-समवशरण रचाया था, जिसकी विभूतिका वर्णन जैन ग्रन्थोंमें खूब मिलता है। इसी समवशरणकी गंधकुटीमें अंतरीक्ष विराजमान होकर भगवान महावीर सर्व जीवोंको समान रीतिसे कल्याणकारी उपदेश देते थे। इस समवशरणमें १२ कोठे थे, जिनमें मनुष्योंके समान तिर्यंचोंको स्थान मिलता था। इनके साथ पुरुष और स्त्रियोंके लिये स्थान

१. पूर्वोक्त ८. महावीरचरित्र पृ. २६६-२६९.

नियत था। इस रीतिसे भगवानका उपदेश तिर्यंचोंतकको होता था। वस्तुतः भगवानके दिव्य उपदेशसे पशुओंको अपने प्राणोंका भय चला गया था। वे सुरक्षित और अभय हो गए थे। इस ही दैवी समवशरण सहित भगवान सर्वत्र विहार करते थे। इस विहारमें उनके साथ चतुर्निकायक संघ और मुख्य गणधर भी रहते थे। भगवानके सर्व प्रथम शिष्य और मुख्य गणधर वेदपारागत प्रख्यात ब्राह्मण इन्द्रभूति गौतम थे।[1] भगवान महावीरने सनातन सत्यका उपदेश सर्व प्रथम इन्हींको दिया था। इनको मनःपर्ययज्ञानकी प्राप्ति हुई थी और इन्होंने ही मुख्य गणधरके पदपर विराजमान होकर भगवानकी द्वादशाङ्ग वाणीकी रचना की थी।[2]

भगवान महावीरका उपदेश सनातन यथार्थ सत्यके सिवा और कुछ न था। उन्होंने अपनी सर्वज्ञता द्वारा सर्व वस्तुओंका यथार्थरूप विवेचित किया था इसलिये वस्तुस्थितिके अनुरूपमें ही उनका उपदेश था। उन्होंने किसी नवीन मतकी स्थापना नहीं की थी, बल्कि प्राचीन जैनधर्मको पुनः जीवित किया था। जैनधर्मका अस्तित्व उनसे भी पहिले विद्यमान था, परन्तु भगवान महावीरके समयमें उसको विशेष प्रधानता प्राप्त नहीं थी, इसलिये भगवान महावीरके समयानुसार उसका पुनः निरूपण हुआ था। यह सनातन धर्म अव्याबाध सर्व सुखकारी और अमर जीवनको प्रदान करनेवाला था। जिस तरह वस्तुकी मर्यादा थी उसी तरह उसमें बताई गई थी। यही धर्म आज जैनधर्मके नामसे विख्यात है।

---

१ उत्तरपुराण पृष्ठ ६१४ और जैनसूत्र (S. B. E.) भाग २ पृष्ठ ४१ नोट २. २ उत्तरपुराण पृष्ठ ६१६.

इस तरह भगवान महावीर सर्वज्ञ थे और उनका धर्म यथार्थ धर्म था। यह मान्यता केवल जैनोंकी ही नहीं है, प्रत्युत बौद्ध और ब्राह्मण शास्त्र भी इस ही बातकी पुष्टि करते हैं। एकबार म. बुद्धने स्वयं कहा था:—

"भाइयो! कुछ ऐसे सन्यासी हैं (अचेलक, आजीविक, निर्ग्रंथ आदि) जो ऐसा श्रद्धान रखते और उपदेश करते हैं कि प्राणी जो कुछ सुख दुःख व समभावका अनुभव करता है वह सब पूर्व कर्मके निमित्तसे होता है। और तपश्चरणसे पूर्व कर्मोंके नाशसे, और नये कर्मोंके न करनेसे, आस्रवके रोकनेसे कर्मका क्षय होता है और इस प्रकार पापका क्षय और सर्व दुःखका विनाश है। भाइयो, यह निर्ग्रन्थ (जैन) कहते हैं। मैंने उनसे पूछा क्या यह सच है कि तुम्हारा ऐसा श्रद्धान है और तुम इसका प्रचार करते हो। उन्होंने उत्तर दिया.. हमारे गुरु ज्ञातपुत्र सर्वज्ञ हैं.. उन्होंने अपने ज्ञान बलसे इसका उपदेश दिया है कि तुमने पूर्वमें पाप किया है इसको तुम उग्र और दुःसह आचारसे दूर करो और जो आचार मन वचन कायसे किया जाता है उससे आगामी जन्ममें बुरे कर्म कट जाते हैं। इस प्रकार सब कर्म अन्तमें नष्ट हो जायेंगे

१ बौद्ध शास्त्रोंमें निग्रन्थ ज्ञातपुत्र भगवान महावीरकी सर्वज्ञता स्वीकार की गई है—मज्झिमनिकाय १।९२ और ५२-५३ अंगुत्तर निकाय ३।७४, न्यायबिन्दु अध्याय ३। धर्मकीर्तिने सर्वज्ञताका विवरण करते दृष्टान्तमें ऋषभ और वर्द्धमान (महावीर) का उल्लेख किया है- यथा सर्वज्ञ आप्तो वा ज्योतिर्ज्ञानादिकमुपदिष्टवान् । यथा ऋषभ वर्द्धमानादिरिति। (न्यायबिन्दु) अध्याय ३, पृष्ठ केलहर्न (Kellborn, V L.) ने लिखा है।

और सारे दु खका विनाश होगा। इस सबसे हम सहमत हैं।"
(मज्झिम २।२१४)

इस उद्धरणमें स्पष्ट रीतिसे भगवान महावीरकी सर्वज्ञता और उनके द्वारा प्रतिपादित धर्मसिद्धान्तोंको स्वीकार किया गया है। वास्तवमें भगवान महावीरने इन्हीं बातोंका उपदेश दिया था, जिनका उल्लेख उक्त उद्धरणमें हैं।[1] इसलिये यह भी प्रत्यक्ष है कि आज जो जैनधर्म प्राप्त है वह मूलमें वही है जिसका प्रतिपादन भगवान महावीरने किया था। हा, उसके बाह्यभेषमें अन्तर पड़ा हो तो कोई विस्मय नहीं!

भगवान महावीरकी सर्वज्ञताके सबधमें आजकलके विद्वान् भी हमारे उपरोक्त कथनका समर्थन करते हैं। डॉ० विमलचरण लॉ एम० ए०, पी० एच० डी० आदि बौद्ध ग्रथोंके सहारेसे लिखते हैं कि 'वे भगवान सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त केवलज्ञानके धारी, चलते-बैठते सोते-जागते सब समयोंमें सर्वज्ञ थे। वे जानते थे कि किसने किस प्रकारका पाप किया है और किसने पाप नहीं किया है। वे भगवात् ज्ञात्रिक महावीर अपने शिष्योंके पूर्वभव भी बता सक्ते थे।'* आप ही बौद्धोंके 'सयुक्त निकाय' में लिखा बतलाते है कि 'ज्ञात्रि क्षत्रिय महावीर बहुत ही होशियार और परम विद्वान्, एक दातार पुरुष, चतुर्प्रकारसे इन्द्रियनिग्रहमें दत्तचित्त और स्वय देखी सुनी वस्तुओंको बतलानेवाले थे। जनता उनको बहुत ही पूज्यदृष्टिसे देखती थी।'+ एक अन्य विद्वान्, बौद्धोंके

१ जैनसूत्र (S B E.) भाग २ भूमिका पृ४,१५ * सम क्षत्रिय ट्राइब्ज आफ ऐन्शियेन्ट इन्डिया पृ० ११८. + पूर्व पृ० १२०.

म० बुद्धने बोधिवृक्षसे चलकर सर्व प्रथम बनारसमें उपदेश दिया था। और फिर वे क्रमशः उरुवेला, गयासीस, राजगृह, कपिलवस्तु, श्रावस्ती, राजगृह, कोदनावत्थु, राजगृह, श्रावस्ती, राजगृह, बनारस, भद्दिय, श्रावस्ती, राजगृह, श्रावस्ती, राजगृह, बनारस, अन्धकविन्दु, राजगृह, पाटलिगाम, कोटिगाम, नातिका, आपन, कुसीनारा, आतूम, श्रावस्ती, राजगृह, दक्षिणागिरि, वैशाली, वनारस, श्रावस्ती, चम्पा, कोशाम्बी, पारिलेय्यक, श्रावस्ती, बालकालोन्करगाम, वेलुव, कुसीनारामें विचरते रहे थे।[1] बनारसमें ही उन्होंने शिष्योंको 'उपसपदा' देने–शिष्य बनानेकी आज्ञा दे दी थी। गयासीसमें जब मौजूद थे तब उनके शिष्योंकी सख्या एक हजार थी।[2] पहिले ही राजगृहमें जब पहुंचे तब सजयके शिष्य सारीपुत्त और मौद्गलायन उनके मतमें दीक्षित हुये। इनके विषयमें हम पहिले ही लिख चुके हैं। इसके बाद ही उन्होंने 'उपाध्याय' और 'आचार्य' पद नियुक्त किये परन्तु इन दोनोंके कर्तव्य एक थे।[3] यह एव अन्य क्रियायें म० बुद्धने अन्य मतोंमें प्रचलित रीतियोंके प्रभावानुसार स्वीकृत की थीं। इसी समय उन्होंने शाक्यवशी व्यक्तियोंके लिये खास रियायत करनेका भी आदेश दिया था।[4] फिर द्वितीय बार जब श्रावस्तीसे वे राजगृह आये तो राजा श्रेणिक बिम्बसारके आग्रहसे 'तित्थियों' की भाति अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णमासीके दिनोंपर एकत्रित होकर उपदेश देनेका आदेश भिक्षुओंको दिया।[5] इसके

१. महावग्ग (S. B E.) में जिस प्रकार यह विवरण दिया है वैसे ही यहांपर दिया गया है। २ महावग्ग (S B E) पृष्ठ १३४ ३ पूर्व पृष्ठ १५३ और १०८. ४ पूर्व पृष्ठ १५१. ५ महावग्ग (S. B E) पृष्ठ २४०

चन्द लुहारके यहा उन्होंने सुअरके मासके सोरवेका अन्तिम भोजन किया था।[1] अन्तत कुशीनारामें उन्होंने शिष्योंको उपदेश दिया था और आनन्दसे कहा था कि —

" अतएव हे आनन्द ! तुम अपने आप अपने तई प्रकाश रूप बनो। अपने आपको ही अपनी शरण समझो। किसी बाह्य शरणका आसरा न ताको। सत्यको प्रकाशरूप जानकर उसको ही अच्छी तरह गृहण करो। उसी सत्यको त्राणदाता जानो। अपने आपके सिवा किसी अन्यमें शरणकी लालसा मत रक्खो। "[2]

इसी अवसरपर आनन्दने किसी प्रख्यात् नगर चम्पा आदिमें अपने अन्तिम दिवस व्यतीत करनेका आग्रह म० बुद्धसे किया था। इसपर म० बुद्धने कुसीनाराकी पूर्व विभूतिका स्मरण कराकर आनन्दको शान्त किया था।[3] वस्तुत यहापर उन्होंने आनन्दके तीव्र मोहको अपनेमेंसे हटानेके लिये यह सब उपदेश दिये थे। आखिर उन्होंने अपने अन्तिम जीवनका समय निर्दिष्ट करते हुये आनन्दसे कहा था —

" आनन्द ! अब तुम कुसीनारामें जाकर कुसीनाराके मल्ल-राजाओंसे कहो, 'आजके दिन, हे वासेट्ठगण, रात्रिके अन्तिम पहरमें तथागतका सर्व अन्तिम मरण होगा। हे वासेट्ठगण, कृपालु होओ, यहा कृपालु होओ। इसके बाद अपने आपको यह कहनेको अवसर न दो, हमारे ही ग्राममें तथागतकी मृत्यु हुई और हमने तथागतके अन्तिम समयमे दर्शन न कर पाये'। "[4]

१, महापरिनिब्बानसुत ४। १ –१८ (बुद्धिस्टसुत्त्स S B. E XI पृष्ठ ३८) २ बुद्धिस्टसुत्त्स पृष्ठ ३८—महापरिनिब्बान सुत्त २।३३ ३ पूर्व पृष्ठ ९९ ४ Go now, Anan'a, and enter into

इस तरहके अनुक्रममें म० बुद्धका जीव उस रात्रिको इस नश्वर शरीरको त्याग गया। उनके अनुयायियोंने उनके शरीरकी अन्त्येष्टि क्रिया की। उपरान्त बौद्धशास्त्र कहते हैं कि लिच्छवि, मल्ल, कोलिय, शाक्य आदि क्षत्रिय राजाओंने उनके शरीरकी भस्मको मंगवाकर उसकी स्मृतिमें स्तूप बनवाये थे। इस तरह म० बुद्धका धर्मप्रचार और अन्तिम समय पूर्ण हुआ था।

भगवान महावीरने भी अपने समवशरणकी विभूति सहित सर्वत्र विहार किया था। दिगम्बर और श्वेताम्बर शास्त्रोंमें इसमें भी अन्तर अवश्य है परन्तु वह कुछ विशेष महत्व नहीं रखता। श्वेताम्बर शास्त्र उसका उल्लेख वर्षावास व्यतीत करनेके रूपमें करते हैं। दिगम्बर कहते हैं कि तीर्थंकरावस्थामें वर्षावास व्यतीत करनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि तीर्थंकर भगवानका शरीर इतना विशुद्ध हो जाता है कि उसके द्वारा किसी प्रकारकी हिंसा होना बिल्कुल असंभव है। अतएव श्वे० के अनुसार "भगवान महावीरने प्रथम चातुर्मास अस्थिकग्राममें फिर तीन चातुर्मास चम्पा

Kusinārā, and inform the Mallas of Kusinārā, saying, This day O Vasetthas, in the last watch of the night the final passing away of the Tathagata will take place. Be favourable herein, O Vasetthas be favourable. Give no occasion to reproach yourselves hereafter saying, In our own village did the death of our Tathagata took place, and we took not the opportunity of visiting the Tathagata in his last hours."
—Mahāparinibbāna Sutta, V 45.

और पृष्टिचम्पामें, बारह वैशाली और वाणिज्यग्राममें, चौदह राज-गृह और नालन्दमें, छै मिथिलामें, दो भद्रिकामें, एक आलभिकामें, एक पनितभूमिमें, एक श्रावस्तीमें, एक पावामें राजा हस्तिपालकी कचहरीमें व्यतीत किये थे।"[1] और दिगम्बरी व शास्त्र इसप्रकार बतलाते हैं कि "जिसप्रकार भव्यवत्सल भगवान ऋषभदेवने पहिले अनेक देशोंमें विहार कर उन्हें धर्मात्मा बनाया था उसी प्रकार भगवान महावीरने भी मध्यके (काशी, कौशल, कौशल्य, कुसध्य, अश्वष्ट, त्रिगर्तपचाल, भद्रकार, पाटच्चार, मौक, मत्स्य, कनीय, सूरसेन एव वृकार्थक), समुद्रतटके (कलिंग, कुरुजागल, कैकेय, आत्रेय, कांबोज, वाल्हीक, यवनश्रुति, सिंधु, गाधार, सौवीर, सूर, भीरु, दशेरुक, वाडवान, भारद्वाज और क्राथतोय) और उत्तरदिशाके (तार्ण, कार्ण, प्रच्छाल, आदि) देशोंमें विहार कर उन्हें धर्मकी ओर ऋजु किया था।"[2] महावीरपुराणके अनु-सार विदेहमें (वज्जियनराजमत्र।) राजा चेटकने भगवानके चरणोंका आश्रय लिया था। अगदेशके शासक कुणिकने भी भगवानकी विनय की थी और वह कौशाम्बी तक भगवानके साथ२ गया था। कौशाम्बीमें वहांके नृपति शतानीकने भी भगवानकी उपासना की थी और वह अन्तमें भगवानके सघमें सम्मिलित होगया था। मगधेश श्रेणिक भगवानके अनन्य भक्त थे और इन्हींकी राजधानी राजगृहमें भगवानने अधिक समय व्यतीत किया था। राजपुरके सुरमलय उद्यानमें जिससमय भगवान विराजमान थे, उससमय

---

१ जैनसूत्र (S B E) भाग १ पृष्ठ २६४. २. हरिवंश-पुराण (कलकत्ता सस्करण) पृष्ठ १८.

भूमिका) इन्डोचाइना (Indo-China) में भी जैनधर्मके अस्तित्वके चिन्ह मिलते हैं। वहांके सन् ९१८के एक शिलालेखमें राजा भद्रवर्मन तृतीयको जिनेन्द्रके सागरका एक मीन लिखा है तथा जैनाचार्यकृत काशिकावृत्ति व्याकरणका उसे पारगामी बताया है। (इंडि० हिस्टा० कार्टर्ली भाग १ पृ० ६०९) तथापि जावामे एक ऐसी मूर्तिके दर्शन वि० वा० चम्पतरायजीने बरलिनके अजायब घरमें किये हैं, जो जैन मूर्तियोंके समान है। अतएव इन थोडेसे उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि जैनधर्म भारतमें ही सीमित नहीं रहा था। बौद्ध धर्मकी तरह वह भी एक समय विदेशोंमें फैला था।

इसप्रकार दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनोंही इस बातको प्रगट करते हैं कि भगवान महावीरकी मोक्षप्राप्तिका स्थान पावा है। यह नगरी धनसम्पदामें भरपूर मल्ल राजाओंकी राजधानी थी।[1] यहांके लोग और राजा हस्तिपाल भगवान महावीरके शुभागमनकी बाट जोह रहे थे। इसलिये म० बुद्धके अन्तिम समयके बरअक्स भगवान महावीरको कोई खबर कहींको नहीं भेजनी पड़ी थी। वस्तुत भगवान कृतकृत्य हो चुके थे, इच्छा और वाञ्छासे परे पहुच चुके थे इसलिये उनके विषयमें ऐसी बातें बिल्कुल ही संभव नहीं थीं। श्रीगुणभद्राचार्यजी भगवानके अन्तिम दिव्य जीवनकालका वर्णन निम्नप्रकार करते हैं :-

" क्रमात्पावापुरं प्राप्य मनोहरवनांतरे।
बहूना सरसां मध्ये महामणिशिलातले ॥ ५०९ ॥
स्थित्वा दिनद्वयं वीतविहारो वृद्धनिर्जरः।
कृष्णकार्तिकपक्षस्य चतुर्दश्या निशात्यये ॥५१०॥

१ सुत्तनिपात (S. B. E.) १०१/८

स्वातियोग तृतीयेद्धशुक्लध्यानपरायणः ।
कृतत्रियोगसंरोधसमुच्छिन्नक्रियं श्रितः ॥५११॥
हताघातिचतुष्कः सन्नशरीरो गुणात्मकः ।
गन्ता मुनिसहस्रेण निर्वाणं सर्ववांछितं ॥५१२॥"

भावार्थ—"विहार करते २ अन्तमें वे (भगवान) पावापुर नगरमें पहुंचे और वहांके मनोहर नामके वनमें अनेक सरोवरोंके मध्य महामणियोंकी शिलापर विराजमान हुये। विहार छोड़कर (योगनिरोधकर) निर्जराको बढ़ाते हुए वे दो दिन तक वहां विराजमान रहे और फिर कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीकी रात्रिके अंतिम समयमें स्वाति नक्षत्रमें तीसरे शुक्लध्यानमें तत्पर हुये। तदनन्तर तीनों योगोंको निरोधकर समुच्छिन्नक्रिया नामके चौथे शुक्लध्यानका आश्रय उन्होंने लिया और चारों अघातिया कर्मोंको नाशकर शरीर रहित केवल गुणरूप होकर एकहजार मुनियोंके साथ सबके द्वारा वाञ्छनीय ऐसा मोक्षपद प्राप्त किया।"

इसप्रकार मोक्षपदको प्राप्तकर पुरुषार्थके अंतिम अनन्तसुखका उपभोग वे उसी क्षणसे करने लगे। भगवानके इस अंतिम दिव्य अवसरके समय भी स्वर्गलोकसे इन्द्र और देवतागण आये थे और उन्होंने मोक्षको प्राप्त करनेवाले भगवानके शरीरकी पूजा अर्चना की थी। इस समय भी अलौकिक घटनायें घटित हुई थीं और अंधेरी रात्रिमें एक अपूर्व प्रकाश चहुंओर फैल गया था। मस्तक झुका देवोंने उस पवित्र शरीरको अग्निकुमार देवोंके इन्द्रके मुकुटसे प्रगट हुई अग्निकी शिखामें स्वाहा किया था। इसी अवसरपर

१ उत्तरपुराण पृष्ठ ७४४ ।५।

आसपासके प्रसिद्ध राजा लोग भी पावापुरमें पहुचे थे और वहा-पर दीपोत्सव मनाया था। 'कल्पसूत्र'में इनका उल्लेख इस प्रकार किया गया है —

"उस पवित्र दिवस जब पूज्यनीय श्रमण महावीर सर्व सासारिक दु खोंसे मुक्त हो गये तो काशी और कौशलके १८ राजाओंने, ९ मल्ल राजाओंने और ९ लिच्छवि राजाओंने दीपोत्सव मनाया था। यह प्रोषधका दिन था और उन्होंने कहा—'ज्ञानमय प्रकाश तो लुप्त हो चुका है, आओ भौतिक प्रकाशसे जगतको देदीप्यमान बनायें।'"[1]

मानो उस समय आजकलके भौतिकवादके प्रकाशकी ही भविष्यदवाणी उन राजाओंने की थी। इस प्रकार उस दिव्य अवसरके अनुरूप आजतक यह दीपोत्सवका त्योहार चला आरहा है।

भगवान महावीरके परमश्रेष्ठ लाभकी पुण्य स्मृति और पवित्रता इस त्योहारमें गर्भित है। इस तरह भगवान महावीर और म० बुद्धके अन्तिम जीवनका वर्णन है। भगवान महावीरके दर्शन साक्षात परमात्मारूपमें होते हैं। वस्तुत उनका यह जीवन अनुपम था। उनके जीवनसे म० बुद्धके जीवनकी तुलना करना एक निष्फल क्रिया है, परन्तु जब ससार दोनों व्यक्तियोंको समानता देता है तो तुलनात्मक अध्ययन करना आवश्यक ही था।

१ जैनसूत्र (S. B. E.) भाग १ पृष्ठ २६६.

(९)
पारस्परिक कालनिर्णय।

भगवान महावीर और म. बुद्धके पारस्परिक जीवनका हम तुलनात्मक रीतिसे अध्ययन कर चुके हैं और हमने उसमें कहीं भी साम्यता नहीं पाई है। प्रत्युत जीवन घटनाओंकी विभिन्नता ही सर्वथा दृष्टि पड़ती रही है। ऐसी अवस्थामें यह स्पष्ट है कि भगवान महावीर और म. बुद्ध एक ही व्यक्ति न होकर दो सम-कालीन युगप्रधान पुरुष थे। समकालीन अवस्थामें भी इनके जीवनोंका पारस्परिक सम्बन्ध क्या था, यह जानना भी आवश्यक है परन्तु भारतीय इतिहास जितना अस्पष्ट और अंधकारमय है उसको देखते हुये आजसे करीब ढाईहजार वर्ष पहिले हुये युगप्रधान पुरुषोंके पारस्परिक जीवन सम्बन्धोंका ठीक पता लगा लेना बिल्कुल असम्भव बात है। तो भी जो साहित्यसम्बन्धी उपलब्ध है उसका आश्रय लेकर हम इस विषयमें एक निर्णयपर पहुंचनेका प्रयत्न करेंगे।

यह हमको मालूम है कि भगवान महावीरको निर्वाणलाभ उस समय प्राप्त हुआ था जब वे करीब बहत्तर वर्षके थे। और म. बुद्धका 'परिनिब्बाण' जैसा कि बौद्ध कहते हैं उनकी अस्सी वर्षकी अवस्थामें हुआ था। इससे यह बिल्कुल स्पष्ट है कि म. बुद्धकी उमर भगवान महावीरसे अधिक थी। अब इन दोनों युग प्रधान पुरुषोंके जन्म समयमें कितना अन्तर था, यह जानना शेष

१ विनय (S B. E.) भाग १ पृष्ठ ११८. २ [illegible] सुत्त (S. B E.) पृष्ठ [illegible]

है। उनका पारस्पारिक जन्म-अतर प्राप्त होनेके साथ ही हमको उनकी अन्य जीवनघटनाओंका सम्बन्ध स्पष्टत. ज्ञात हो जायगा।

इस विषयमें डॉ० हार्नलेसाहबने विशेप अध्ययनके उपरात यह निर्णय प्रगट किया है कि भगवान महावीरके निर्वाणलाभके पश्चात् पाच वर्षतक म० बुद्ध और जीवित रहे थे[१]। इस मान्यताको मान देते हुये हमें म० बुद्धका जन्म भगवान महावीरके जन्मसे तीन वर्ष पहिले हुआ प्रमाणित मिलता है। दूसरे शब्दोंमें डॉ० हार्नलेसाहबकी गणनाके अनुसार म० बुद्ध भगवान महावीरके जन्म समय तीन वर्षके थे, उनके गृहत्यागके अवसरपर वे तेतीस वर्षके थे और जब भगवान महावीरने अपनी करीब बियालीस वर्षकी अवस्थामें सर्वज्ञता प्राप्त कर चुकनेपर उपदेश देना प्रारम्भ किया तब वे प्राय पैंतालीस वर्षके थे। इसी तरह जब म० बुद्धने अपनी पैंतीस वर्षकी उमरमें 'मध्यमार्ग' का उपदेश देना प्रारम्भ किया था, तब भगवान महावीर करीब तेतीस वर्षके थे। इसप्रकार डॉ० हार्नलेकी मान्यताके अनुसार इन दोनों युगप्रधान पुरुषोंके पारस्परिक सम्बध ज्ञात होते है, किन्तु इनको विशेप प्रमाणिक जाननेके लिये डॉ० हार्नलेसाहबकी गणनाके औचित्यपर भी एक दृष्टि डाल लेना आवश्यक है।

डॉ० हार्नले साहब जो इस गणनापर पहुचे है वह विशेप प्रमाणोंको लिये हुये है। तथापि उनकी इस गणनाका समर्थन ऐतिहासिक साक्षीसे भी होता है। प्रो० कर्न सा० के मतानुसार सम्राट

---

१ आजिवकाज, हैस्टिन्गकी इन्साइक्लोपेडिया ओफ रिलीजन एण्ड ईथिक्स.

श्रेणिक बिम्बसारकी मृत्यु उस समय हुई थी जब म० बुद्ध बहत्तर वर्षके थे और देवदत्त द्वारा जो बौद्ध संघमें विच्छेद खड़ा हुआ था वह इस घटनासे कुछ ही बाद उपरान्त उपस्थित हुआ था। साथ ही मज्झिमनिकायके अभय राजकुमार सुत्तसे यह स्पष्ट है कि भगवान महावीरको बौद्ध संघके इस विच्छेदका ज्ञान था। दि० जैन शास्त्रोंसे भी इस व्याख्याकी पुष्टि इस तरह होती है—उनमें लिखा है कि सम्राट् श्रेणिक बिम्बसारकी मृत्युके साथ ही कुणिक अजातशत्रु विधर्मी–मिथ्यात्वी होगया और रानी चेलनीने भगवान महावीरके समवशरणमें जाकर आर्या चन्दनाके निकट दीक्षा ग्रहण की। इससे यह साफ प्रगट है कि भगवान महावीर इस समय विद्यमान थे और चूंकि सामञ्ञफलसुत्त और पासादिकसुत्तसे यह प्रमाणित ही है कि भगवान महावीरके निर्वाणलाभके उपरान्त कुछ अरसे तक म० बुद्ध जीवित रहे थे। इसलिये यह अधिकसे अधिक पांच वर्ष ही जीवित रहे होंगे क्योंकि बौद्ध और जैन दोनोंके मतसे सम्राट श्रेणिक बिम्बसारकी मृत्युके समय भगवान महावीर मौजूद थे। और जब म० बुद्ध इस समय ७२ वर्षके थे तो भगवान महावीर अवश्य ही करीब ६९ वर्षके थे। इससे यह स्पष्ट है कि भगवान महावीरके निर्वाणलाभ करनेके बाद म० बुद्ध पांच वर्षसे अधिक जीवित नहीं रहे थे।

इसके अतिरिक्त हम म० बुद्धके बाल्यपनके विषयमें देख

---

१ इण्डियन बुद्धिज्म पृष्ठ १८-१९. २ हिस्टॉरिकल ग्लीनिंग्स पृष्ठ ७७. ३ भगवान महावीर पृष्ठ ११९. ४ मज्झिमनिकाय भाग १ (P. T. S.) पृष्ठ ९४। ५ दीघनिकाय (P. T. S.) भाग ६

चुके हैं कि म० बुद्ध जो उस सुकुमार अवस्थामें चार प्रकारके लक्षण धारण करते थे, उनमें तीन तो जैन तीर्थङ्करोंके चिह्न थे, परन्तु चौथा स्वय भगवान महावीर वर्द्धमानका नाम था। इससे यह झलकता है कि उस समय भगवानका जन्म नहीं हुआ था। यदि जन्म हुआ होता तो उनका उल्लेख भी चिह्नरूपमें होता, क्योंकि जन्मसे ही तीर्थङ्कर भगवानके पगमें यह चिह्न होता है। अतएव इससे भी म० बुद्धका जन्म म० महावीरसे पहिले हुआ प्रमाणित होता है।

डॉ० हार्नले सा०की गणनाका समर्थन उस कारणको जाननेसे भी होता है, जिसकी वजहसे म० बुद्धके ५० से ७० वर्पके मध्य जीवनकी घटनाओंका उल्लेख नहींके वरावर ही मिलता है। रेवरेन्ड बिशप विगन्डेट साहवका कथन है कि यह अन्तराल प्राय घटनाओंके उल्लेखसे कोरा है। (An almost blank)[1] अतएव इस अभावका कोई कारण अवश्य होना चाहिये। अव यदि यहा भी हम डॉ० हार्नलेसाहवकी उक्त गणनाको मानता देवें तो यह कारण भी ज्ञात होजाता है, क्योंकि जव भगवान महावीरने अपना धर्म-प्रचार प्रारम्भ किया था उस समय म० बुद्ध अपने धर्मकी घोपणा करचुके थे और अनुमानत ४९ वर्पके थे जैसे कि हम देखचुके हैं। अतएव पाच वर्पके भीतर भीतर भगवान महावीरके वस्तु स्थितिरूप उपदेशका दिगन्तव्यापी हो जाना विल्कुल प्राकृत है। इस दशामें यदि इन पाच वर्पोंमें म० बुद्धका प्रभाव प्राय उठसा

---

१ लाइफ एण्ड लीजेन्ड ओफ गौतम—और के० जे० सान्डर साहवका "गौतम बुद्ध" पृ० ४५.

पाये और उनकी ९ वर्षकी उमरसे ७ वर्षतक कोई पूर्व पद प्राप्त न मिले तो कोई आश्चर्य नहीं है। यही समय भगवान महावीरके धर्मप्रचारका था। इसलिये म० बुद्धके जीवनके उक्त भेद-रहस्यकी घटनाओंके अभावका कारण भगवान महावीरका सर्व ज्ञातावस्थामें प्रचार करना ही प्रतिभाषित होता है। इस अवस्थामें हमको डॉ० हार्नलेसाहबकी उक्त कल्पना इस तरह भी प्रमाणित मिलती है और यह भाव ठीक ही है कि भगवान महावीरके निर्वाणोपरान्त म० बुद्ध अधिकसे अधिक पांच वर्ष और जिये थे।

किन्तु उक्त प्रकार म० बुद्धकी जीवनघटनाओंके अभावका कारण निर्दिष्ट करते हुये बौद्ध शास्त्रकारके इस कथनका भी समाधान करलेना आवश्यक है कि म० बुद्धके विरुद्ध धर्मोपदेशक समग्र निगन्थ नातपुत्त (महावीर) का प्रभाव क्षीण होगया, जो पहिले विशेष प्रभावको लिये हुये था[1]। बौद्ध शास्त्रकारके इस कथनके समान ही जैनाचार्योंने भी यही बात भगवान महावीरके विषयमें कही है कि उनके धर्मोपदेशके उदय होते ही एकान्तमत अंधकार रूपमें विलीन होगये[2]। इस दशामें यह दोनों कथन एक दूसरेके

---

१ डॉयलॉग्स आफ बुद्ध भाग ३ पृ० १२८ और हिस्टोरीकल ग्लीनिंग्स पृ० ८

२ अथ जिनभास्करोऽसौ [illegible] कुमुदवनानीव
[illegible] ॥ ११ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ११ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ११९ ॥
[illegible] सर्गमुखेन ।

विरुद्ध पड़ते हैं, परन्तु उक्त प्रकार म० बुद्धकी जीवनघटनाओंके अभावका कारण भगवान महावीरका धवल धर्मप्रभाव मानते हुये, हमें जैनाचार्यका कथन यथार्थताको लिये हुये मिलता है, परन्तु ऐतिहासिकताके नाते हम बौद्ध शास्त्रकारके कथनको भी एकदम नहीं भुला सक्ते हैं। बात वास्तवमें यों मालूम देती है कि जिस समय भगवान महावीरका धर्मप्रचार होता रहा, उस समय अवश्य ही उनके प्रभावके समक्ष शेष धर्म अपनी महत्ताको खो बैठे, जैसे कि जैनाचार्य कहते हैं और जो म० बुद्धके सम्बन्धमें ऊपर एव निम्नकी भांति प्रमाणित होता है, परन्तु जब भगवान महावीरका निर्वाण होनेको था तब हमको मालूम है कि राजा कुणिक अजातशत्रु जैनधर्मसे विमुख होगया था[1]। इसके जैनधर्म विमुख होनेका कारण सम्राट् श्रेणिककी अकाल मृत्यु और वज्जियन राज्यपर आक्रमण करना कहे जा सक्ते हैं, क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्वी सम्राट् श्रेणिकके मरणका कारण बनकर एव भगवान महावीरके पितृ और मातृकुलोंपर आक्रमण करके सम्राट् कुणिक अजातशत्रु अवश्य ही जैनियोंद्वारा घृणाकी दृष्टिसे देखा जाने लगा होगा। ऐसे अवसरपर बौद्ध भिक्षु देवदत्त, जिसका सम्बन्ध इनसे पहिलेका ही था, यदि अजातशत्रुको बौद्धानुयायी बनाले तो कोई अदभुत बात नहीं है, अतएव सम्राट् कुणिक अजातशत्रुके बौद्ध हो जानेसे मगध और अगका

---

१ उत्तापुराणमें लिखा है कि जब भगवान महावीर मोक्ष चले गए और सुधर्मास्वामी प्रचार करते राजगृह आए तब फिर कुणिक अजातशत्रुने जैनधर्म धारण किया था। (पृष्ट ७०२) और अंग्रेजी जैनगजट भाग २१ पृष्ट २५४ २ के. जे सोन्डर्स "गौतमबुद्ध" पृष्ठ ७१.

राजगृह, जो पहिले जैनधाम था, अवश्य ही बौद्धधाम हो गया। और यह भगवान महावीरके शासनकी प्रभावनामें एक खास बात था। फिर मगधमें इस समयके कुछ बाद ही भगवान महावीरका निर्वाण हुआ था यह हमारे ऊपरके कथनसे प्रगट है। इसके साथ ही कुछ समयके उपरान्त भारतीयोंके संरक्षक राजा पद्मराजा अनिरुद्धका मगधमें राज्य माना जाता है, अवश्य ही ऐसे कारण हैं, जो हमें इस बातको माननेके लिये बाध्य करते हैं कि वीरशासनका प्रभाव भगवान महावीरके उपरान्त अवश्य ही किंचित् फीका पड़ गया था और इस तरहपर बौद्धाचार्यका कथन भी ठीक बैठ जाता है। अतएव जैन और बौद्धाचार्योंके उपरोल्लिखित मत हमारी इस मान्यतामें बाधक नहीं हैं कि भगवान महावीरके निर्वाणोपरान्तके कारण म० बुद्धका प्रभाव बहुत कुछ कम होगया था कि जिससे उनके जीवनके इस अन्तराल-कालका मान पूरा पता नहीं चलता! उधर भगवान महावीरके दिव्य प्रभावको बौद्धाचार्य स्वीकार करते ही हैं। अस्तु,

भगवान महावीरके धर्मोपदेशका विशेष प्रभाव म० बुद्धके जीवनमें खासा पड़ा था इसका समर्थन स्वयं बौद्ध ग्रन्थोंसे भी होता है। देवदत्तद्वारा जो विच्छेद बौद्ध संघमें भगवानमहावीरके निर्वाणकालके दोतीन वर्ष पहिले ही खड़ा हुआ था, वह भी हमारी मान्यताकी पुष्टि करता है। देवदत्तने म० बुद्धसे भिक्षुओंको दैनिक क्रियाओंको अधिक संयममय बनानेको, एवं मांसभोजनकी मनाई करनेको कहा था। इस ही पर बौद्ध संघमें विच्छेद

१ भगवतीसूत्र ... २ ...

खड़ा हुआ था। अब यह स्पष्ट ही है कि उस समय सिवाय भगवान महावीरके अन्य कोई प्रख्यात् मतप्रवर्तक ऐसा नहीं था जिसने अहिंसा धर्मके महत्वको पूर्ण प्रगट किया हो और मास खानेको पापक्रिया बताई हो[1]। बौद्धोंकि मांस-भक्षण और साधु अवस्थामें भी शिथिलता रखनेके लिये जैन शास्त्रोंमें उनपर कटाक्ष किये गये हैं[2]। तथापि बौद्ध संघके इस विच्छेदके कितने ही वर्षों पहिलेसे भगवान महावीर अहिंसा और तपस्याका उपदेश देही रहे थे। इस अवस्थामें यह स्पष्ट है कि बौद्ध संघमें यह विच्छेद भगवान महावीरके दिव्योपदेशके कारण ही खड़ा हुआ था। इसके साथ ही बौद्धोंके 'महावग्ग' से विदित होता है कि इसी समय म० बुद्धके पास एक बौद्ध भिक्षु नग्न होकर आया था और नग्नावस्थाकी विशेष प्रशंसा करके बौद्ध साधुओंको उसे धारण करनेकी आज्ञा देनेकी उनसे प्रार्थना करने लगा था[3]। यह भी हमारी व्याख्याका समर्थन करता है, क्योंकि उस समय म० महावीरके दिव्योपदेशसे दिगंबरता (नग्नत्व) का प्रभाव विशेष बढ़ा था और यही कारण म० बुद्धके साथ भिक्षुओंकी संख्याके

---

१ उस समय शेषमें ब्राह्मण, आजीविक, अचेलक आदि संप्रदाय थे। सो इनमें किसीको मांससे परहेज नहीं था। ब्राह्मण लोग खुले रूपमें मांसाभिषिक्त क्रियाको मान दे रहे थे। आजीविक भी मांस खाना बुरा नहीं समझते थे यह बौद्धों और जैनोंके शास्त्रोंसे प्रकट है। अचेलक-मत-प्रवर्तक पुन्य-पाप कुछ मानते ही नहीं थे, सो मांस खाना उनके निकट भी दुष्क्रिया नहीं होसक्ती। इस तरह उस समय भगवान महावीरने ही इसको दुष्क्रिया प्रगट किया था। २ जैन सूत्र (S B E) भाग २ पृष्ठ ४१४
३ महावग्ग (S B E) ८२८ पृष्ट २४५

उल्लेख मालूम पड़ता है। हम पूर्व परिच्छेदमें देख चुके हैं कि जब म० बुद्ध कपिलवस्तुमें थे तब उनके साथ १२५ भिक्षु थे, परन्तु बौद्ध संघ विच्छेद अवसरके लगभग ही जब वे पावासे कुशीनाराको गये थे तब उनके साथ सिर्फ ५ भिक्षु रह गये थे। इससे यह स्पष्ट है कि इस समय भगवान महावीरके धर्मकी मान्यता जनतामें विशेष हो गई थी जिसका प्रभाव म० बुद्ध और उनके संघपर भी पड़ा था।

वास्तवमें जैन तीर्थंकरके जीवनमें केवलज्ञान (सर्वज्ञता) प्राप्त करके धर्मोपदेश देनेका ही एक अवसर ऐसा है जो अनुपम और अद्भुत प्रभावशाली है। इस बातकी पुष्टि प्राचीनसे प्राचीन उपलब्ध जैनसाहित्यसे होती है। अतएव उक्त प्रकार जो हम भगवान महावीरके इस दिव्य अवसरका दिव्य प्रभाव म० बुद्ध और उनके संघ पर पड़ा देखते हैं सो इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं है। तीर्थंकर भगवानका विहार समवशरण सहित और उनका उपदेश वैज्ञानिक ढंगपर होता है क्योंकि

---

१ बौद्ध ग्रन्थ "चुल्लवग्ग" (VII 3 14) में यह इस प्रकार स्वीकार किया गया है

२ The people believe in rough measures. अर्थात्-जनसाधारण [illegible] विचारोंमें विश्वास रखती है और यह सिद्ध ही है कि जैनियोंमें [illegible] विविध [illegible] साथ [illegible] के [illegible] [illegible] इसीके [illegible] स्वीकार किया गया है। इसी बौद्ध ग्रन्थमें [illegible] यह भी कहा गया है कि [illegible] "पुरुष [illegible] [illegible] [illegible] थे। (VIII 2. 16) इससे स्पष्ट है कि इस समय [illegible] भगवान महावीरका [illegible] [illegible] हृदयमें घर कर गया था।

वे सर्वज्ञ होते है, जैसे कि हम भगवान महावीरके विषयमें देख चुके हैं। तथापि सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवानकी पुण्य प्रकृतिके प्रभावसे ४०० कोसतक चहुओर दुर्भिक्ष आदि दूर हो जाते हैं और उनके समवशरणमें मानस्तंभके दर्शन करते ही लोगोंका मिथ्या ज्ञान और मान काफूर होजाता है। इस दशामें अवश्य ही भगवान महावीरका दिव्यप्रभाव सर्वत्र अपना कार्य कर गया होगा, जैसा कि बौद्धग्रन्थोंसे झलकता है, अतएव म० बुद्धके जीवनपर भगवान महावीरका प्रभाव पड़ा व्यक्त करना बिल्कुल युक्तियुक्त मालूम होता है। यही कारण प्रतीत होता है कि म० बुद्ध ७२ वर्षकी अवस्थामें सामान्यरूपसे राजगृहमें आकर पूछकर एक कुम्हारके यहा रात्रि विताते हैं।[1]

इसके साथ ही भगवान महावीरके निर्वाणलाभके समाचार बौद्धसघके लिये एक हर्षप्रद समाचार थे, यह बौद्धग्रन्थके निम्न उद्धरणसे प्रमाणित है। वहा लिखा है कि—

"पावाके चन्ड नामक व्यक्तिने मल्लदेशके सामगाममें स्थित आनन्दको महान् तीर्थंकर महावीरके शरीरान्त होनेकी खबर दी थी। आनदने इस घटनाके महत्वको झट अनुभव करलिया और कहा 'मित्र चन्ड' यह समाचार तथागतके समक्ष लानेके योग्य हैं। अस्तु, हमें उनके पास चलकर यह खबर देना चाहिये।' वे बुद्धके पास दौडे गए, जिन्होंने एक दीर्घ उपदेश दिया।"[2]

इस वर्णनके शब्दोंमें स्पष्टत एक हर्षभाव झलकरहा है और

---

१ के० जे० सॉन्डर्स 'गौतम बुद्ध" पृष्ठ ७५ २ पासादिक सुवन्त इन दी डॉयोलॉग्स ऑफ बुद्ध भाग ३ पृष्ठ ११२

इस तब ही होता है जब कोई बाधक वस्तु उसके मार्गमेंसे दूर हुई हो। इसलिए इससे भी साफ प्रगट है कि भगवान महावीरके धर्म प्रचारके कारण बुद्धदेवको अवश्य ही अपने मध्यमार्गके प्रचारमें शिथिलता सहन करनी पड़ी थी और यह शिथिलता भगवान महावीरके निर्वाणासीन होते ही दूर होगई जैसे कि हम पहिले देख चुके हैं। इस विषयमें एक मज्झिमनिकायविवरणका भी यही कथन है कि भगवान महावीरके निर्वाणक्रममें म. बुद्ध और उनके मुख्य शिष्य सारीपुत्तने अपने धर्मका प्रचार करनेका विशेष अवसर उठाया था।

अतएव यह स्पष्ट है कि म. बुद्धके १ से ७ वर्षके जीवन अन्तरालके पटाक्षेपका प्राय म. मिलना भगवान महावीरके दिव्योपदेशके कारण था और इस दशामें डा. हार्नलेसाहबकी उपरोल्लिखित मान्यता विशेष प्रमाणिक प्रतिभाषित होती है, जिसके कारण म. बुद्ध और भगवान महावीरके पारस्परिक जीवन संबन्ध वैसे ही सिद्ध होते हैं जैसे कि हम ऊपर डा. हार्नलेसाहिबकी गणनाके अनुसार देखचुके हैं किन्तु बौद्धशास्त्रोंमें एक स्थानपर म. बुद्धको उस समयके प्रख्यात मतप्रवर्तकोंमें सर्वज्ञ लिखा है परन्तु उन्हींके एक अन्य शास्त्रमें म. बुद्ध इस बातका कोई स्पष्ट उत्तर देते नहीं मिलते हैं। यह यहां प्रश्नको टालनेका ही प्रयत्न करते हैं। इससे यही विशेष उपयुक्त प्रतीत होता है कि आयुमें भगवान महावीरसे यों कमसे कम म. बुद्ध अवश्य ही बड़े थे, परन्तु एक मत प्रवर्तककी भांति वे प्रख्यात ही सर्वज्ञ थे; क्योंकि

---

१ कल्चर ऑफ दी बुद्धिस्ट-इण्डिया पृ० १ ६. २ डायलॉग्स सम्मिसूत्त पृष्ठ २४ ३. सुत्तनिपात (S. B. E. Vol. X.) पृ० ९.

अन्य सर्व मत म० बुद्धसे पहिलेके थे।[1] इस तरह भगवान महावीर और म० बुद्धके पारस्परिक जीवन सम्बन्ध यह ही ठीक जचते हैं जो हम पूर्वमें बतला चुके हैं। अस्तु।

भगवान महावीर और म० बुद्धके पारस्परिक जीवन सम्बन्ध तो हमने जान लिये, परन्तु भगवान महावीरको मोक्षलाभ और म० बुद्धका 'परिनिव्वान', जैसा कि बौद्ध कहते हैं, कब हुआ यह जान लेना भी आवश्यक है। भगवान महावीरके निर्वाणलाभ कालके विषयमें तीन मत पाये जाते हैं। एकके अनुसार यह घटना ईसवी सन्‌से ५२७ वर्ष पहिले घटित हुई बतलाई जाती है।[2] दूसरेके मुताबिक यह ४६८ वर्ष पहिले मानी जाती है।[3] और तीसरा इसको विक्रमाब्दसे ६५० वर्ष पहिले घटित हुआ बतलाता है।[4] इनमें पहिले मतकी मानता अधिक है और जैन समाजमें वही प्रचलित है। दूसरा डॉ० जार्ल चारपेन्टियरका मत है, जिसका समुचित प्रतिवाद मि० काशीप्रसाद जायसवालने प्रकट कर दिया है[5] और वस्तुतः बौद्ध शास्त्रोंके स्पष्ट उल्लेखोंको देखते हुये यह जीको नहीं लगता कि भगवान महावीरका निर्वाण म० बुद्धके उपरान्त हुआ हो। यह हमारे पूर्व जीवन सम्बन्ध विवरणसे भी बाधित है। और तीसरा मत श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमीका है। उनके आधार देवसेनाचार्य

---

१ हिस्टॉरीकल ग्लीनिंगस पृष्ठ २१-३० २ लाइफ ऑफ महावीर और जैनसूत्र (S B E भाग २ भूमिका ३ इन्डियन एन्टीक्वेरी भाग ४३। ४ रत्नकरण्ड श्रावकाचार (माणिकचन्द ग्रन्थमाला) पृष्ठ १५०-१५२। ५. जैनसाहित्यसंशोधक प्रथम खण्डके ४ थे अंकमें ऐसा उल्लेख है। शायद यह प्रतिवाद इन्डियन ऐन्टीक्वेरी भाग ४९ पृष्ठ ४३ में किया गया है।

और अमितगत्याचार्यके उल्लेख हैं, जिनमें समयको निर्दिष्ट करते हुये 'विक्रम नृपकी मृत्युसे' ऐसा उल्लेख किया गया है। इसके सिवाय जैन हितैषी में पं० जुगलकिशोरजी लिखते हैं कि "यद्यपि, विक्रमकी मृत्युके बाद प्रजाके द्वारा उसका मृत्यु संवत् प्रचलित किये जानेकी बात जीको कुछ कम लगती है और यह हो सकता है कि अमितगति आदिको उसे मृत्यु संवत् समझनेमें कुछ गलती हुई हो, फिर भी उनके उल्लेखोंसे इतना तो स्पष्ट है कि मेरीतीसा यह मत नया नहीं है—आजसे हजार वर्ष पहिले भी इस मतको माननेवाले मौजूद थे और उनमें देवसेन तथा अमितगति जैसे आचार्य भी शामिल थे।" इतना होते हुये भी हमें अशोक जीवन संबन्ध विचारको देखते हुये मुख्तार साहबसे सहमत होना पड़ता है। इसके साथ ही यह दृष्टव्य है कि त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें जहां अन्यमत वीरनिर्वाण संवत्में बतलाये गये हैं, वहां इसका उल्लेख नहीं है। इस अवस्थामें देवसेनाचार्य और अमितगति आचार्यने भूलसे ऐसा उल्लेख किया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। जिसप्रकार हमने म० बुद्ध और भगवान महावीरका संबन्ध स्थापित किया है, उसको देखते हुये यही ठीक प्रतीत होता है।

अब रहा केवल प्रथम मत जो प्रायः सर्वमान्य और प्रचलित है। इस मतकी पुष्टिमें निम्न प्रमाण बतलाये जाते हैं—

(१) सत्तरि चदुसदजुत्तो तिणकाले विक्कमो हवइ जम्मो।
अट्ठवरस बालकीला सोडसवासेहि भम्मिए देसे ॥१८॥

१ दिगम्बर जैनभाषा (भा० ५) पृष्ठ १५१-१५२ ... ... १५२-१५६

यह नन्दिसंघकी दूसरी पट्टावलीकी एक गाथा है, और 'विक्रम-प्रबन्ध'में भी पायी जाती है। (जैनसिद्धान्तभास्कर किरण ४ पृ ७५)

(२) णिव्वाणे वीरजिणे छव्वाससदेसु पंचवरिसेसु ।
पणमासेसु गदेसुं संजादो सगणिओ अहवा ॥ ८२ ॥

यह गाथा आजसे करीब १५०० वर्ष पहिलेकी रची हुई 'तिलोयपण्णत्ति'की गाथा है और इसमें वीर निर्वाण प्राप्तिसे ६०५ वर्ष ५ महीने बाद शक राजा हुआ ऐसा उल्लेख है।

(३) पण छस्सयवस्सं पणमासजुदं गमिय वीरणिव्वुइदो ।
सगराजो तो कक्की चदुनवतियमहिय सगमास ॥८५०॥

यह त्रिलोकसारकी गाथा है और इसमें 'तिलोयपण्णत्ति' की उपरोक्त गाथाकी भांति वीर निर्वाणसे ६०५ वर्ष ५ महीने बाद शक राजाका और ३९४ वर्ष ७ महीनेबाद कल्किका होना बतलाया है।

(४) 'आर्यविद्यासुधाकर' में भी लिखा है —

'ततः कलिनात्र खंडे भारते विक्रमात्पुरा ।
स्वमुन्यं बोधि विमते वर्षे विराह्वयो नरः ॥ १॥
प्राचारज्जैनधर्मं बौद्धधर्ममसमप्रभम् ।

(५) सरस्वतीगच्छकी भूमिकामें भी स्पष्टरूपसे वीरनिर्वाणसे ४७० वर्ष बाद विक्रमका जन्म होना लिखा है, यथा—'वहुरि श्री वीरस्वामीकू मुक्ति गयें पीछें च्यारसैसत्तर ४७० वर्ष गये पीछें श्रीमन्महाराज विक्रम राजाका जन्म भया।'

(६) नेमिचन्द्राचार्यके 'महावीर चरित्र' (देखो " भारतके प्राचीन राजवंश" भा० २१-४२) में भी महावीरस्वामीसे ६०५

यहाँ न० १ और नं० ९ के प्रमाणोंमें बिल्कुल स्पष्ट रीतिसे वीरनिर्वाणसे ४७० वर्ष उपरान्त विक्रमका जन्म होना लिखा है। और यह बात ही है कि वीरनिर्वाण ५२७ वर्ष पहिले जो ईसासे माना जाता है वह वीर निर्वाणसे ४७० वर्ष बाद नृप विक्रमके राज्यारोहण माननेसे उत्पन्न हुआ है क्योंकि यह प्रमाणित है कि नृप विक्रमका संवत् उनके १८ वर्षकी अवस्थामें राज्यारोहणसे प्रारम्भ होता है। इस अवस्थामें स्वीकृत निर्वाणकालमें १८ वर्ष जोड़ना आवश्यक ठहरता है क्योंकि उक्त गाथाओंमें स्पष्टरीतिसे वीरनिर्वाणसे ४७० वर्ष बाद विक्रमका जन्म हुआ लिखा है। इस तरहपर प्रचलित वीरनिर्वाण सम्वत् ठीक करनेमें ईसासे पूर्व ५४५ वर्ष (५२७+१८) मानना चाहिये। इस ही मतको श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल और पं० बिहारीलालजी बुलन्दशहरी प्रमाणित समझते हैं। जैनदर्शनदिवाकर बा० जैनीजी भी इस मतको स्वीकार करते प्रतीत होते हैं जैसा उनके उस पत्रसे प्रकट है जो उन्होंने हमको लिखा था और जो 'वीर' वर्ष १ पृष्ठ ७८–७९में प्रकाशित हुआ है। इसके साथ ही अन्य प्रमाणोंमें कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। ऐसी अवस्थामें यदि भगवानका जन्म भी ६१ वर्ष ९ महीने बाद वीरनिर्वाणसे माना जावे तो कुछ असंगतता नजर नहीं आती। इस दशामें वीरनिर्वाण ईसासे पूर्व ५२७ वर्ष पहिले मानकर ठीक कर ५४५ वर्ष पहिले मानना उचित प्रतीत होता है। यह निर्णयात्मक हमारे उक्त पारम्परिक जीवन मान्यताके भी ठीक बैठ जाता है; क्योंकि दिगम्बरोंकी मान्यताके अनुसार भ-

१ जैनप्रेम । वीर कालके प्रवीण भाग ७

बुद्धका परिनिर्व्वान ईसासे पूर्व ५४३ वर्षमें घटित हुआ था। बौद्धोंकी इस मानताको लेकर विशेष गवेषणाके साथ आधुनिक विद्वानोंने इसका शुद्धरूप ईसासे पूर्व ४८० वा वर्ष बतलाया है, किन्तु खण्डगिरिकी हाथीगुफासे जो सम्राट् खारवेलका शिलालेख मिला है उससे बौद्धोंकी उक्त मानताका पूरा समर्थन होता है।[१] इस दशामें भगवान् महावीरका निर्वाणकाल ईसासे पूर्व ५४५ वर्ष पूर्व माननेसे और म० बुद्धका परिनिर्व्वान ईसासे पहिले ५४३वें वर्षमें हुआ स्वीकार करनेसे, हमारे उक्त जीवनसम्बन्ध निर्णयसे प्राय सामञ्जस्य ही बैठ जाता है। क्योंकि स्वय बौद्धोंके कथनसे प्रमाणित है कि म० बुद्ध भगवान महावीरके पहले ही अपनेको स्वय बुद्ध मानकर उपदेश देने लगे थे। 'सयुक्तनिकाय' में (भाग ११—६८) में स्पष्ट कहा है कि बुद्ध अपनेको 'सम्मासबुद्ध' कैसे कहने लगे जब निगथ नातपुत्त अपनेको वैसे नहीं कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि हमारी पूर्वोक्त मान्यताके अनुसार म० बुद्ध भगवान महावीरके धर्मोपदेश देनेके पहले ही उपदेश देने लगे थे और इसतरह पूर्वोल्लिखित पारस्परिक सबध ठीक ही है। हाँ, एक दो वर्षका अन्तर गणनाकी अशुद्धिके कारण रहा कहा जासक्ता है। अतएव आजकल भगवान महावीरका निर्वाण सवत् २४७१ वर्ष मानना विशेष युक्तिसंगत है।

'हिन्दी विश्वकोष' के निम्न कथनसे भी यही प्रमाणित है।

---

१ भारतके प्राचीन राजवश भाग २ पृष्ठ ३४ २ इन्डियन ऐन्टीक्वेरी XLVIII 25 ff, 214 ff & 29 ff. and XLIX 43 ff. और JBORS IV. 364 ff, V. 88 ff.

यहां नं० १ और नं० ९ के मन्तव्योंमें बिल्कुल स्पष्ट रीतिसे वीरनिर्वाणके ४७० वर्ष उपरान्त विक्रमका जन्म होना लिखा है। और यह ज्ञात ही है कि वीरनिर्वाण ५२७ वर्ष पहिले जो ईसासे माना जाता है वह वीर निर्वाणसे ४७० वर्ष बाद नृप विक्रमके राज्यारोहण मानसे उपलब्ध हुआ है क्योंकि यह प्रमाणित है कि नृप विक्रमका संवत् उनके १८ वर्षकी अवस्थामें राज्यारोहणसे प्रारम्भ होता है। इस अवस्थामें स्वीकृत निर्वाणकालमें १८ वर्ष जोड़ना आवश्यक ठहरता है; क्योंकि उक्त गाथाओंमें स्पष्टरीतिसे वीरनिर्वाणसे ४७० वर्ष बाद विक्रमका जन्म हुआ लिखा है। इस आधारपर प्रचलित वीरनिर्वाण सम्वत् शुद्ध रूपमें ईसासे पूर्व ५४५ वर्ष (५२७+१८) मानना चाहिये। इस ही मतको श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल और पं० बिहारीलालजी बुलन्दशहरी मान्य समझते हैं। जैनदर्शनदिवाकर डा० जैकोबी भी इस मतको स्वीकार करते प्रतीत होते हैं जैसा उनके उस पत्रसे प्रकट है जो उन्होंने हमको लिखा था और जो 'वीर' वर्ष १ पृष्ठ ७८–७९में प्रकाशित हुआ है। इसके साथ ही अन्य प्रमाणोंमें कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। ऐसी अवस्थामें यदि शकराजाका जन्म भी ६०५ वर्ष ५ महीने बाद वीरनिर्वाणसे माना जाय तो कुछ असंभवता नजर नहीं आती। इस दशामें वीरनिर्वाण ईसासे पूर्व ५२७ वर्ष पहिले मानकर शुद्ध रूप ५४५ वर्ष पहिले मानना उचित प्रतीत होता है। यह निर्णयात्मक हमारे उक्त ऐतिहासिक जीवन सम्बन्धमें भी ठीक बैठ जाता है क्योंकि दिगम्बरीयोंकी मान्यताके अनुसार भ-

---

१ [illegible]

यद्यपि यहांतकके विवेचनसे हम म० बुद्ध और भ० महावीरके पारस्परिक जीवनसम्बन्धोंका दिग्दर्शन कर चुके हैं, परन्तु इससे दोनों युगप्रधान पुरुषोंने जो शिक्षा जनसाधारणको दी थी, उसका पूरा पता नहीं चलता है, इसलिए अगाड़ीके पृष्ठोंमें हम जैनधर्म और बौद्धधर्मका भी सामान्य दिग्दर्शन करेंगे।

---

(८)

भगवान महावीर और म० बुद्धका धर्म!

म० बुद्धने किस धर्मका निरूपण किया था, जब हम यह जाननेकी कोशिश करते हैं तो उनके जीवनक्रमपर ध्यान देनेसे असलियतको पा जाते हैं। वस्तुत म० बुद्धका उद्देश्य आवश्यक सुधारको सिरजनेका था। इसलिये प्रारम्भमें उनका कोई नियमित धर्म नहीं था और न उन्होंने किसी व्यवस्थित धर्मका प्रतिपादन किया था, किन्तु अपने सुधारक्रममें उन्होंने आवश्यकतानुसार जिन सिद्धान्तोंको स्वीकार किया था, उनका किंचित् दिग्दर्शन हम यहां करेंगे।

सर्व प्रथम उनके धर्मके विषयमें पूछते ही हमें बतलाया जाता है कि "वह प्रकृतिके नियमोंको बतलाता है, मनुष्यका शरीर नाशके नियमके पीछे पडता है, यही बुद्धका अनित्यवाद है। जो कुछ अस्तित्वमें आता है उसका नाश होना अवश्यम्भावी है।"[१] भगवान महावीरने भी धर्मका वास्तविक रूप वस्तुओंका प्राकृतिक स्वरूप ही

---

१ कीथ 'बुद्धिस्टफिलोसफी पृ० ६९-७०.

यहाँ (भाग २ पृ० ३१) पर लिखा है कि 'तीत्थुगालियपइन्नय' और 'तीर्थोद्धार प्रकीर्ण' नामक प्राचीन जैनशास्त्रके मतसे जिस रातको दीक्षाकर महावीरस्वामीने सिद्धि पायी, उसी रातको पालक राजा अवन्तीके सिंहासनपर बैठे थे। पालकवंश ६०, उसके बाद नन्दवंश १५५ मौर्यवंश १०८ पुष्पमित्र ३०, बलमित्र एवं भानुमित्र ६० नरसेन नरवाहन ४० गर्दभिल्ल १३ और शकराजने ४ वर्ष राज्य किया। महावीरस्वामीके परिनिर्वाणसे शकराजके अभ्युदयकाल पर्यन्त ४७० वर्ष बीते थे। इधर सरस्वती गच्छकी पट्टावलीसे देखते कि विक्रमने उक्त शकराजको हराया सही, किन्तु सोलह वर्ष तक राज्याभिषिक्त न हुए। उक्त सरस्वती गच्छकी गाथामें स्पष्ट लिखा है—"वीरात् ४९२ विक्रमजन्मान्त वर्ष २२, राज्यान्त वर्ष ४" अर्थात् शकराजके ४७० और विक्रमाभिषेकाब्दके ४८८ अर्थात् सन् ई० से ५४५-६ वर्ष पहिले महावीरस्वामीको *मोक्ष मिला था।*" अतएव यही समय निर्वाणकालका ठीक जँचता है।

इस प्रकार म० बुद्ध और भगवान महावीरकी जीवनघटनाओंका तुलनात्मक रीतिसे अध्ययन करनेपर हमने उनकी पारस्परिक विभिन्नताको बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है और अब हम सुगमतासे उनके भिन्न व्यक्तित्व एवं समकालीन होनेके विषयमें एक निश्चित मत स्थिर कर सके हैं। इस विवेचनके पाठसे पाठकोंको उस मिथ्या मान्यताकी असारता भी ज्ञात हो जायगी जो इस उन्नतशील जमानेमें भी कहीं कहीं घर किये हुये है कि जैनधर्मकी उत्पत्ति बौद्धधर्मसे हुई थी अथवा म० बुद्ध और भगवान महावीर एक व्यक्ति थे।

सत्यको जान लिया है मरणोपरान्त जीवित रहता है? (८) अथवा वह जीवित नहीं रहता है ? (९) अथवा वह जीवित भी रहता है और नहीं भी रहता है ? (१०) अथवा वह न जीवित रहता है और न वह नहीं जीवित रहता है ? और इन सबका उत्तर म० बुद्धने वही दिया जो उन्होंने प्रथम प्रश्नके उत्तरमें दिया था।[1] इस परिस्थितिमें यह स्पष्ट अनुभवगम्य है कि म० बुद्धने सैद्धान्तिक विवेचनकी प्रारभिक बातोंका स्थापन प्रकृतिके नियमोंके रूपमें पूर्ण रीतिसे नहीं किया था जैसाकि बतलाया जाता है। भगवान महावीरके विषयमें हम अगाड़ी देखेंगे।

अतएव जब कभी म० बुद्धके निकट ऐसी अवस्था उपस्थित हुई तो उनने उसका समाधान कुछ भी नहीं किया। बौद्धदर्शनके विद्वान् डॉ० कीथ बुद्धकी इस परिस्थितिको बिल्कुल उचित बतलाते है।[2] वह कहते है कि बुद्धने पहिले ही कह दिया था कि वह अपने शिष्योंको इन विषयोंमें शिक्षा नहीं देंगे। म० बुद्ध एक ऐसे हकीम है जो ऐसी शिक्षा देते हैं जिससे शिष्यका वर्तमान जीवन सुखमय बने, किन्तु वास्तवमें इन बातोंको अस्पष्ट छोड़ देनेसे बुद्धने लोगोंको अपने मनोनुकूल निर्णयको माननेकी स्वतत्रता दी है और यह क्रिया एक ' माध्यमिक 'के सर्वथा योग्य थी।

ऐसा प्रतिभाषित होता है कि बुद्धने वस्तुओंके स्वभाव पर केवल उनकी सासारिक अवस्थाके अनुसार दृष्टिपात किया था। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि ' लोकमें कोई भी नित्य-पदार्थ नहीं है

1 डॉयलोग्स ऑफ दी बुद्ध (S B B Vol II) पृ० २५४.
2 कीथ 'बुद्धिस्ट फिलासफी पृ० ६२

बतलाता था। कहा था "अप्रमत्तता ही धर्म है।" और इसतरह ऊपरिसे यद्यपि दोनों मान्यताओंमें साम्यता नजर पड़ती है; परन्तु यथार्थमें उनका भाव एक दूसरेके बिल्कुल विपरीत है। म० बुद्धके हाथमें इस सिद्धान्तको वह महत्त्व नहीं मिला जो उसे भगवान महावीरके निकट प्राप्त था। इसी कारण बौद्धदर्शनका अध्ययन करके सबके नामी विद्वानोंको यही कहना पड़ा है कि बुद्धके सैद्धान्तिक विवेचनमें व्यवस्था और पूर्णता दोनोंकी कमी है।[1] बुद्धके निकट वैज्ञानिक विवेचन संसारदुःखका कारण था। ऐसी दशामें इन प्रश्नोंका वैज्ञानिक उत्तर म० बुद्धसे पाना नितान्त असम्भव है। इन प्रश्नोंको उनने अनिश्चित बातें ठहराया था। जब उनसे पूछा गया कि—

"क्या लोक नित्य है? क्या यही सत्य है और सब कुछ मिथ्या है?" उन्होंने स्पष्ट रीतिसे उत्तर दिया कि "हे पोत्थपाद, यह वह विषय है जिसपर मैंने अपना मत प्रकट नहीं किया है।" तब फिर इसी तरह पोत्थपादने उनसे यह प्रश्न किये। (२) क्या लोक नित्य नहीं है? (३) क्या लोक सीमित है? (४) क्या लोक अनन्त है? (५) क्या आत्मा वही है जो शरीर है? (६) क्या शरीर भिन्न है और आत्मा भिन्न है? (७) क्या वह जिसने

---

१ धम्मो च कुसलानो अकालिको च इहपिटो धम्मो।
एहिपस्सो च धम्मो, ओपनेय्य पच्चत्तं धम्मो ॥ ४०१ ॥
स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा।

२ डॉ० 'बुद्धिस्ट फिलॉसफी-बुद्धिज़्म, १ बुद्धिज़्म एण्ड हिस्ट्री इन दि ईस्ट ३८.

सत्यको जान लिया है मरणोपरान्त जीवित रहता है? (८) अथवा वह जीवित नहीं रहता है? (९) अथवा वह जीवित भी रहता है और नहीं भी रहता है? (१०) अथवा वह न जीवित रहता है और न वह नहीं जीवित रहता है? और इन सबका उत्तर म० बुद्धने वही दिया जो उन्होंने प्रथम प्रश्नके उत्तरमें दिया था।[1] इस परिस्थितिमें यह स्पष्ट अनुभवगम्य है कि म० बुद्धने सैद्धांतिक विवेचनकी प्रारंभिक बातोंका स्थापन प्रकृतिके नियमोंके रूपमें पूर्ण रीतिसे नहीं किया था जैसाकि बतलाया जाता है। भगवान महावीरके विषयमें हम अगाड़ी देखेंगे।

अतएव जब कभी म० बुद्धके निकट ऐसी अवस्था उपस्थित हुई तो उनने उसका समाधान कुछ भी नहीं किया। बौद्धदर्शनके विद्वान् डॉ० कीथ बुद्धकी इस परिस्थितिको बिल्कुल उचित बतलाते हैं।[2] वह कहते हैं कि बुद्धने पहिले ही कह दिया था कि वह अपने शिष्योंको इन विषयोंमें शिक्षा नहीं देंगे। म० बुद्ध एक ऐसे हकीम हैं जो ऐसी शिक्षा देते हैं जिससे शिष्यका वर्तमान जीवन सुखमय बने, किन्तु वास्तवमें इन बातोंको अस्पष्ट छोड़ देनेसे बुद्धने लोगोंको अपने मनोनुकूल निर्णयको माननेकी स्वतन्त्रता दी है और यह क्रिया एक 'माध्यमिक'के सर्वथा योग्य थी।

ऐसा प्रतिभाषित होता है कि बुद्धने वस्तुओंके स्वभाव पर केवल उनकी सांसारिक अवस्थाके अनुसार दृष्टिपात किया था। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि 'लोकमें कोई भी नित्य पदार्थ नहीं है

---

१ डायलोग्स आफ दी बुद्ध (S. B. B. Vol II.) पृ० २५४.
२ कीथ 'बुद्धिस्ट फिलासफी पृ० ६२.

उक्त चार पदार्थोंके अतिरिक्त बुद्धने उनके साथ निर्वाण और विज्ञान (Conception of Consciousness) की गणना करके अपना सैद्धान्तिक मत छै तत्वोंपर प्रारम्भ किया था। विज्ञानमें दुःख और सुखको अनुभव करनेका भाव गर्भित था। यह सब पदार्थ नित्य ही थे और इनहीके पारस्परिक सम्बन्धसे ससारका अस्तित्व बतलाया था।

इस सिद्धान्तविवेचनमें बुद्धसे प्राचीन मतोंका प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है। इनमें मुख्यतः ब्राह्मण और जैनधर्मका प्रभाव दृष्टव्य है। जो चार पदार्थ म० बुद्धने स्वीकार किये हैं वह ब्राह्मण धर्ममें पहिलेसे ही स्वीकृत थे इसलिए वह उन्होंने वहासे लिये थे।[2] परन्तु उन्होंने उनको जिस ढगसे प्रतिपादित किया है वह जैनधर्मकी लोकमान्यतासे मिलता जुलता है। जैनियोंके अनुसार भी छै द्रव्योंकर युक्त यह लोक है, परन्तु यह छै द्रव्य म० बुद्ध द्वारा स्वीकृत छै तत्वोंसे बिल्कुल भिन्न थे जैसे हम अगाडी देखेंगे। इसके अतिरिक्त बुद्धने जो धर्मकी व्याख्या की थी वह भी सामान्यतया जैन व्याख्यासे मिलती जुलती थी, जैसे कि हम देख चुके हैं। फिर बुद्धने जो उसके दो भेद आभ्यन्तरिक (अज्झत्तिक) और वाह्य (बाहिर) किये थे,[3] वह भी सामान्यतः जैन सिद्धान्तके निश्चय और व्यवहार धर्मके समान हैं।[4] किन्तु फर्क यहा भी विशेष मौजूद है, क्योंकि बौद्धोंके निकट इनका सम्बन्ध सिर्फ वाह्य जगत और मानसिक सम्बन्धोंसे है,* और जैन सिद्धान्तमें इनके अलावा

---

१ पूर्व पृष्ठ ९४-९५ २ पूर्व पृष्ठ ५२. ३ बौद्ध बुद्धिस्ट फिलासफी पृष्ठ ७४ ४. तत्वार्थसूत्र (S B J. II) पृष्ठ १५.
*बुद्धिस्ट फिलासफी पृष्ठ ७४

पदार्थोंके वास्तविक स्वरूपसे भी यह सम्बन्धित है। इससे यह साफ प्रगट है कि म० बुद्धने केवल जैनियोंके व्यवहार धर्मका किंचित् आश्रय लेकर अपने सिद्धान्तोंका निरूपण किया था इसीलिये जैनशास्त्रोंमें म० बुद्धके मतकी गणना एकान्तमतमें की गई है। श्री गोम्मटसारजीका निम्न श्लोक यही प्रगट करता है —

'एयंत बुद्धदरसी विवरीओ बंभ तावसो विणओ।
इंदो वि य संसइओ मक्कडिओ चेव अण्णाणी॥'

इसमें बौद्धको एकान्तवादी, *ब्रह्म या ब्राह्मणोंको विपरीतमत,* तापसोंको वैनयिक, इन्द्रको सांशयिक, और मंखलि या मस्करीको अज्ञानी बतलाया है।' किन्तु श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें बौद्ध धर्मको 'अक्रियावादी' लिखा है, जो स्वयं बौद्धोंके शास्त्रोंके उल्लेखोंसे समर्थित है। यहां पर श्वेताम्बराचार्य बौद्धोंके व्यवहारधर्मको लक्ष्य करके ऐसा लिखते हैं, जब कि दिगम्बराचार्य उनके सैद्धान्तिक विवेचनको पूर्णत: लक्ष्य करके उसे एकान्तवादी बताते हैं। अक्रियावाद एकान्तमतका एक भेद है। स्वयं दिगम्बर जैनोंकी 'तत्त्वार्थ राजवार्तिक' (८।१।११) में बौद्ध धर्मके मुख्य प्रणेता मौद्गलायनका उल्लेख अक्रियावादियोंमें किया गया है। अस्तु!

आइए पाठक अब जरा भगवान महावीरके धर्म पर भी एक दृष्टि डालें। उन्होंने जिस प्रकार धर्मकी व्याख्या की थी, उसीके अनुसार समस्त सचराचर पदार्थोंके विषयमें यथार्थ सत्यका निरूपण किया। उन्होंने कहा कि यह लोक प्रारंभ और अन्त रहित

१. जैनसूत्र (S. B. E.) भाग १ भूमिका.

अनादिनिधन है।[१] यह द्रव्योंका लीलाक्षेत्र है, जो द्रव्य अनादिसे सत्तामें विद्यमान् हैं और अनन्तकाल तक वैसे ही रहेंगे। इस तरह इसलोकमें न किसी नवीन पदार्थकी सृष्टि होती है और न किसीका सर्वथा नाश होता है। केवल द्रव्योंकी पर्यायोंमें उलट फेर होती रहती है, जिससे लोककी एक खास अवस्थाका जन्म, अस्तित्व और नाश होता रहता है।[२] इस कार्यकारण सिद्धान्तमें इसप्रकार किसी एक सर्व शक्तिवान् कर्त्ता-हर्त्ताकी आवश्यक्ता नहीं है। वस्तुत एक प्रधान व्यक्तिके ऊपर ससारका सर्वभार डालकर स्वय निश्चिन्त हो जाना कुछ सैद्धान्तिकता प्रकट नहीं करता। ससारका रक्षक होकर ससारी जीवपर वृथा ही दु खोंके पहाड़ उलटना कोई भी बुद्धिवान् स्वीकार नहीं करेगा। सचमुच सासारिक कार्योंको अपने जुम्मे लेकर वह ईश्वर स्वय राग और द्वेषका पिटारा बन जायगा और इस दशामें वह सासारिक मनुष्यसे भी अधिक बन्धनोंमें बध जायगा। इस अवस्थामें ईश्वरको अनादिनिधन मान-नेके स्थानपर स्वय लोकको ही अनादिनिधन मान लेनेसे यह झझटें कुछ भी सामने नहीं आती है। वस्तुत भारतीय षट्दर्शनोंका सूक्ष्म अध्ययन करनेसे उनमें भी एक कर्त्ताहर्त्ता ईश्वरकी मान्यताके कहीं दर्शन नहीं होते।[३] ऐसा प्रतीत होता है कि यह उपरान्तके भीरु और आलसी मनुष्योंकी रचना ही है जो परावलम्बी रहनेमें ही आनन्द मानते है। अस्तु।

---

१ बौद्धशास्त्र 'सुमङ्गलाविलासिनी' (P T S, P 119) में जैनोंकी इस मान्यताका उल्लेख है २. तत्वार्थसूत्र (S B J II) पृष्ठ १२०-१२१ ३ अंग्रेजी जैनगजट भाग २० पृष्ठ १७ और E. R E. Vol II, P. 185 ff

स्त लोक इनसे भरा पड़ा है। (५) धर्म वह अमूर्तीक द्रव्य है जो लोकके समान व्यापक है और जीव, अजीवके गमनमें उसी तरह सहायक है जिस तरह मछलीको जल चलनेमें सहायक है। (६) और अंतिम अधर्म द्रव्य भी अमूर्तीक और सर्वलोकव्यापक है। इसका कार्य द्रव्योंको विश्राम देना है।[1]

इनमें केवल जीव और पुद्गल ही मुख्य हैं, शेष द्रव्य उनके अनुगामी हैं। इनके मुख्य चार कर्तव्य हैं अर्थात् वे आकाशमें स्थान ग्रहण करते हैं, परावर्त होते हैं और चलते हैं अथवा स्थिर रहते हैं। प्रत्येक कार्यमें दो कारण होते हैं, एक मुख्य उपादान कारण और दूसरा सामान्य-निमित्त (Auxiliary) कारण। सोनेकी अंगूठीमें मुख्य उपादान कारण सोना है, परन्तु उसके सामान्य निमित्त कारण अग्नि, सुनार, औजार आदि कई हैं। इस-लिए जीव और अजीवके उक्त चार कर्तव्योंका मुख्य कारण स्वयं जीव और अजीव है, और सामान्य कारण उपरोल्लिखित शेष चार द्रव्य हैं। इसप्रकार यह लोक अकृत्रिम और यथार्थ छै द्रव्यों कर पूर्ण है और इसमें जो कुछ पर्यायें और दशायें उपस्थित होती हैं वह इन जीव एवं अजीवकी पर्यायोंके कारण होती हैं, जो शेष चार द्रव्योंके साथ हरसमय क्रियाशील रहती हैं।[2]

इतना जानलेने पर हम भगवान महावीर और म० बुद्धकी प्रारंभिक शिक्षाओंका विशद अन्तर देखनेमें समर्थ हैं। यद्यपि म० बुद्धने अपने सिद्धांतोंको जिस ढंग और क्रमसे स्थापित किया है वह जाहिरा म० महावीरके धर्म-निरूपण-ढंगसे सादृश्यता रखता

१ तत्वार्थ सूत्र अ० ५ २ दी प्रिन्सिपल्स आफ जैनीज्म पृ० ४

है किन्तु इतनेपर भी यह म महावीरके ढंगके समान नहीं है। यह अनात्मवाद पर अवलंबित है और स्वयं अपरिपूर्ण है, परन्तु भगवान महावीरने उसी सनातन वस्तु प्रतिपादन किया था, जिसको उनके पूर्वगामी तीर्थंकरोंने वस्तुस्थितिके अनुरूपमें बतलाया था, और जिसमें आत्माकी मान्यता सर्वाभिमुख थी। सर्वज्ञ तीर्थंकरद्वारा प्रतिपादित हुआ धर्म किसी दृष्टिमें भी अपरिपूर्ण नहीं होता। यही दशा भगवान महावीरके धर्मके विषयमें है।

म बुद्धने अपने सैद्धान्तिक विवेचनमें 'संस्कार' मुख्य पद रक्खे थे किन्तु इनका भी एक स्पष्टरूप नहीं मिलता है। तो भी इतना स्पष्ट है कि जैन सिद्धान्तमें यह कहीं नहीं मिलते हैं। अतएव यह वस्तुतः सांख्यदर्शनके 'संस्कार' सिद्धान्तके रूपान्तर ही हैं और मात्र यहींसे लिये गये प्रतीत होते हैं। इन संस्कारोंकी उत्पत्ति म बुद्धने चार सत्योंकी अज्ञानतापर अवलम्बित बताई है अर्थात् दुःख उसके मूल उसके नाश और उसके मार्गकी अज्ञानता ही संस्कारोंकी जन्मदात्री है। यह 'संस्कार मुख्यतः मन वचन कायरूपमें विभाजित हैं। यदि एक भिक्षु यह निदान बांधे कि मैं मृत्यु उपरान्त अमुक कुलमें उत्पन्न होऊं तो वह अपने इस तरहके बांधे हुये संस्कारके कारण अवश्य ही उस कुलमें जन्म लेगा। किन्तु डॉ कीथसाहब इस मतसे सहमत नहीं हैं। वे कहते हैं कि दूसरा जन्म केवल मानसिक निदानके बल नहीं हो सक्ता। यह सिद्धान्त स्वयं बौद्ध शास्त्रोंके कथनसे विलग पड़ता है। बौद्धशास्त्रोंमें यह बात है कि जब शरीर विद्यमान होता है तब ही शारीरिक वा वाचिक संस्कार बांधा जा सक्ता है। इस

लिये आगामीके लिये सखार बाधना मुश्किल है। तिसपर यह बात भी ध्यानमें रखनेकी है कि बुद्धने जिन पाच खण्डों या स्कधोका समुदाय व्यक्ति बतलाया है उनमें एक खण्ड सखार भी है। इस अवस्थामें सखारका भाव अलग निदान बाधनेका नहीं हो सक्ता। इसीलिये डॉ० कीथसाहब भावों (Dispositions) को ही सखार बतलाते हैं, जो साख्यदर्शनके 'सम्कार'के समान ही है, जिनका व्यवहार वहा पर पहिले विचारों और कार्योंद्वारा छोडे गये सस्कारों (Impressions) के प्रभाव फलके रूपमें हुआ हैं।[1] म० बुद्धके बताये हुये जाहिरा कार्य-कारण लड़ीमें इन सखारोंकी मुख्यता इसीरूपमें मौजूद है। इन्हीं सखारोंकी प्रधानताको लक्ष्य करते हुये म० बुद्धने अपनी कार्य-कारण लडीका निरूपण इस तरह किया है

"अज्ञानसे सम्कारकी उत्पत्ति होती है, इससे विज्ञान (Appre e 1s1on) की, जिससे नाम और भौतिक देह उत्पन्न होती फिर नाम और भौतिक देहसे षट्-क्षेत्रकी सृष्टि होती है, जो इन्द्रियों और विषयोंको जन्म देती है। इन इन्द्रियों और उनके विषयोंके आपसी सघर्षसे वेदना उत्पन्न होती है। वेदनासे तृष्णा होती है, जिससे उपादान पैदा होता है, जो भवका कारण है। भवसे जन्म होता है। जन्मसे बुढापा, मरण, दुख, अनुसोचन (R3110 ~~) यातना, उद्वेग और नैरास्य उत्पन्न होते हैं। इस तरह दुखका साम्राज्य बढता है।'

१ ड५ निर्वाणके लिए डॉ० कीथसा०की 'बुद्धिस्ट फिलासफी' नामक पु-१५ (पृष्ठ ५०-५१) देखना चाहिए।

इस विवरणसे हमें म० बुद्धका संसार प्रवाह आदिरा कर्म-क्रमके सिद्धान्त पर अवलंबित नजर आता है। इसी क्रमउसके अनुसार भी संसारमें सनातन और अविच्छन्न प्रवाह मिलते हैं। इस अवस्थामें वह जैनसिद्धांतमें स्वीकृत जन्म-मरण सिद्धान्त (Transmigration Theory) का रूपान्तर ही है। इनमें जो भेद है वह यही है कि बौद्धोंके अनुसार प्रारंभमें सर्व कुछ (Form nd mode) अज्ञान ही था। जैनसिद्धान्तमें संसार-परिभ्रमण सिद्धान्तका प्रारंभ माना ही नहीं गया है। वह यहां अनादिनिधन है। इसतरह बुद्धका संसारप्रवाह मूलसे ही जैन-सिद्धान्तके विरुद्ध है।

म० बुद्धके उक्त विवरणमें यदि हम यह जाननेकी कोशिश करें कि जन्म किसका होता है, तो हमें निराशा ही हाथ आयगी; क्योंकि आत्माका अस्तित्व म० बुद्धने स्वीकार ही नहीं किया था। यद्यपि इस विषयमें श्रोताओंके अपनी प्रवृत्ति मुताबिक अज्ञान बोध भेदकी भी युक्ती म० बुद्धने देदी थी, जिससे बौद्ध शास्त्रोंमें भी आत्म शब्दकी झलक कहीं २ दिखाई पड़ जाती है परन्तु उन्होंने स्वयं अनात्मवादको ही प्रधानता दी थी। अभिधर्मका निरूपण करते हुये बुद्धने यही कहा था कि 'न कोई आत्मा है न पुद्गल है न सत्त्व है और न जीव है। यहां केवल ब्राह्मण सिद्धान्तमें माने हुये आत्माका ही खण्डन नहीं है बल्कि उस सिद्धांतका भी जो इसी इससे भिन्न एक जीवितव्यार्थ मानकर संसारपरिभ्रमणको घोषणा करता है। उनके अनुसार मनुष्य पांच स्कन्धोंका समुदाय है अर्थात् रूप

१ धम्मपद (S. B. E) और वेदरेही गाथा देखो।

(Material element), संज्ञा, वेदना, सस्कार और विज्ञान। मनुष्यका वर्णन उसके उन भागोंके वर्णनमें किया गया है जिनसे वह बना है और उसकी समानता एक रथसे की है जो विविध अवयवोंका बना हुआ है और स्वय उसका व्यक्तित्व कुछ नहीं है।'[1] यह मानता बुद्धके उपरान्त उनकी हीनयान सम्प्रदायको अब भी मान्य है, किंतु महायान सम्प्रदाय इससे अगाड़ी बढ़कर पदार्थोंके अस्तित्वसे ही इन्कार करती है।[2] उसके निकट सब शून्य है, यह उपरान्तका सुधार है। म० बुद्धके निकट तो अनित्यवाद ही मान्य था। इस अवस्थामें इस प्रश्नका सतोपजनक उत्तर पाना कठिन है कि जन्म किसका होता है?

म० बुद्धने प्राय इस प्रश्नको अधूरा ही छोड दिया है। परन्तु जो कुछ उनने कहा है उसका भाव यही है कि एक व्यक्ति जन्म लेता है और यह व्यक्ति केवल पाच वस्तुओंका समुदाय है[3] जिनको हम देख चुके। इससे यह व्यक्ति कोई सनातन नित्य पदार्थ नहीं माना जासक्ता। सत्ता तो वह है ही नहीं! जिस प्रकार सब अवयवोंके पहिलेसे मौजूद रहनेके कारण शब्द 'रथ' कहा जाता है वैसे ही जब उपरोल्लिखित पाच वस्तुयें एकत्रित हुईं तब बुद्धने 'व्यक्ति' शब्दका उच्चारण किया! यह बौद्धोंकी मान्यता है। और इससे हमारा प्रश्न हल नहीं होता, क्योंकि जिन पाच स्कन्धोंका समुदाय व्यक्ति बताया गया है वह उस व्यक्तिके साथ ही खतम हो जाते हैं। अस्तु,

---

१ इन्साइक्लोपेडिया आफ रिलीजन एण्ड इथिक्स भाग ९ पृ ८४७.
२ कान्फ्लुयेन्स आफ ओपोजिट्स पृ० १४७ ३ मिलिन्दपन्ह २।१।२.

धम्मही इसी भव–भ्रमण–कड़ीके अनुसार कहा गया है कि पर्यायावस्था (Becoming) चालू रहती है और वस्तुतः यहाँ सिवाय पर्यायान्तरित होनेके कोई व्यक्ति है ही नहीं।' इस पर्यायावस्थामें पुरानी और नवीन पर्यायका सम्बन्ध चालू रखनेके लिये, महानिदान सूत्रमें माताके गर्भमें विज्ञान (Consciousness) का उतरना बतलाया है। डा० कीथ इस मतको स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि "इस वाक्य–विशेषसे कि 'विज्ञानका उतरना होता है' (Descent of the Consciousness) विज्ञानका पुरानी पर्यायसे नवीनमें जाना बिल्कुल स्पष्ट है। और यह संभव है कि यह विज्ञान किसी प्रकारके शरीर सहित जाता हो। म० बुद्ध विज्ञानके चालू रहनेसे बिल्कुल सहमत हैं। इसप्रकार यद्यपि म० बुद्धने एक नित्य सत्तात्मक 'व्यक्ति' का अस्तित्व स्वीकार किये बिना ही अपना सिद्धान्त निरूपित करना चाहा और संज्ञा (Consciousness) की उत्पत्ति अपने आप पाँच स्कन्धोंमें होती स्वीकार की जिस तरह सांख्यदर्शन बतलाता है, परन्तु अंतमें उनको पर्याय–प्रवाहमें संज्ञा–विज्ञान Consciousness का चालू रहना मानना ही पड़ा! इस तरह इस निरूपणकी कमजोरी साफ जाहिर है! भला बिना किसी सत्तात्मक नित्य जीवके सांसारिक पर्यायोंका क्रम कैसे बांधा जासकता है? किन्तु इस निरूपणमें भी जैन सिद्धांतकी झिलमिली झलक नजर पड़ रही है। जैनियोंके अनुसार इच्छा ही कर्मबंधका कारण है जिसका मूल स्रोत अज्ञान-

१ बुद्धिज्म–स्टडी हिस्टरी एण्ड फिलोसफी पृ० ११ २ दीघनिकाय ११५३ ३. बुद्धिस्ट फिलॉसफी पृ०

नित मोहावस्थामें है।[1] इसलिए सत्तात्मक व्यक्ति (जीव)—जिसका लक्षण उपयोग सज्ञा है, इस अवस्थामें सांसारिक दुःख और पीड़ाको भुगतता ससारमें रुलता है। इस ससारपरिभ्रमणमें जब वह एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाता है तो उसके साथ सूक्ष्म कार्माण शरीर भी जाता है, जिसके कारण दूसरे शरीरमें उसका जन्म होता है। म० बुद्धके उक्त विवरणमें हमें इस सिद्धातके विकृतरूपमें किञ्चित दर्शन होते हैं।

अब जरा और बढ़कर बौद्धदर्शनमें यह तो देखिये कि वह कौनसी शक्ति है जो 'विज्ञान'को उसका नवीन जन्म देती है? म० बुद्धने यह शक्ति कर्म बतलाई है। कर्ममें भी 'उपादान' इसके लिये मुख्य कारण है। इस कर्मसम्बधमें भी डॉ० कीथसाहब हमें विश्वास दिलाते हैं कि 'इस बातपर बौद्धशास्त्र प्राय स्पष्ट हैं। कर्मका जोर किसी रीतिसे भी टाला नहीं जासक्ता! बहानेबाजी वहा काम नहीं देती। कर्मका दण्ड अवश्य ही सहन करना पड़ेगा हा, उस दशामें यह निरर्थक हो जाता है जब ससार—प्रवाहकी लड़ीको नष्ट करनेका साधन मिल गया हो। यहापर भविष्यके लिये तो कर्म लागू नहीं हो सक्ता, किन्तु गत कर्मोका कार्यमें ले आना आवश्यक है जिससे उनका महत्व ही जाता रहे। अनेक

१ म० बुद्धने भी इच्छाको-तृष्णाको दुःखका कारण बतलाया है, परन्तु उसके भावको दोनो स्थानोंपर दूसरी तरह ग्रहण किया गया है, यह प्रकट है। तथापि बुद्धने इन्द्रियोंकी सख्या, नाम और उनका विषय ठीक जैनधमके अनुसार बतलाया है। मनकी व्याख्या जो उनने की है वह भी सामान्यत जैनधर्मकी व्याख्यासे मिलती जुलती है। इसके लिये तत्त्वार्थसूत्र अ० २ देखना चाहिये।

बुद्धपर आरोपित नहीं किया जासक्ता, क्योंकि -
सैद्धातिक वातावरणमें आनेसे इन्कार कर दिया था
लीन परिस्थितिके शुधारक और सुधारक भी माध्यमि
इसलिये उनका सैद्धान्तिक विवेचन पूर्णताको लिये हुये न हो तो
कोई आश्चर्य नहीं! बौद्धधर्मका सैद्धातिक विकास बहुत करके म०
बुद्धके उपरान्तका कार्य है।

किन्तु इतनेपर भी यह स्पष्ट है कि म० बुद्धके अनुसार भी
ससार एक सनातन प्रवाह है, जिसका प्रारम्भ और अन्त अनतके
गर्तमें है। तथापि वह असत्तात्मक (Unsubstantial) और
कर्मके आश्रित है। कर्म स्वय किसी मनुष्यका नैतिक कार्य नहीं
बतलाया गया है, परन्तु वह एक सार्वभौमिक सिद्धान्त माना गया
है। उसे किसी बाह्य हस्तक्षेपकी जरूरत नहीं है जो उसका फल
प्रदान करे। कर्म स्वय स्वाधीन है, इसलिये बुद्धके निकट भी एक
जगत नियत्रक ईश्वरकी मानताको आदर प्राप्त नहीं है।

इस प्रकार सामान्यत भगवान महावीर और म० बुद्धका
कर्म सिद्धान्त विवरण भी किंचित बाह्य सादृश्यता रखता है। कर्मका
स्वभाव और प्रभाव दोनों ओर एकसा ही माना गया है; किन्तु यह
एकता केवल शब्दोंमें ही है। मूलमें दोनोंमें आकाश पातालका अन्तर
है। म० महावीरके अनुसार कर्म एक सूक्ष्म सत्तामय पौद्गलिक
पदार्थ है, जो ससारी जीवके बन्धनका कारण है। म० बुद्धके निकट
वह असत्तात्मक (Unsubstantial) नियम है। विद्वानोंने परि-
णामत. खोज करके यह प्रगट किया है कि म० बुद्धने कर्मसिद्धां-
तकी बहुतसी बातोंको जैनधर्मसे गृहण किया था। आश्रव, संवर

धर्म, जो वैदिक धर्मके सम्पर्कमें प्रभावित नहीं होने मूलमें जैन मतके हैं।' अस्तु।

दूसरी ओर म० बुद्धके उपदेशके विपरीत भगवान महावीरका सिद्धान्त विवेचन आत्मवादपर आश्रित था। आत्मा उनमें मुख्य मानी गई थी, जैसे हम देखचुके हैं। भगवानने कहा था कि अनन्तकालसे आत्मतत्व पुद्गलसे सम्बद्ध है। यद्यपि यह आत्मा अपने स्वभावमें अनंतदर्शन अनंतज्ञान, अनंतवीर्य और अनंतसुख कर पूर्ण स्वाधीन है किन्तु इसके उक्त सम्बन्धने इसके असली रूपको मलिन कर दिया है। इसी मलिनताके कारण यह संसारमें अनादिकालसे परिभ्रमण करती है। इस तरह जो आत्मायें संसार परिभ्रमणमें फंसी हुई हैं वे घोर यातनायें और पीड़ायें सहन करती हैं। क्योंकि यह पौद्गलिक सम्बन्ध उनमें इन्द्रियजनित इच्छाओं और वाञ्छाओंकी ऐसी ज़बरदस्त तृष्णा उत्पन्न करता है कि वे निरन्तर उसीमें भ्रमा करती हैं। उनके साथ इस परिभ्रमणमें एक कार्माणशरीर लगा रहता है जो पुण्यमई और पापमई कर्मवर्गणाओंका बना हुआ है। इस कार्माण शरीरमें मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिके अनुसार प्रत्येक क्षण नवीन कर्मवर्गणायें आती रहती हैं और साथ ही पुरानी झड़ती रहती हैं। ये कर्मवर्गणायें जो आत्मामें आकर्षित होती हैं वे किसी नियत कालके लिए ही आत्मासे सम्बन्धित होती हैं। ज्यों ही आत्माको वस्तुस्थितिका भान होता है और उसे भेद विज्ञानकी प्राप्ति होती है त्यों ही वह सांसारिक बंधनों और झूठे मोहसे ममत्व त्याग देती है। इस दशामें यह आत्म-ध्यान

१ एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड ईथिक्स भाग [illegible] पृ० ४०२.

और तप-उपवासका आश्रय लेती है, जिसके सहारे क्रमश आत्मोन्नति करते हुये वह एक रोज कर्मबन्धनोंसे पूर्णत मुक्त हो जाती है। भगवद् कुन्दकुन्दाचार्य यही वतलाते हैं —

"जीवा पुग्गलकाया अण्णोण्णागाढगहणपडिवद्धा।
काले विजुज्जमाणा सुहदुक्खं दिन्ति भुञ्जन्ति ॥६७॥"

भावार्थ—आत्मा और कर्मपुद्गल दोनों एक दूसरेसे वारवार सम्वन्धित होते हैं, किन्तु उचितकालमें वे अलग २ होजाते हैं। वही दुःख और सुखको उत्पन्न करते हैं जिनका अनुभव आत्माको करना पड़ता है।

इस प्रकार मुख्यत कर्म ही सर्व सासारिक कार्योंका मूल कारण है। जो कुछ एक ससारी आत्मा बोता है, वही वह भोगता है। और जब कि यह कर्मवद्ध आत्मा ही शेष पाच द्रव्योंके साथ कार्य कर रहा है, तब ससारकी सब क्रियायें इसी कर्मपर अवलम्बित हैं। इस कर्मका प्रभाव सारे लोकमें व्याप्त है और ससारप्रवाह भी इस हीके वलपर चालू है। इसका फल भी अटल है। कभी जाहिराहमें भले ही उसका फल कार्य करता नजर न आता हो, परन्तु तो भी सामान्यतया कर्म निष्फल नहीं जा सक्ता। ससारमें हम एक पापीको फूलता फलता अवश्य देखते हैं और एक पुण्यात्माको दुःख उठाते, किन्तु इससे भी यह स्वीकार नहीं किया जा सक्ता कि पापकर्मोंका फल पापीको और पुण्यकर्मोंका फल पुण्यात्माको नहीं मिलेगा। जैनाचार्य कहते हैं—

"या हिंसावतोऽपि समृद्धिः अर्हद् पूजावतोऽपि दारिद्र्याप्तिः साऽक्रमेण प्रागुपात्तस्य पापानुबन्धिनः पुण्यस्य पुण्यानुबन्धिनः

पापस्य च फलम्। तद् क्रियोपार्थे तु कर्मजन्मान्तरे फलिष्यतीति नात्र नियतकार्यकारणेन व्यभिचारः॥ ”

भावार्थ—पापी मनुष्यकी अभिवृद्धि और अर्हतपूजकके पुण्या त्माओंकी दयाजनक स्थिति उन दोनोंके पूर्वसंचित कर्मोंका फल समझना चाहिये। उनके इस जन्मके पाप और पुण्य दूसरे भवमें अपना फल दिखायेंगे इसलिये कर्म नियम किसी तरह बाधित नहीं है।

सचमुच भगवान महावीर सर्वज्ञ थे साक्षात् परमात्मा थे—इसलिये उनका उपदेश वैज्ञानिक और व्यवस्थित होना ही चाहिये। इस दृष्टिसे अनुरूपमें जैनग्रन्थों जैसे—गोम्मटसार, पञ्चास्तिकायसार आदिमें कर्मसिद्धान्तका पूर्ण और वैज्ञानिक विवेचन ओतप्रोत भरा हुआ है। उनका सामान्य दिग्दर्शन कराना भी यहां मुश्किल है। तो भी यह स्पष्ट है कि कर्मसिद्धान्तके अस्तित्व और उसकी क्रियासे इन्कार नहीं किया जासकता। कर्म कारण सिद्धांतका वास्तविक नियम है, इस विषयमें इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि आत्मा स्वयं अपने स्वभावमें ही क्रिया करता है और वह अपने आप अपने भावका कारण है। वह कर्मोंकी विविध अवस्थाओंका मूल कारण नहीं है, इसी तरह कर्म भी स्वयं अपनी पर्यायोंका कारण है। वह स्वयं अपने आपमें क्रियाशील है। श्री नेमिचन्द्राचार्यजी उनके पारस्परिक सम्बन्धको स्पष्ट प्रगट कर देते हैं—

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्चयदो।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥ ८ ॥ द्रव्यसंग्रह ॥

भावार्थ—व्यवहारनयकी अपेक्षा आत्मा कर्मोंकी पर्यायोंका कारण है; परन्तु निश्चयनयसे आत्मा स्वयं अपने उपयोगमयी

भावोंका कारण है और शुद्ध निश्चयनयसे वह पवित्र स्वाभाविक दशाका कारण है।

इसप्रकार उक्त विवेचनसे यह स्पष्ट है कि ससार अवस्थामें भटकती हुई आत्मा अपनी स्वाभाविक अवस्थाके गुणोंका उपभोग करनेमें असमर्थ है। इसकी अशुद्ध अवस्थामें राग, द्वेष आदि जैसे विभाव उत्पन्न होते रहते हैं, जो इसके सासारिक बन्धनको और भी बढ़ाते हैं। भगवद् कुन्दकुन्दाचार्य यही बतलाते हैं—

'भावनिमित्तो बन्धो भावोरदि रागद्वेषमोहजुदो।'

अर्थात्–बन्ध भावके आधीन है जो रति, राग, द्वेष और मोहकर सयुक्त है। अतएव इस लोकमें भरी हुई कर्मवर्गणाओंको जो आत्माकी ओर आकर्षित करते हैं वह भाव हैं, अर्थात् मिथ्यादर्शन, अवरति, प्रमाद, कषाय और मन, वचन, कायरूप योग[1]। यही भाव कर्मबद्ध आत्माको शुभ और अशुभ क्रियाओंके अनुसार पाप और पुण्यमय कर्माश्रवके कारण हैं। इस तरहपर कर्म मुख्यता दो प्रकारका है–(१) भावकर्म (२) और द्रव्यकर्म। आत्मामें उदय होनेवाले भाव भावकर्म है और जो कर्मवर्गणायें उसमें आश्रवित होतीं हैं वह द्रव्यकर्म हैं। यह कर्मोंका आगमन 'आश्रव' कहलाता है। यह जैनसिद्धान्तमें स्वीकृत सात तत्त्वोंमें तीसरा तत्व है। जीव और अजीव प्रथम दो तत्व हैं।

इस सैद्धान्तिक विवेचनमें जिस प्रकार उक्त तीन तत्त्व प्राकृत

---

१ तत्वार्थसूत्र (S B. J Vol II.) पृष्ठ १५५ बौद्धोंके मज्झिमनिकाय (P T S. Vol I P. 372) में भी जैनियोंके इस योगका उल्लेख है।

आवश्यक है उसी तरह योगके वश है। इसमें चौथा तत्त्व बंध है। यह आश्रवित कर्मोंसे आत्माके एक कालके लिये सम्बन्धित करानेके लिये आवश्यक ही है। इसका अर्थ यही है, परन्तु इस बंधकी अवधि उसप्रमाणके कषायोंकी तीव्रतापर अवलम्बित है; जिसप्रमाण कषायभाव होरहा हो। इस अवधिमें संचित कर्म अपना शुभाशुभ फल देता है और पूर्ण फलको देनेपर आत्मासे अलग होजाता है।

यहांतक तो कर्मोंके संचय और उसके यथावत् दिग्दर्शन किया गया है किन्तु पांचवें तत्त्वसे इन कर्मोंसे छुटकारा पानेका मार्ग शुरू होता है। वह तत्त्व संवर है। कर्मोंसे छुटकारा पानेके लिये उस मार्गको बन्द करना आवश्यक है जिसमेंसे कर्माश्रव होता है। यह प्रतिरोध ही संवर है। मन, वचन, कायके योग और उनके आधीन इन्द्रियजनित विषयवासनाओंपर विजय प्राप्त करना मानो आगामी कर्मोंके आगमनका द्वार बंद करना है। फिर इस अवस्थामें केवल यही शेष रह जाता है कि जो कर्म सत्तामें हों उनको निष्फल किया जावे। यह क्रियाकम छट्ठा तत्त्व निर्जरा है और इसके द्वारा कर्मोंको नियत समयसे पहिले ही झाड़ देता है। यह संयम और तपश्चरणके अभ्याससे होता है। अन्ततः कर्मोंसे पूर्ण छुटकारा पाना सातवां तत्त्व मोक्ष है। मुक्त हुई आत्मा लोककी शिखिरपर सिद्ध सिद्धशिलामें पहुंचकर हमेशाके लिये अपने स्वाभाविक मोक्ष पद पाती है। इस दशामें वह अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य और अनन्त सुखका उपभोग करती है। इसप्रकार यह वास्तविक सिद्ध सात तत्त्व हैं और इनमें किसी प्रकारकी कमीबेशी करनेकी

---

१ ह स ह १९ ... १ ८ स ह १ ५

गुञ्जाइश नहीं है। इसलिये आज भी हमको यह उसी रूपमें मिलते है जिस रूपमें भगवान महावीरने ढाई हजार वर्ष पहिले पुन बतलाये थे। इन्हीं तत्वोंमें पुण्य और पाप मिलानेसे नौ पदार्थ होजाते है। अस्तु,

अब जरा पाठकगण, इन कर्मके भेदोंपर भी एक दृष्टि डाल लीजिये, जो ससारप्रवाहमें इतना मुख्य स्थान गृहण किये हुये है। भगवान महावीरने सामान्यत यह आठ प्रकारका बतलाया था; यथा—

(१) ज्ञानावर्णीय—ज्ञानको आवरण (ढकने) करनेवाला कर्म।

(२) दर्शनावर्णीय—देखनेकी शक्तिमें बाधा डालनेवाला कर्म।

(३) मोहनीय—वह कर्म जो आत्माके सम्यक् श्रद्धान और आचरणमें बाधक है।

(४) अन्तराय— ,, ,, ,, ,, की स्वनत्रतामें बाधक है।

(५) वेदनीय— ,, ,, ,, ,,सुख-दु खका अनुभव कराता है।

(६) नाम— ,, ,, ,, ,, संसारकी विविध गतियोंमें लेजानेका कारण है, जैसे देव,मनुष्यादि।

(७) गोत्र— ,, ,, ,, ,, उच्च—नीच कुलमें जन्म लेनेका कारण है।

(८) आयु— ,, ,, ,, ,, एक नियत काल तक एक गतिमें रखता है।

यह आठ प्रकारके कर्म पुन अन्तर्भेदोंमें विभाजित है, जो कुल १४८ कर्मप्रकृतिया कहलाती हैं। जिस प्रकृतिका जिस समय उदय होगा उस समय आत्माकी अवस्था वैसी ही हो जावेगी।

इसकी सूक्ष्मता यहाँ तक व्याप्त है कि जीवित प्राणीके शरीरकी हड्डियोंके रचनेवाला एक अस्थि-नाम-कर्म है। कोई दशा और कोई अवस्था कर्मप्रभावके अतिरिक्त कुछ नहीं है और जब यह कर्म स्वयं प्राणीके मन वचन कायकी क्रियाओंके अनुसार सत्तामें आता है तब यह इस प्राणीके आधीन है यह चाहे जिस प्रकारके कर्मोंको अपनेमें संचय करे अथवा उसको बिलकुल ही आस्रवित न होने देनेका उपाय करे। मतलब यह कि मनुष्यका भविष्य स्वयं उसकी मुट्ठीमें है। भगवान महावीरके बताये हुये कर्मसिद्धान्त पालनसे मनुष्य बिलकुल स्वावलम्बी और स्वाधीन होता ही नजर आयगा। पराश्रयपिता और पराधीनताको यहाँ स्थान प्राप्त नहीं है। इस कर्म सिद्धान्त पूर्ण विवरणके गोम्मटसारादि जैनग्रंथोंसे जानना आवश्यक है।

अब यह तो जान लिया कि इस अनादिनिधन लोकमें कर्म जनित परिस्थितिमें अनन्त आत्माएं अपने स्वभावको भुलायें भटक रही हैं परन्तु इस भटकनाका भी कोई क्रम है या नहीं? भगवान महावीरने इसका भी एक क्रम हमको बतलाया है। यह क्रम जीवनके विविध रूप निश्चय करता है। जैन धर्ममें इनका उल्लेख 'गति' के नामसे किया गया है और ये चार प्रकार हैं-(१) देवगति, (२) मनुष्यगति, (३) तिर्यंचगति और (४) नर्कगति। देवगतिमें आत्मा स्वर्गोंमें जन्म लेता है जहाँ विशेष ऐश्वर्य और सुखका उपभोग यह करता है, किन्तु वहाँ भी यह दुःख और पीड़ासे बिलकुल मुक्त नहीं है। दूसरी गति मनुष्यगति है और इसके मार्गमें सुख और दुःख दोनों ही पड़े हैं, जिसपर उसमें दुःखकी मात्रा ही अधिक है। तीसरी तिर्यंचगतिमें पशु, पक्षी, कीड़े, मकोड़े, वृक्ष,

लता, अग्नि, जल, वायु आदि जीवन-भवगर्भित है। इस गतिमें आत्माको और अधिक दुःख और पीड़ा भुगतनी पड़ती है। अंतिम नर्कगति नर्कका वास है। यहा घोर दुःख और असह्य पीड़ायें सहन करनी पड़ती हैं। इन चारकी भी अन्तर्दशायें हैं, परन्तु इन सबका लक्षण जीना और मरना ही है। इन गतियोंमेंसे आत्मा किसी भी गतिमें जावे उसके शुभाशुभ कर्म अपने आप उसके साथ जावेंगे। इसलिये किसी भवमें भी उपार्जन किया हुआ पुण्य अकारथ नहीं जाता है। इनमेंसे स्वर्ग और नर्ककी वासी आत्मायें अपने आयुके पूरे दिनोंका उपभोग करती हैं-इनकी अकाल मृत्यु नहीं होती, परन्तु शेष दो गतियोंके जीव अपनी आयुके पूर्ण होनेके पहिले भी मरण कर जाते हैं। नरकगतिमें शरीरके टुकड़े २ भी कर दिये जाय, परन्तु वह नष्ट नहीं होता। पारेकी तरह वह अलग होकर भी जुड जाता है। तिर्यञ्चगतिमें दो प्रकारके जीव हैं -(१) समनस्क अर्थात् मनवाले और (२) अमनस्क अर्थात् बिना मनवाले जीव। यह फिर स्थावर-जो चल फिर न सकें और त्रस-जो चल फिर सकें-के रूपमे दो प्रकार हैं। जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, वनस्पति आदिके रूपकी आत्मायें स्थावर हैं। वे एक इन्द्री रखते हैं और भय लगने पर भी भाग नहीं सक्ते हैं। और त्रस पशु, पक्षी आदि हैं। मनुष्य मुख्यतः आर्य और म्लेच्छ दो भेदोंमें विभाजित हैं।

प्रत्येक संसारी आत्माके उसकी गतिके अनुसार एक प्रकारके

---

१. बौद्धोंके शास्त्रोंमें भी जैनियोंकी इस मान्यताका उल्लेख है :- सुमङ्गलाविलासिनी पृष्ठ १६८ और मिलिन्दपन्ह ४।६।५४. २ बौद्धधर्ममें भी यही दशा नारकियोंकी मानी है, देखो-'दी हेवन एण्ड हेल इन बुद्धिस्ट परस्पेक्टिव' पृष्ठ १०२

प्राण भी हैं। यह प्राण संसारी आत्माके शरीर द्वारा प्रगट हुए उपयोगका एक रूप है। ये कुल दस हैं। (१) पाँच इन्द्रियाँ (स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु, श्रोत्र); (६) मनशक्ति, (७) वचन शक्ति, (८) कायशक्ति, (९) आयु और (१०) श्वासोच्छ्वास। इन प्राणोंके अनुसार ही आत्मा कर्म संचय कर सकती है और कर्मोंको नष्ट कर सकती है इसीलिये आत्माओंकी छे लेश्यायें (Thought Colours) बताई हैं। इनसे आत्माके परिणामोंकी तीव्रता ज्ञात होती है। यह मक्खलि गोशालके छे अभिजाति सिद्धान्तके समान नहीं है। उसके अनुसार तो मनुष्य आत्मामें ही छे प्रकारकी रङ्ग रहती हैं, परन्तु जैनसिद्धान्तमें सब आत्मायें अपने असली रूपमें एक समान बताई गई हैं।

म० बुद्धने भी 'व्यक्ति' के छे प्रकारके जीवन बताये हैं[1] और यह क्रमशः स्वर्ग नर्क, मनुष्य, पशुपक्षी, प्रेत और असुर रूप हैं। जल अग्नि वायु और वनस्पतिमें बुद्धने जीव स्वीकार नहीं किया है यद्यपि वनस्पतिमें जीव स्वीकार किया गया प्रतीत होता है। परंतु इनमेंसे किसीका भी पूर्ण मार्मिक विवरण हमें बौद्धधर्ममें साधारणतः नहीं मिलता है। इतना ज्ञात है कि पुण्य पापमें कर्म जो अज्ञानताके कारण किये जाते हैं उनसे इन जीवोंमें व्यक्तिका सद्भाव होता है।

यह जाननेका प्रयत्न करनेपर कि यह जीवात्मा लोकमें किस तरह पर व्यवस्थित है म० बुद्ध बताते हैं कि इस लोकमें अगणित संसार क्षेत्र हैं जिनके अपने २ स्वर्ग और नर्क हैं।

१. दे० ए० दे० पृष्ठ ११ २. मिलिन्द प्रश्न. ३. दे० ए० दे० पृष्ठ ५१.

जहातक एक सूर्य अथवा चन्द्रमाका प्रकाश पहुचता है-चहातकका प्रदेश एक 'सकल' कहलाता है। प्रत्येक सकलमें-पृथ्वी, खण्ड, प्रान्त, द्वीप, समुद्र, पर्वत आदि होते हैं और उसके मध्यमें 'महामेरु' पर्वत होता है। प्रत्येक सकलका आधार 'अनताकाश' है; जिसके ऊपर 'वापोलोव' अर्थात् वायुपटल ९६० योजन मोटा है। वापोलोवके वाद जलपोलोव है जो ४८०,००० योजन मोटाईका है। ठीक इसके ऊपर महापोलोव अर्थात् पृथ्वी है जो २४०,००० योजन मोटी है।[१] इस तरह प्रत्येक सकल अर्थात् क्षेत्रको म० बुद्धने तीन प्रकारके पटलोंसे वेष्टित वतलाया था। यहा भी जैनसिद्धातकी सादृश्यता दृष्टव्य है। अगाडी पाठक देखेंगे कि जैनसिद्धान्तमें भी लोकको तीन वलयोंसे वेष्टित किस तरह वतलाया गया है। महामेरु जैनधर्मका सुमेरु पर्वत प्रतीत होता है। वौद्ध इसे १६८००० योजन ऊचा और इसके शिखिर पर 'तवुतिश' नामक देवलोक वतलाते हैं।[२] जैनियोंका सुमेरु पर्वत एक लाख योजन ऊचा है और उसकी शिखिरके किञ्चित अन्तरमे स्वर्ग लोकके विमान प्रारंभ होते वताये गए हैं। इससे एक वाल वरावर अन्तर पर सौधर्म स्वर्गका विमान है। यहा भी सादृश्यता दृष्टव्य है। उपरान्त प्रत्येक सकल या पृथ्वीमें चार द्वीपकी गणना वौद्धशास्त्रोंमें की गई है अर्थात् (१) उत्तर कुरुदिवयिन जो महामेरुकी उत्तर ओर चौकोने ८००० योजनके विस्तारका है, (२) पूर्व विदेश—जो महामेरुकी पूर्व-ओर अर्धचद्राकार ७००० योजन विस्तारका है, (३) अपरगोदान, जो

१ Hardy's Manual of Buddhism p p 2-3.
२ Ibid

महामेरुकी पश्चिम ओर गोल द्वीपके आकारका ७ योजनके विस्तारका है; (४) और जम्बूद्वीप जो महामेरुकी दक्षिण ओर त्रिकोण आकारका १ योजनके विस्तारका है। जैन सिद्धान्त इससे नहीं मिलता है। यहां मध्यलोकमें जम्बूद्वीप आदि अनेक द्वीप समुद्र बताये हैं। इन द्वीपसमुद्रोंके ठीक बीचोंबीचमें जम्बूद्वीप बतलाया है जो गोल आकारका है और जिसके मध्यमें मनुष्य शरीरमें नाभिकी भांति मेरु पर्वत है। जम्बूद्वीप एक लक्ष योजनके विस्तारका है। उत्तरकुरु और पूर्वविदेह इसमें वे क्षेत्र हैं जहां भोगभूमि है; परन्तु बौद्धोंके अपरगोदान द्वीपका पता कहीं नहीं लगता है। बौद्धोंने अपने 'उत्तरकुरुद्वीपविषय' द्वीपका जो विवरण दिया है उससे स्पष्ट है कि वे भी यहां एक तरहकी भोगभूमि मानते हैं। उनके अनुसार यहांके निवासी चौपेज सुन्दर हैं, जो न कभी बीमार होते हैं और न कोई आकस्मिक घटना उनपर घटित होती है। स्त्री पुरुष दोनों ही सदा षोडशवर्षीय सुन्दर अवस्थाको धारण किये रहते हैं। वे कोई कार्य धन्धा भी नहीं करते हैं क्योंकि जो कुछ वे चाहते हैं वह उनको 'कल्पवृक्षों' से मिल जाता है। यह वृक्ष १ योजन ऊंचे हैं। यहां माता पिता, भाई भगिनि कोई रिश्ता नहीं है। स्त्रियें देवोंसे भी सुन्दर हैं। यहां वर्षा नहीं होती जिससे घरोंकी भी आवश्यक्ता नहीं है। मनुष्योंकी आयु यहां एक हजार वर्षकी है। यह विवरण जैनियोंकी भोगभूमिसे बहुत मिलता जुलता है। यद्यपि यहां भोगभूमियोंकी आयु बहुत ज्यादा बतलाई है। इस भेदका कारण यही है कि जैनधर्ममें संख्या परिमाण

१. Ibid P 4. २. Ibid P P 14-15.

बौद्धोंसे बहुत अधिक है । बौद्धोंकी उत्कृष्ट संख्या असंख्यात है; जबकि जैनोंकी संख्या इससे बढ़कर अनन्तरूप है । बुद्ध यह मानते हैं कि यह लोकप्रवाह सनातन है, परन्तु वह इस बातको भी जैनियोंके साथ २ स्वीकार करते हैं कि उन देशोंका नाश और उत्पाद भी होता है, जिनमें मनुष्य रहते हैं । नाशके तरीके वे तीन प्रकार बतलाते हैं अर्थात् सकूवल सातवार तो अग्निसे नष्ट होते हैं, आठवींवार पानीसे और हर ६४वीं दफे हवासे । उनमें इस नाशक्रमका व्यवहार कल्पोंपर नियत रक्खा है । कहा गया है कि जिस अन्तराल कालमें मनुष्यकी आयु १० वर्षसे बढते २ एक असंख्यकी होजाती है और एक असंख्यसे घटते २ दस वर्षकी फिर रह जाती है वह बौद्धोंका एक अन्त कल्प होता है । इन २० अन्त कल्पोंका एक असंख्यकल्प होता है और चार असंख्य कल्पका एक महाकल्प होता है[१] । जैनधर्ममें भी कल्पकाल माने गये हैं, परन्तु उनका परिणाम इनसे कहीं अधिक है । जैनियोंने दस कोडाकोडी व्यवहार सागरोपमकालका एक अवसर्पिणीकाल माना है और बीस कोडाकोडी व्यवहार सागरोपमकाल–एक उत्सर्पिणी और एक अवसर्पिणी दोनोंका एक कल्पकाल माना है । तथापि असंख्यात उत्सर्पिणी व अवसर्पिणीका एक महाकल्पकाल माना है । इनके विशद विवरणके लिए त्रिलोकसार वृहद् जैन शब्दार्णव आदि ग्रंथ देखना चाहिए । यहां तो मात्र सामान्य दिग्दर्शन कराना ही संभव है । सारांशत कल्पकालका भेद जैन और बौद्ध मानतामें स्पष्ट है। अगाड़ी बौद्धशास्त्र एक अन्त कल्पमें

---

१ Ibid P. 7

आठ युग बतलाते हैं जिनमें चार उत्सर्पिणी और चार अवसर्पिणी बतलाते हैं। उनके उत्सर्पिणीमें हरएककी वृद्धि होती है-इसलिए यह उर्ध्वमुख भी कहाती है और अवसर्पिणीमें घटती, इस हेतु यह अधोमुख कही जाती है। यहां भी जैन धर्मका प्रभाव प्रत्यक्ष है। भगवान महावीरने भी कालचक्रके दो भेद उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी बतलाये हैं। इसका प्रभाव भी यहां बतलाया गया है जो क्योंकि उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी युगोंका बतलाया गया है। उक्त युग नाम और उनकी सादृश्यता इस बातकी प्रगट साक्षी है कि म० बुद्धने अपने धर्मसिद्धान्तमें भी अपने प्रारंभिक भ्रमणके धर्म-जैनधर्मसे बहुत कुछ लिया था। हां, यहां यह अन्तर अवश्य है कि म० बुद्धने उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दोनोंमें प्रत्येकके चार २ युग बतलाये हैं, पर जैनशास्त्रोंमें उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी छः कालोंमें प्रत्येकमें छै भाग होते मिलते हैं अर्थात् (१) सुखमा-सुखमा, (२) सुखमा, (३) सुखमा-दुःखमा, (४) दुःखमा-सुखमा (५) दुःखमा; और (६) दुःखमा-दुःखमा। यह क्रम अवसर्पिणी अर्धकल्पका है। उत्सर्पिणी अर्धकल्पमें प्रत्येक भागकी उन्नति होती है इसलिये उसका प्रथम भाग दुःखमा-दुःखमा है और फिर इसी क्रमसे अवशेष समझना चाहिये। बौद्धोंमें अपने उत्सर्पिणीके चार युग (१) कलि, (२) द्वापर, (३) त्रेता, (४) और कृत बतलाते हैं। एवं उनके अवसर्पिणीके युगोंका क्रम इससे उल्टा है अर्थात् उसमें प्रथम युग कृत है और शेष भी इसी तरह क्रमवार हैं। इन युगोंके नाम ब्राह्मणधर्मके

१ Ibid.

समान हैं। इसतरह यह अनुमान किया जासक्ता है कि यहा भी बुद्धने अपनेसे प्राचीन धर्म जैन और ब्राह्मणसे उचित सहायता ग्रहण की थी।

अब पाठकगण, जरा आइए म० बुद्धके बताये हुये लोक-प्रलयका भी किञ्चित दिग्दर्शन करलें। कहा गया है कि एक कल्पके प्रारभमें वर्षा होती है—इसे 'सम्पत्तिकर—महा-मेघ' कहते हैं। यह उन सर्व व्यक्तियोंकि समूहरूप पुण्यके बलसे उत्पन्न होता है, जो ब्रह्मलोकों और वाहिरी सकलोंमें रहते हैं। पहले बूंदें ओसकी तरह छोटी २ होतीं हैं, परन्तु वे धीरे २ बढते हुये खजूरके पेड़ इतनी बडी होजातीं हैं। वह सब स्थान जहा पहलेके 'कैलक्ष' लोक अग्निसे नष्ट होचुके हैं, अब ताजे पानीसे भर जाते हैं। यह ध्यान रहे कि बौद्धमत पहले सातवार अग्निद्वारा मनुष्यलोकका नाश होना मानते हैं। इसी तरह इस कल्पनाके प्रारभमें यहा अग्निद्वारा नाश हुआ था। नष्ट हुये स्थान जहा जलसे भरे कि यह वर्षा वन्द हुई। वर्षाके बन्द होनेपर एक हवा चलती है, जिससे भरा हुआ पानी प्राय सूख जाता है, केवल समुद्रोंके लायक ही पानी रह जाता है। इसके दीर्घकाल उपरान्त यहा शेखर (इन्द्र) का महल प्रकट होता है, जो सर्व प्रथम रचना होती है। महलके बाद नीचेके ब्रह्मलोक और देवलोकको सृष्टि होजाती है। इन्द्र इसी समय आकर कमलपुष्पोंको देखते हैं। यदि कमलपुष्प हुये तो जान लिया जाता है कि इस कल्पमें बुद्ध होंगे। बुद्धोंके वस्त्र, कमण्डल आदि भी यहीं उत्पन्न होजाते हैं। इन्द्र पृथ्वीका अंधकार मेटकर इन वस्त्रादिको उठा ले जाता है। पहले लोकके नाश

होते समय यद्यपि पुण्यात्मा जीव अवसर भोगभूमियोंमें जन्म ले लेते हैं। वही यहां फिर बसते हैं। उनका जन्म अपरूप (Apparition ?) होता है। इसलिये उनके शरीरमें देवलोकके कतिपय लक्षण यहां भी शेष रह जाते हैं। उन्हें भोजनकी चाह इसका मात्र नहीं पड़ती; ये आसानीसे रह सकते हैं। उनके शरीरकी प्रभा इतनी विशद होती है कि उस समय सूर्य और चन्द्रमाकी आवश्यकता ही नहीं होती है। इस हेतु वहां ऋतुयें भी नहीं होती हैं। और न दिनरातका भेद होता है। तथापि उन लोगोंमें लिङ्गभेद भी नहीं बतलाया गया है। कई युगों तक यह भद्रलोकके वासी आनन्दसे इसीतरह वहां रहते हैं। उपरान्त पृथ्वीपर एक ऐसा पदार्थ उगता दिखाई पड़ता है जैसे पुष्पक जमाई पड़ती है। एक मनुष्य उसे स्वादकर चख लेता है। इसके स्वादकी चाह सबको पड़ जाती है और वह अधिक २ खाया जाता है। बस इसहीके कारण यह भद्रलोक अपनी दिव्यप्रभा गंवा देते हैं, जिससे इनके शरीरकी प्रभा मन्द पड़ जाती है। इसपर सूर्य-चन्द्र आदि प्रकाश देनेवाले पदार्थोंका प्रादुर्भाव होता है। इनकी उत्पत्ति भी वे मिलकर अपने पुण्यकर्मके प्रभावसे कर लेते हैं। बौद्ध धर्ममें पाप और उत्पत्ति व्यक्तियोंके पाप और पुण्यकर्मके प्रसंग होते बतलाये गये हैं। इसतरह सूर्य-चन्द्रादय किये गये दिन रातके भेदमें रहते हुए और पृथ्वीका पदार्थ खाते हुये इन लोगोंके शरीरोंकी त्वचा कड़ी पड़ जाती है जिससे किसीका रंग काला और किसीका गोरा स्वच्छ रहता है। इसपर यह आपसमें मान-घमंड करने लगते हैं। परिणामतः यह पदार्थ

लुप्त होजाता है और एक तरहका मक्खन–मिश्री–मिश्रित पदार्थ सिरज जाता है। इसपर भी लडाई होती है। आखिर लतादि उत्पन्न होते २ चावल उत्पन्न होते है जिनको खानेसे इन लोगोंके शरीर आजकलके मनुष्यों जैसे होते हैं, जिससे कषाय और विषय-वासनायें आकर सतानें लगतीं हैं। इसपर वह ब्रह्मलोग जो पवित्रतासे रहते है अपने उन साथियोंको निकाल बाहर कर देते हैं जो विषयवासनाके वशीभूत होकर पवित्रतासे हाथ धो बैठते हैं। यह बहिष्कृत ब्रह्मलोग अलग जाकर एकान्तमें मकान बनाकर रहने लगते हैं। यहा रहकर वे आलस्यके प्रेरे कई दिनके लिये इकट्ठे चावल ले आने लगते है। इसपर चावल धान-रूपमें पलट जाते हैं और जहासे एक दफे वे काटे गये वहा फिर वे नहीं उगने लगते हैं। इस दुर्भाग्यसे उन्होंको आपसमें खेतोंको बाट लेना पड़ता है, किन्तु कतिपय ब्रह्म अपने भागसे सतुष्ट नहीं होते हैं। सो वे दूसरोंके भागमेंसे धान चुराने लगते है। इसपर एक नियत्रणकी आवश्यक्ता उत्पन्न होती है जिसके अनुसार सब ब्रह्म एकत्रित होकर अपनेमेंसे एकको अपना सरदार चुन लेते है। यह 'सम्मत' कहलाता है। वह खेतोंपर अधिकारी होनेके कारण ही 'खत्तियो' या क्षत्रिय नामसे प्रसिद्ध होता है। उसकी सतान भी इसी नामसे विख्यात् हुई। और इस तरह राज्यवश अथवा क्षत्रिय वर्णकी उत्पत्ति होजाती है। उन ब्रह्मोंमें कतिपय ऐसे भी होते है जो बदमाशोंकी बदमाशी देखकर अपनेको सयममें रखनेका अभ्यास करने लगते हैं। इस अभ्यासके कारण वे ब्राह्मण कहलाते हैं और इसप्रकार ब्राह्मण वर्णकी सृष्टि हो जाती है। उनमें ऐसे भी

जन्म लेते हैं जो शिल्पादि कलाओंमें निपुण होते हैं और इस निपुणतासे वे सम्पत्ति एकत्रित करते हैं। यही लोग वैश्य नामसे प्रगट होते हैं। अन्ततः ऐसे भी जीव मनुष्योंके मध्य हैं जो कठोर सेवते हैं। इसलिये वे शुद्र या क्षुद्र कहलाने लगते हैं। इसप्रकार मनुष्य चार वर्ण उत्पन्न हो जाते हैं। यद्यपि मुख्यमें एक ही जाति मनुष्यरूप होते हैं। इनमेंसे जो गृह त्यागकर भैक्ष्यवृत्ति धारण करते हैं, वे श्रमण कहलाते हैं। इसतरह संसार प्रवाह चल जाता है। उपरान्त नियत समयमें पुन अग्निद्वारा प्रलय नाश होता है और इसी ढंगसे सृष्टि होती है। इसीतरह नियत समयमें अग्नि, जल और वायुसे नाश नियमानुसार होता रहता है जिसका विशद विवरण बौद्ध ग्रन्थों अथवा *Manual of Buddhism*से जानना चाहिये।

इसप्रकार म बुद्धने इस प्रलयका नाश और उत्पादक्रम बतलाया था। इसमें भी जैन सादृश्यता बहुत कुछ दृष्टि पड़ रही है। जैनशास्त्रोंमें कहा गया है कि प्रत्येक अवसर्पिणी अन्तिम कालके अन्त समयमें (भरत और ऐरावत क्षेत्रोंमें ही) पानी सब सूख जाता है—शरीरकी भांति नष्ट हो जाता है। इस समय सब प्राणियोंका नाश हो जाता है। केवल थोड़ेसे जीव गंगा, सिंधु और विजयार्द्ध पर्वतकी वेदिकापर विश्राम पाते हैं। यह लोग मछली, मेंढक आदि खाकर रहते हैं। उपरान्त प्रथम दुःखकारी जीव छोटे २ बिलोंमें घुस जाते हैं। साथ ही यह ध्यान रहे कि जैनधर्म और अग्निका लोप पंचमें ही कालमें हो चुका है। तदनंतर सात दिनतक अग्निकी वर्षा, सात दिनतक विष जलकी, सात दिनतक खारे पानीकी, सात दिनतक विषकी, सात दिनतक धूमसहित अग्निकी

सात दिनतक धूलिकी और फिर सात दिनतक धूमकी वर्षा होती है। इसके बाद पृथिवीका विषमपना सब नष्ट हो जाता है और चित्रा पृथ्वी निकल आती है। यहीं अवसर्पिणीके अन्तिम कालका अन्त हो जाता है। और उत्सर्पिणीका प्रथम अति दुःखमा काल चलता है, जिसमें प्रजाकी वृद्धि होने लगती है। इसके प्रारम्भमें क्षीर जातिके मेघ सात सात दिनतक रातदिन बराबर जल और दूधकी वर्षा करते हैं जिससे पृथ्वीका रूखापन नष्ट हो जाता है। इसीसे यह पृथ्वी अनुक्रमसे वर्णादि गुणोंको प्राप्त होती है। इसके बाद अमृत जातिके मेघ सात दिनतक अमृतकी वर्षा करते हैं जिससे औषधिया, वृक्ष, पौधे और घास आदि पहले अविसर्पिणीके समान निरतर होने लगते हैं। तदनतर रसादिक जातिके बादल रसकी वर्षा करते हैं जिससे सब चीजोंमें रस उत्पन्न होता है। उत्सर्पिणी कालमें सबसे पहले जो मनुष्य बिलोंमें घुस जाते है वे निकलकर उस रसके सयोगसे जीवित रहने लगते हैं। ज्यों ज्यों काल बीतता जाता है त्यों २ शरीरकी ऊचाई, आयु आदि जिन २ चीजोंकी पहले अविसर्पिणीमें कमी होती जाती थी उन सबकी वृद्धि होती है। उपरान्त दूसरे कालमें सोलह कुलकर होते हैं। इनके द्वारा क्रमकर धान्यादि और लज्जा, मैत्री आदि गुणोंकी वृद्धि होती है। लोग अग्निमें पकाकर भोजन करते हैं। दूसरेके बाद तीसरे कालमें भी लोगोंके शरीर आदि वृद्धिको प्राप्त होते हैं। इस समय २४ तीर्थंकर आदि महापुरुष जन्म लेते है। और प्रथम तीर्थंकर द्वारा कर्मक्षेत्रकी सृष्टि होती है। फिर चौथे कालमें शरीर, आयु आदिमें और वृद्धि होती है और उसके थोड़े ही वर्ष बाद वहा जघन्य

भोगभूमिकी स्थिति हो जाती है। इसीतरह पांचवें कालमें भी मध्य
भोगभूमिकी वृद्धि होती है और छठे कालमें उत्तम भोगभूमि
स्थिति रहती है। इसके साथ ही उत्सर्पिणी कालका अन्त
अवसर्पिणीका प्रारम्भ हो जाता है। जिसके प्रारम्भके साथ
अवनति क्रम चालू होता है। हम जिस कालमें रह रहे हैं
अवसर्पिणीका पांचवा काल है। इसके प्रारम्भके तीन कालोंमें
भोगभूमि थी। भोगभूमिमें युगल दम्पति जन्म लेकर आनन्द
जीवन व्यतीत करते थे। कल्पवृक्षोंसे उनको भोगोपभोगकी
सामिग्री प्राप्त होती थी। सूर्य-चन्द्र नहीं थे। माता पिता आ
रिश्ते प्रचलित नहीं थे। यहांसे मरकर जीव नियमसे देवगति
प्राप्त होते थे। अन्ततः तीसरे कालके अन्त होनेके कुछ पहिले
कुलकर उत्पन्न हुये थे; जिनके समयमें भिन्न २ बातकी तरक्की
लोगोंको हुई जिसकी उन्होंने व्यवस्था की, क्योंकि क्रमशः कल्प
तो ह्रासको प्राप्त होते जाते थे। इनका विशद विवरण हमारे "संक्षि
जैन इतिहास   अथवा अन्य जैन ग्रन्थोंमें देखना चाहिये। आदि
चौथे कालके प्रारम्भसे किंचित् पहले ही प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋ
जीका जन्म होचुका था। इन्हीं द्वारा कर्मभूमिका प्रादुर्भाव हुआ
जनताको असि, मसि, कृषि आदि कर्म इन्होंने ही बतलाये
इसी समय चार वर्णोंकी स्थापना होगई। जिन्होंने शस्त्रकी रक्षा
भार लिया वे क्षत्री हुये और जो व्यवसाय व शिल्पमें व्यस्त हु
वे वैश्य कहलाये और शुश्रूषा करनेवाले शूद्रवर्णके हुये। ब्राह्मण
वर्णकी स्थापना उपरान्त सम्राट भरत द्वारा व्रती श्रावकोंमेंसे हुई
इसप्रकार कर्मभूमिका श्रीगणेश हुआ। उपरान्त समयानुसार इ

नातकी अवनति चालू रही और समयानुसार तीर्थङ्कर भगवान एवं अन्य महापुरुष होते रहे। फिर भगवान महावीरके निर्वाणलाभसे कुछ महीने बादसे ही यह पचमकाल प्रारम होगया था। इसमें भी ह्रासक्रम चालू है। इसके अन्तमें ही जैन धर्म और अग्निका लोप होजायगा। और फिर जो होगा वह उत्सर्प्पिणीकालके वर्णनमें बतलाया जाचुका है। इसतरह यह कल्पकाल है। यही विधि सर्वथा चालू रहेगी। म० बुद्धके कालक्रम और इसमें किंचित् सदृशता है। बाह्य रेखायें एक समान है, यद्यपि मूलमें अन्तर विशेष है। अस्तु,

यह भेद तो जान लिया, परन्तु भगवान महावीरके मतानुसार लोकका स्वरूप तो अभी तक नहीं जान पाया। अतएव आइये पाठकगण, अब यहापर यह देखलें कि भगवान महावीरने लोकके विषयमें क्या कहा था?

भगवान महावीरने भी असख्यात् द्वीप समुद्र बतलाये थे, परन्तु उस सबके लिये स्वर्ग—नर्क आदि उन्होंने एक ही बतलाये थे उनके अनुसार वह लोक तीन भागोंमें विभाजित है और उसे तीन प्रकारकी वायुसे वेष्टित बतलाया गया है। यह तीन भाग ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक कहे गये हैं।

अधोलोकके सर्व अन्तिम भागमें 'निगोद' है। यह वह स्थान है जिसमें निगोद जीव रहते हैं। यह निगोद जीव एकेन्द्रीजीवसे भी हीन अवस्थामें हैं और अनन्त हैं। यहा स्पर्शन इन्द्री भी पूर्ण व्यक्त नहीं है। जीव समुदाय रूपमें इकट्ठे एक शरीरमें रहते हैं। इनकी आयु भी अत्यल्प है। वे एक श्वासमें १८ वार जन्मते

मरते हैं। इस निगोदमेंसे हमेशा नियमानुसार जीव निकलते रहते हैं और वे उस कमीको पूरी कर देते हैं जो जीवोंके मुक्त होजानेसे होती है। इसतरह यह जीवराशि कभी निबटती नहीं। पूरी अनादिनिधन है। जीव त्रस नाड़ीमें भ्रमण करते हैं।

जैनोंके तीन लोकके नकशेमें बताये हुये 'मध्यलोक' में ही वे सब संसार देश हैं जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। और इसके 'ऊर्ध्व' और 'अधो' लोकमें क्रमशः स्वर्ग और नर्क अवस्थित हैं। इनमें भी लोकको तीन 'वातवलयों' (Regions) में अथवा 'वायुओं' में विभक्त बताया है (१) घन वायु (२) तनु वायु और (३) घनतनु वायु।[1] यहां भी जैन सिद्धान्तकी सत्यता प्रकट पड़ती है। इसके अतिरिक्त जैन शास्त्रोंमें नर्कगतिके और नर्कोंके जो वर्णन पीड़ायें, बैतरणी नदी, इसे दुःखपूर्ण बतलाया, जैसे—असुरोंका स्थान, इत्यादि जैन धर्मके अनुसार बताये हैं। किन्तु इनमेंपर भी बुद्धोंने नर्क उतने नहीं बतलाये हैं जितने जैन धर्ममें स्वीकृत हैं।

भगवान महावीरने नर्क सात बताये हैं और उनकी पृथिवियोंके नाम यों कहे हैं—

(१) रत्नप्रभा—प्रकाश इसका रत्न जैसा है और यह गर्म है।
(२) शर्कराप्रभा— „ „ शक्कर „ „ „ „ ।
(३) बालुकाप्रभा „ „ रेत „ „ „ „ ।
(४) पंकप्रभा— „ „ पंक „ „ „ „ ।
(५) धूमप्रभा— „ „ धुयें „ „ „ „ ।
केवल १ भाग पहलेमें—शेष ठंडा है।

---

१. देखिये एन्ड हेमुर एन बुद्धिस्ट कॉस्मोलॉजी पृष्ठ ५५. २. पूर्व पृष्ठ ११६ जैन मान्यताकी तुलना करो. लोकप्रकाश अ. १

(६) तमप्रभा– „ „ अंधकार „ और सर्द है।
(७) महातमप्रभा–„ „ घोर अंधकार „ „ „

इन सबमें भिन्न२ संख्यामें ८४ लाख बड़े बिले हैं, जिनमें नारकी जन्म लेते हैं।

म० बुद्धने सामान्यतया ८ नर्क बतलाये थे, यद्यपि इनके अतिरिक्त वह और बहुतसे छोटे नर्क बतलाते थे। शायद वह इन्हीं आठके अन्तर्भाग हों। ये आठ इसप्रकार बताए गए हैं –

(१) सज्जीव, (२) कालसूत्र, (३) संघात, (४) रौरव, (५) महारौरव, (६) तापन, (७) प्रतापन और (८) अवीची। उत्तरीय बौद्धोंकी प्राचीन मानतामें इतने ही ठंडे नर्क भी थे।[१]

इसतरह बौद्धोंके नर्क सम्बन्धी विवरणमें बहुतसी बातें जैन धर्मसे मिलती जुलती हैं। वास्तवमें जैन धर्मसे बौद्ध धर्मकी जो सादृश्यता विशेष मिलती है वह म० बुद्धके प्रारंभिक जैन विश्वासके कारण ही समझना चाहिए। म० बुद्धने एक माध्यमिकके तरीके उस समय प्रचलित प्रख्यात् मतोंमेंसे कुछ न कुछ अवश्य ही ग्रहण किया था। ब्राह्मणोंके स्वर्ग–नर्क सिद्धान्तोंसे भी किंचित् सदृशता बौद्ध मान्यताकी बैठती है। यही कारण है कि सर्व प्रकारके विश्वासोंवाले विविध पन्थ अनुयायियोंको अपने धर्ममें लानेके लिये म० बुद्धने इसप्रकार क्रिया की थी, जिसके समक्ष उन्होंने अपने सिद्धान्तोंकी वैज्ञानिकता और औचित्यपर भी ध्यान नहीं दिया! किन्तु इस ओर उनके धर्मकी विशेष सदृशता जैनधर्मसे बैठती है, जो ठीक भी है, क्योंकि हम देख चुके हैं

१. हेवन्स एण्ड हेल्स इन बुद्धिस्ट परस्पेक्टिव पृष्ट ८४.

है। बुद्धने जो रूपलोकके स्वर्ग बताये थे, वह भी इस ही प्रकारके हैं।[1] जैनसिद्धान्तके लौकान्तिक देव जो ५ वें स्वर्गके सर्वोपरि भागमें अवस्थित ब्रह्मलोकमें रहते हैं और जो आत्मोन्नति विशेष कर चुके हैं कि दूसरे भवसे ही मोक्षलाभ करेंगे, वह भी बौद्धोंके ब्रह्मलोकके देवोंके समान हैं।[2] बौद्ध कहते हैं कि यह देव ब्रह्म-लोकमें विशेष ध्यान करनेके उपरान्त पहुचते हैं। किन्तु इतनी सदृशता होनेपर भी बौद्धोंने जितने स्वर्ग बताये हे उतने जैनसिद्धान्तमें स्वीकृत नहीं हैं, यद्यपि एक स्थानपर उनके यहा भी १६ ही बताये गये हैं। सचमुच बौद्धशास्त्रोंमें इनकी कोई निश्चित सख्या नहीं मिलती है वे सात, आठ, सोलह और सत्तरह भी बताये गये हैं।[3] किन्तु इतनेपर भी यह स्पष्ट है कि बौद्धोंके स्वर्ग विवरणमें भी जैनधर्मकी छाप लगी दृष्टिगत होती है। यहापर उनका तुलनात्मक पूर्ण विवेचन करना कठिन है। यद्यपि यह स्पष्ट है कि अन्ततः बौद्ध और जैन दोनों ही यह स्वीकार करते हैं कि स्वर्गलोकमें वही जीव जन्मते हैं जो विशेष पुण्य उपार्जन करते हैं। आत्मवाद परोक्षरूपमें म० बुद्धको भी अस्पष्टरूपसे स्वीकार करना पड़ा था, यह हम देख चुके हैं। जैनसिद्धान्तमें स्वर्गलोकसे मोक्षलाभ करना असभव बतलाया है, बौद्ध देवोंद्वारा निर्वाणलाभ मानते हैं। किंतु यह बात दोनों ही मानते हैं कि देवोंमें विक्रिया शक्ति है और हेयसे हेय अवस्थाका जीव स्वर्ग सुखका अधिकारी हो सक्ता है। जैनशास्त्रोंमें कथा प्रचलित है कि जब राजा श्रेणिक भगवान महा-

---

१ हेवेन्स एण्ड हेल्स इन बुद्धिस्ट पर्सपक्टिव पृष्ठ ८०.. २. पूर्व पृष्ठ २ ३ पूर्व पृष्ठ ३४

और भेदविज्ञान जहा एकबार प्राप्त हुआ कि वहा फिर सम्यक् मार्गमें दिवस प्रति दिवस उन्नति करते जाना अवश्यम्भावी है। जैनाचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी कहते हैं—

'गुरूपदेशादभ्यासात्संवित्तेः स्वपरांतरं।
जानाति यः स जानाति मोक्षसौख्यं निरंतरम् ॥३३॥

भावार्थ–जिसने आत्मा और पुद्गलके स्वरूपको जानकर भेद-विज्ञान प्राप्त करलिया है–चाहे वह गुरूकी कृपासे प्राप्त किया हो अथवा वस्तुओंके स्वभाव पर बारम्बार ध्यान करनेसे या आभ्यन्तरिक आत्मदर्शनसे पाया हो–वह आत्मा मोक्ष सुखका उपभोग सदैव करता है।

भगवान महावीरने ससारजालसे छूटकर मोक्षलाभ करनेका मार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र कर सयुक्त बतलाया था। व्यवहार दृष्टिसे सम्यग्दर्शन पूर्वोल्लिखित जैन तत्वोंमें श्रद्धान करना है। इन्हीं तत्वोंका पूर्ण ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। और जैनशास्त्रमें बताये हुये आचार नियमोंका पालन करना सम्यग्चारित्र है। किन्तु निश्चय दृष्टिसे यह तीनों क्रमश. आत्माका श्रद्धान, ज्ञान और स्वरूपकी प्राप्ति हैं। सचमुच निश्चय सम्यक्चारित्र सिवाय आत्मसमाधिके और कुछ नहीं है। व्यवहारदृष्टि निश्चयका निमित्त कारण समझना चाहिये।

व्यवहार सम्यग्चारित्र दो प्रकारका है –(१) एकदेश गृहस्थोंके लिये और (२) पूर्ण जो साक्षात् मोक्षका कारण है साधुओंके लिये। गृहस्थ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानको धारण करता हुआ अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहसे सम्यग्चारित्रका अभ्यास प्रारम्भ करता है। यद्यपि इससे नीचे दर्जेका गृहस्थ मात्र

त्यागी मद्य, मांस मधु और पांच उदुम्बर फलोंका ही त्यागी होता है। और सबसे नीचे दर्जेका व्यक्ति कोरा अत्यागी होता है। परन्तु उक्त पंचअणुव्रतोंके पालनसे वह व्रती गृहस्थ अथवा श्रावक सम्यक्चारित्रके मार्गमें क्रमशः उन्नति करना प्रारम्भ करता है। इस उन्नतिक्रमका विभाग, भगवानने ११ प्रतिमाओंमें किया है। इन ११ प्रतिमाओंका अभ्यास करके वह साधुके व्रतोंके पालन करनेका अधिकारी होता है। इन प्रतिमाओंसे मात्र व्यक्तिविशेषकी आत्माने पूर्व प्रतिमासे जो उन्नति की है उसको व्यक्त करना है। इनमें विविध प्रकारके व्रत जैसे गुणव्रत, शिक्षाव्रत, सामायिक, प्रोषध इत्यादि गर्भित हैं। इन प्रतिमाओंको पूर्ण करके वह साधुओंके महाव्रतोंका अभ्यासी होता है। इस अवस्थामें वह उक्त व्रतोंको पूर्णरूपमें पालता है।

आत्म-समाधिकी प्राप्तिके लिये गृहस्थों और साधुओंके लिये नियमके हैं आवश्यक कर्तव्य बतलाये गए हैं। साधुओंके लिये वह इस प्रकार हैं।

---

१. बौद्धोंके शास्त्रोंमें भी जैन श्रावकके इस प्रकार उल्लेख है अर्थात् भगवान महावीरके उपासक वह व्रत अतिक्रमण करके भी ही गये माने हैं। देखो अंगुत्तरनिकाय ३७०।३ २. बौद्ध मिलिन्द प्रश्नमें बौद्धोंके एक ग्रन्थमें इस प्रकार है 'पोषधके दिन वे (निग्रन्थ-श्रैणी) एक श्रावकको कहते हैं कि, तब तुम सभी तरफ वस्त्रहीन रह और रह ही और कहो 'न कोई हमारा है और न हम किसीके हैं।' यह भी जैन सिद्धान्तसे प्रायः मिलता है। पत्तनासपती प्रोषध उपोषध भी लोक में शास्त्रोंसे है। (देखो धम्मपदअट्ठ पृ ४११)।

'समदा थवो य वंदण पाडिक्कमण तहेव णादव्वं ।
पच्चक्खाण विसग्गो करणीयावासया छप्पि ॥२२॥'

अर्थात्–(१) समता–सर्वके प्रति–सबमें समता भाव रखना, (२) स्तव–तीर्थङ्कर भगवानका स्तवन करना, (३) वन्दना–देवशास्त्र गुरुकी वदना करना, (४) प्रतिक्रमण–कृतपापोंकी आलोचना करना, (५) प्रत्याख्यान अमुक२ पदार्थोंके त्याग करनेका नियम करना और (६) व्युत्सर्ग–अपनी देहसे ममता हटाकर उसे तपश्चर्यामें लगाना। इस प्रकार साधुके लिये यह नित्यप्रतिके 'षटावश्यक' बताये गये है। श्रावकके लिये भी छै बातोंका रोजाना करना लाजमी बतलाया गया है। जैसे कि आचार्य कहते हैं–

" देवपूजागुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः ।
दानञ्चेति गृहस्थाणां षट्कर्माणि दिनेदिने ॥ "

पद्मनंदिपंचविंशतिका ।

अर्थात्–(१) जिन भगवानकी पूजा करना, उनके गुणोंको स्मरण करके। जिन प्रतिमायें ध्यानाकार होती हैं जिससे वे पुजारीके हृदयपर आत्मभावको अंकित करनेमें सहायक है। (२) गुरुजन–निर्ग्रन्थमुनि और साधुजनकी उपासना करना और उनकी शिक्षाओंको ग्रहण करना। (३) सयमका अभ्यास करना जिससे मन और इंद्रियोंपर अधिकार रहे, जैसे नियम करना कि मैं आज नाटक देखने नहीं जाऊगा, केवल दोवार ही भोजन करूगा, इतर फुलेल नहीं लगाऊगा इत्यादि। यह साधारण नियम है, परन्तु आत्मोन्नतिमें सहायक है। (४) स्वाध्याय–शास्त्रोंका अध्ययन, अध्यापन और मनन करना। (५ सामायिक–अर्थात् एकान्त स्थानमें

भाव और सामायिकको बैठकर अथवा केवल मनमें बैठकर एक नियत समय तक तीर्थङ्कर भगवानके परमस्वरूपका अथवा आत्मगुणोंका चिन्तवन और ध्यान करना। इससे आत्मशक्ति बढ़ती है और समताभावकी प्राप्ति होती है। (६) दान आहार, औषधि शास्त्र और अभयरूपी दान सब ही पात्रोंको देना चाहिये। इन छै आवश्यक बातोंको करनेसे उस आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होती है जिसमें सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र साक्षात्रूप विराजमान हैं। यही वह मार्ग है जिसमें कर्मोंका क्षय होता है और आत्मा विशुद्ध और स्वतंत्र होती जाती है।

आत्मस्थितिमें अथवा आत्मध्यानमें उन्नति करना गुणस्थान क्रम बतलाया गया है। यह गुणस्थान कुल १४ हैं। इनका पूर्ण विवरण जैन शास्त्रोंसे देखना चाहिये किन्तु यहां यह ध्यान दीजिये कि १३ वें गुणस्थानमें पहुंचकर मुनि चार घातिया कर्मोंका अर्थात् ज्ञानावर्णी दर्शनावर्णी मोहनीय और अन्तराय कर्मोंको, जो आत्माके स्वभावके घातक हैं उनका नाश कर देता है और इस अवस्थामें केवलज्ञान–सर्वज्ञताको प्राप्त करके अर्हंत सयोगकेवली अथवा सकल सशरीरी परमात्मा होजाता है। यह जीवित परमात्मा दो प्रकारके होते हैं (१) सामान्यकेवली और (२) तीर्थङ्कर। सामान्यकेवली स्वयं निर्वाणलाभ करते हैं एवं अन्योंको भी मोक्षमार्ग बताते हैं, परन्तु उनके समवशरण आदिकी विभूति नहीं होती है। तीर्थङ्करोंके समवशरण होता है और वे वहांसे तीर्थ के भव्योंको मोक्षमार्गका सर्वाङ्ग उपदेश देते हैं। यह तीर्थ संघ चार प्रकारका होता है। (१) मुनि, (२) आर्यिका, (३) श्रावक, (४) श्राविका। इसी चतु-

निश्चय सबको तीर्थंकर भगवान अपनी गंधकुटीसे मानतिक रूपमें उपदेश देते हैं, जिसको सबकोई अपनी२ भाषामें समझ लेता है।

श्री नेमिचन्द्राचार्यजी अर्हंत भगवानका स्वरूप यो बतलाते हैं—

"णट्ठचदुघाइकम्मो दंसणसुहणाणवीरिय मइओ।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥५०॥"

अर्थात्—अर्हंत वह हैं जिन्होंने चार प्रकारके घातिया कर्मोंको नष्ट कर दिया है और जो अनन्तचतुष्टय—अनतदर्शन, अनतज्ञान, अनतवीर्य, अनतसुखकर पूर्ण हैं, जिनका शरीर अपूर्व प्रभामय और विशुद्ध है। वास्तवमें अर्हंत भगवानके मोहनीयादि कर्मोंके अभावमें भूख, प्यास, भय, ईर्ष्या, द्वेष, मोह, जरा, रोग, मृत्यु, पीड़ा आदि कुछ भी साधारण मानुषिक कमजोरिया शेष नहीं रहती हैं। इस अवस्थामें वे साक्षात् जीवित परमात्मा होते हैं, उनके शरीरकी प्रभा भी इस उच्चपदके सर्वथा उपयुक्त होती है। यही मालम होता है मानो एक हजार सूर्य एकदम प्रगट होगये हैं। यह इच्छाओंसे सर्वथा रहित और बिलकुल विशुद्ध होते हैं। यह पंच-परमेष्टियोंमें सर्व प्रथम हैं, जिनकी उपासना आदर्शवत् जैनी करते हैं।

अतएव जब यह सशरीरी परमात्मा चौदहवें गुणस्थानमें पहुच जाता है, तब वह अयोगकेवली—कम्परहित पूर्ण शुद्ध आत्मा (Non- Vibrating Perfect Soul) होजाता है। यह अवस्था उन भगवानको मोक्षप्राप्तिसे इतने अल्प समय पहिले प्राप्त होती है कि अ, इ, उ, ऋ, लृ, इन पाच अक्षरोंका उच्चारण किया जासके। यह बहुत ही सूक्ष्म समय है। इसके बाद शरीरको त्यागकर आत्मा अपने यथार्थ स्वरूपमें सदाके लिये तिष्ठ जाती है और सिद्ध कहाती

है। सिद्धभगवान फिर कभी लौटकर इस संसारावस्थामें नहीं आते हैं। वह सिद्धशिलामें तिष्ठे अपने स्वाभाविक आनंदका उपभोग सदा करते रहते हैं।

सिद्धभगवान एक पूजनीय परमात्मा हैं, जिनका यद्यपि संसारसे सम्बन्ध कुछ भी नहीं है तो भी उनका चिंतवन शुभ भावों और आत्मध्यानके लिये एक साधन है। आचार्य कहते हैं —

"णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो ॥५१॥"

भावार्थ—"नष्ट कर दिये हैं अष्टकर्म देहसे जिसने लोकालोकका जाननेवाला और देखनेवाला देहरहित पुरुषके आकार लोकके अग्रभागमें स्थित ऐसा आत्मा सिद्ध परमेष्ठी है सो नित्य ही ध्याया जाने अथवा स्मरण करने योग्य है।" अस्तु

इस प्रकार भगवान महावीरने संसार सागरमें भटकती हुई आत्माओंको उससे निकलकर अपना स्वाधीन सुख पानेका मार्ग सुझाया था जो पूर्ण स्वावलम्बन कर संयुक्त है। सारांशतः उन्होंने बताया था कि अनादिकालसे कर्मोंके कुचक्रमें पड़ी हुई आत्मा अपनी ही मोहजनित मूर्छताके कारण संसारमें भटकती हुई दुख और पीड़ाका अनुभव करती है अतएव जब वह अपने निजी स्वरूपको और पदार्थोंके स्वरूपको स्वयं अपने अनुभव द्वारा अथवा गुरुके उपदेशसे हृदयङ्गम करलेती है तब वह रत्नत्रयरूपी मोक्षमार्गका अनुसरण करना प्रारम्भ करदेती है। तथापि दृढ़तापूर्वक उसका अभ्यास किये जानेसे प्रतिदिन वह कर्मरूपी कठोरतमी बेड़ियां काट डालती है और स्वयं स्वाधीन होकर परमात्मावस्थाके परमोत्कृष्ट

स्वराज्यका उपभोग करती है। सच्चा स्वराज्य यही है, इसीको पानेका उपदेश भगवान महावीरने दिया था। इस हिंसक जमानेमें सच्चे भारतवासियोंको इस स्वराज्यप्राप्तिके मार्गमें दृढ़तासे कर्तव्य-परायण हो जाना परम उपादेय है। अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अचौर्य और अपरिग्रहका अभ्यास प्रारम्भ करना स्वय उनकी आत्मा एवं भारतके हितका कारण है। अहिंसामें गंभीरता है, शौर्य्यता है। सत्यतामें दृढता है। जहा शौर्यता और दृढता प्राप्त हुई वहा लोभ कषायको तिलाञ्जलि देते हुये आकाक्षा और वाञ्छाको नियमित किया जाता है और स्वावलम्बी बननेकी तीव्र अभिलाषा अपना जोर मारने लगती है जिसकी प्रेरणासे वह आत्माभिमुख हुआ वीर सयमका अभ्यासी हो जाता है और क्रमश आत्मोन्नति करता हुआ पूर्ण स्वाधीनताको पालेता है। यही सच्चा सुख है। भारतीय-ताके लिये भगवान महावीरका उपदेश अतीव कल्याणकारी है। लोकके कल्याणकी भावनाका जन्म उसको आदर देनेसे होता है।

अब जरा आइये पाठकगण, म० बुद्धके विषयमें भी किञ्चित् और विचार करलें। दु ख और पीडा कहां हैं, कैसे हैं और किसको हैं, यह हम उनके बताये मुताबिक पहिले देख चुके हैं। उपरान्त उन्होंने इस दु ख और पीड़ासे छूटनेका उपाय यों बतलाया था।

"हे राजन्! सब ही अज्ञानी व्यक्ति इंद्रियसुखमें आनन्द मानते हैं, उन्हींकी वासनापूर्तिमें सुखी होते हैं, उन्हींके पीछे लगे रहते हैं। इसलिए वे मानुषिक कषायोंकी बाढ़में बहे चले जाते हैं। वे जन्म, जरा, मरण, दु ख, शोक, आशा, निराशासे मुक्त नहीं हैं। मैं कहता हू वे पीडासे मुक्त नहीं होते हैं, किन्तु राजन्!

जो ज्ञानवान हैं तथागतोंके अनुयायी हैं, वे न इंद्रियवासनाओंमें आनंद समझते हैं, न उनसे दुखी होते हैं और न उनके पीछे लगे रहते हैं और जब वे उनके पीछे नहीं जाते हैं तो उनमें तृष्णाका अभाव हो जाता है। तृष्णाके अभावसे ग्रहण करना (Grasping) बन्द होजाता है। इसके बंद होनेसे भव धारण करनेका (Becoming) अन्त हो जाता है। और जब भवका ही नाश हो गया तब फिर जन्म, जरा रोग शोक, मृत्यु, पीड़ा आदि सब बन्द होजाते हैं। इस प्रकार इस अभावक्रमसे (Cessatio) पीड़ाके समुदायका (Aggregation of Pain) का अन्त हो जाता है, बस यही अभाव निर्वाण है। (मिलिन्दप्रश्न ३।४।९)

यह पीड़ाके अन्त करनेका मार्ग है और बस ठीक ही है परन्तु इसका क्रियात्मकरूप इसका यह प्रगट कर देगा। इस मतको प्रगट करते हुये भी म० बुद्धके पारिभ भिक्षु निर्वाणमें इसको पूर्ण व्यवहार नहीं दिया गया है। हम आगाड़ी यही देखेंगे। भगवान महावीरने भी इन्द्रियजनित विषयवासनाओंसे दूर रहनेका उपदेश दिया था, परन्तु म० बुद्धकी तरह उनका उद्देश्य 'पूर्ण अभाव' नहीं था। उनका उद्देश्य एक वास्तविक पदार्थ था जिसको पाकर आत्मा स्वाधीन परमात्मा हो जाता है। भगवान महावीर और म० बुद्धके मतोंमें यही विशेष प्रत्यक्ष अन्तर है। एक दृढ़से सत् पदार्थका मानते हैं, दूसरा ऐसे आगाड़ी प्रगटरूप उसका कुछ भी नहीं रखता है। अस्तु।

इसप्रकार म० बुद्धका सर्वोत्कृष्ट उद्देश्य पूर्ण अभाव (Complete passing away) था और इसी उद्देश्यके लिए उनका

चारित्र नियम निर्मित था।[1] इस चारित्र नियममें आठ बातें गर्भित थीं, अर्थात् (१) सत्य दृष्टि (Right View), (२) सत्य उद्देश्य (Right Aspirations), (३) सत्यवार्ता (Right Speech) (४) सत्य आचरण (Right Conduct), (५) सत्य जीवन (Right Livlihood), (६) सत्य एकाग्रता (Right Mindfulness), (७) सत्य प्रयास (Right Effect), (८) और सत्य ध्यान अवस्था अर्थात मानसिक शांति (Right Rapture)।[2] इस अष्टाङ्ग मार्ग द्वारा ही संसारप्रवाहसे व्यक्तिको छुटकारा पाकर अपने उद्देश्यकी प्राप्ति होते मानी गई है। किन्तु यह अष्टांग मार्ग केवल भिक्षुओं और भिक्षुणियोंके लिये है। गृहस्थ अनुयायियोंकी गणना बौद्ध संघमें नहीं की गई है। इसका यही कारण है कि बुद्धने गृहस्थोंके लिये कोई खास आत्मोन्नतिक्रम नियत नहीं किया था, जैसा कि जैनधर्ममें (११ प्रतिमायें) है। सचमुच बौद्ध भिक्षुओंका जीवन भगवान महावीरके संघके इन व्रती श्रावकोंसे भी सरल था। बुद्धकी मान्यता थी कि सुविधामय सुखी सांसारिक जीवन व्यतीत करनेपर भी संसारसे मुक्ति मिल सक्ती है, परन्तु जैनधर्ममें यह स्वीकृत नहीं है।[3] वस्तुतः जबतक संसारसे बिल्कुल ही संबंध नहीं त्याग दिया जायगा तबतक कर्मोंसे छुटकारा मिलना असंभव है। बौद्ध साधुओंके सुविधामय जीवनकी अपेक्षा ही बौद्ध संघमें व्रती श्रावकोंको कोई भी स्थान प्राप्त नहीं था। हां, सामान्य ग्रहस्थ अनुयायी बुद्धदेवके थे, जैसे कि जैन संघमें संमिलित व्रती श्रावकोंके अतिरिक्त भगवान महावीरके साधारण श्रद्धानी श्रावक भी थे। अस्तु;

---

१ मिलिन्दपन्ह २।१।५ २ बुद्धिस्टफिलॉसफी पृष्ठ ११८ ३ मज्झिमनिकाय १।९३।

बुद्धदेवके उक्त अष्टांगमार्गमें 'साधपुतीमसम्मो'[1] के लिये जो चारित्रनियम नियत थे वह सब गर्भित हैं। बौद्ध शास्त्रनिर्मोमें जो 'शील' मुख्य माने गये हैं, वह भी इन्हींमें सम्मिलित हैं। बौद्धोंके यह शील जैनोंके १२ व्रतों (५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रत)से सामान्यतः मिलते जुलते प्रतीत होते हैं। बौद्धशास्त्रोंमें यह शील आठ बतलाये गए हैं; और बौद्ध साधुओंके लिये इनका पालन करना आवश्यक है। यह आठ इस प्रकार हैं—(१) अहिंसा, (२) अचौर्य (३) पाप और अब्रह्मचर्य त्याग (४) सत्य (५) मादकवस्तुओंका त्याग (६) अनियमित समयों और रात्रिको भोजन करनेका त्याग (७) नाचने गाने इत्रफुलेलके व्यवहार आदिका त्याग (८) और जमीनपर चटाई बिछाकर सोना। इनमेंसे पहिलेके चार तो जैनियोंके अणुव्रतोंके समान ही दिखते हैं, किन्तु जैनियोंका पांचवां अणुव्रत बौद्धोंके पांचवें शीलसे नितान्त भिन्न और विशुद्ध है। उपरोक्तमें शेष तीन जो रहे हैं जैनियोंके शिक्षाव्रतके ही संक्षिप्त और विकृत रूपान्तर हैं। यह सामञ्जस्य जाहिरा इतना स्पष्ट है कि हमें यह कहनेमें संकोच नहीं है कि इन नियमोंको बुद्धने जैनधर्मसे ग्रहण किया था किन्तु बुद्धके निकट इन नियमोंका वास्तविक महत्व प्रायः बहुत हल्का हो गया है। बौद्ध शास्त्रोंमें इनके लिये जो शब्द व्यवहृत हुये हैं वह भी इसी बातके द्योतक हैं। धीघनिकाय (P T S. Vol. I, P 4) में हिंसाके लिए 'पाणातिपात'

---

१. वीर जैनियाकी "बुद्धिज्म" पृष्ठ १३८. इन नियमोंमें अहिंसाके पांचवा शब्द तरह बौद्ध शास्त्रोंके लिये भी आवश्यक बतलाया गया है।

चोरीके लिए 'अदिन्नादान' कुशीलके लिये 'अब्रह्मचर्य' और 'असत्यके लिये ' मुसावाद ' शब्द व्यवहृत हुये हैं। जैन शास्त्रोंमें भी ऐसे ही शब्द मिलते हैं। अतएव यह स्पष्ट है कि यहां भी जैन प्रभाव बाकी नहीं है। फिर महावग्ग और चुल्लवग्गमें जो बौद्ध नियमोंका निर्माणक्रम वर्णित है वह हमारी उक्त व्याख्याकी और भी पुष्टि करता है। इससे ज्ञात है कि बौद्ध नियम एकदम एक साथ निर्मित नहीं हुए थे। जैसे२ जिस बातकी आवश्यक्ता पड़ती गई वैसे वैसे वह स्वीकार की गई। साधुओंको आचार्य, उपाध्याय आदिमें विभाजित करना जैन धर्ममें ही मिलता है तथापि 'वस्सा' (चातुर्मास) नियम खास जैनियोंका हैं।[1] इसी तरह गंधकुटी, शासन, आश्रव, संवर आदि शब्द मूलमें जैनियोंके ही हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आचारनियमोंको नियत करनेमें भी म० बुद्धने जैन आचारनियमोंसे सहायता ली थी।

किंतु इस विषयमें यह भूल जाना ठीक नहीं है कि यद्यपि

१ डॉ० जकोबीने जैन सूत्रोंकी भूमिकामें प्रगट किया है कि जैन और बौद्ध दोनोंने इन नियमोंको ब्राह्मण श्रोतसे ग्रहण किया था। किन्तु इस व्याख्याका प्रमाणित होना अभी शेष है कि सचमुच जैन धर्मकी उत्पत्ति ब्राह्मण धर्मके बाद हुई थी। अबतक जो कुछ भी शास्त्रीय और शिलालेखीय साक्षी प्राप्त हुई है वह जैनधर्मका अस्तित्व ब्राह्मण धर्मके साथ २ प्रकट करती है। स्वयं वेदोंमें जैन तीर्थंकरोंका नामोल्लेख है। तथापि ऋग्वेदमें (१।३।२।१४) एक यज्ञद्रोही सम्प्रदायके रूपमें जैनधर्मके अस्तित्वको स्वीकार किया गया है। (देखो अंग्रेजी जैनगजट भाग २१) तिसपर अन्तत डॉ० जैकोबीने जैनधर्मके प्राचीनतम अस्तित्वको स्वीकार किया है। (देखो जैन श्वे० कान्फ्रेन्स हेरल्ड भाग १० पृ० २५२-२५३)।

जैन आचारनियमोंसे बौद्ध नियमोंकी तुलना हो सकती है, परन्तु बौद्ध नियम जैन नियमोंके समान ही विशद और गंभीर नहीं हैं। एक व्रती श्रावकके पालन करने योग्य अणुव्रतों जितना भी महत्व उनका नहीं है। इस व्याख्याकी यथार्थता दोनों धर्मोंके नियमोंका तुलनात्मक विवेचन करनेसे स्वयं प्रमाणित हो जावेगी किन्तु विस्तारभयके कारण हम यहांपर केवल दोनों धर्मोंके अहिंसानियमको लेते हैं। अहिंसा इसका नाम दोनों धर्मोंमें एक है; परन्तु एक बौद्ध श्रमण इसका पालन करते हुये भी मांस और मछलीके भोजनमें ग्रहण करनेसे जरा पीछा नहीं करेगा। इसके विपरीत एक जैन गृहस्थ उनका नाम सुनना भी पसन्द नहीं करेगा। यद्यपि वह जैन मुनियोंकी अपेक्षा बहुत नीचे दर्जेकी अहिंसाका पालन करता है।[1] बौद्ध भिक्षु स्वयं तो किसी जीवका वध नहीं करेगा, परन्तु यदि कहीं मृत मांस मिल जावे तो उसको ग्रहण करनेमें संकोच नहीं करेगा। स्वयं म. बुद्धने कईबार मांसभोजन किया था। वैशालीमें सेनापति सिंहके यहां जब मांसभोजन बुद्ध एवं बौद्ध साधुओंको कराया गया तो जैनियोंने उसी समय इसका प्रबल विरोध किया, किन्तु यह समझमें नहीं आता कि जब बौद्ध गृहस्थोंके लिये भी अहिंसाव्रत अगृ है तब वे किस तरह बौद्ध भिक्षुओंके लिये मांस भोजन तैयार करसकते हैं? परन्तु बौद्धशास्त्रोंमें अनेक स्थलोंपर मांस भोजन तैयार किये जानेका उल्लेख मिलता है और एक स्थलपर

---

१ मज्झिम १२।१२ २५२ ११,११ और १४ २. [illegible] [illegible]। ३. अङ्गुत्तरनिकाय-[illegible] १२ [illegible]- [illegible] [illegible] [illegible]-[illegible]
४ [illegible] १५१.

जब मास बाजारमें नहीं मिला तो बौद्ध गृहस्थिनने स्वय अपनी जाघको काटकर मास भोजन तैयार करके बौद्ध सघको खिलाया था यह उल्लेख है।[१] इससे स्पष्ट है कि म० बुद्धकी अहिंसा जैन अहिंसासे कितनी हेय प्रकारकी थी। जैन अपेक्षा वह हिंसा ही है। म० बुद्धने केवल प्रकटरीतिसे प्राणी वध करनेको—जैसे यज्ञमे होम कर पशुओंको नष्ट करनेका विरोध किया था। सूक्ष्म हिंसाकी ओर उन्होंने दृष्टिपात ही नहीं किया। यह खयाल ही नहीं किया कि मृत मासमें भी कोटिराशि सूक्ष्म जीवोकी उत्पत्ति होती रहती है, जैसे कि आजकल विज्ञान (Science)से भी प्रमाणित है। इस अवस्थामें भी मासको खाना स्पष्टत हिंसा करना है। इस तरह जैन अहिंसाका महत्व प्रकट है। स्वय आधुनिक बौद्ध विद्वान् श्री धर्मानद कोसाम्बीका निम्न कथन जैन अहिंसाकी विशेषताको प्रकट करता है। वह लिखते है कि " म० बुद्धपर यह आरोप था कि लोगोंके घर आमत्रण स्वीकार करके वह मास भोजन करते थे और गृहस्थ लोग उनके लिये प्राणियोंका वध करके वह मास भोजन तैयार करते थे। जैन श्रमण दूसरेके घरका आमत्रण स्वीकार नहीं करते। यदि खास उनके लिये कोई अन्न तेयार किया गया हो (उद्दिसकट) तो वे उसको निषिद्ध समझते थे और अब भी समझते हैं, क्योंकि उसके तैयार करनेमें अग्निके कारण थोड़ी बहुत हिंसा होती ही है और स्वीकार करनेसे श्रमण उस हिंसाका मानो अनुमोदन ही करता है। अहिंसाकी यह व्यापक व्याख्या बुद्धभगवानको पसद नहीं थी। जानबूझकर किसी भी प्राणीको क्रूरता-

१. Vinaya Texts

करना है और हमें क्यों जीवनके साधारण इन्द्रियसुखोंका निरोध करना चाहिए! केवल इसलिए कि शोकादि नष्टता और नित्य मौन निकटतर प्राप्त हो जावें। यह नीवन एक भ्रान्तवादका मत है और दूसरे शब्दोंमें उत्तम नहीं है। अवश्य ही ऐसा आत्माके अस्तित्वको न माननेवाला विनश्वरताका मत सर्वसाधारणके मस्तिष्कको सतोषित नहीं कर सक्ता! बौद्धमतकी आश्चर्यजनक उन्नति उसके सैद्धातिक नश्वरवाद (Nihilism) पर निर्भर नहीं थी, वल्कि उसके नामधारी "मध्यमार्ग" की तपस्याकी कठिनाईके कम होनेपर ही थी।"[1]

बौद्ध धर्ममें अगाडी कहा गया है कि वह व्यक्ति जो बुद्ध धर्म और सघमें खासकर बुद्धमें-श्रद्धा प्राप्त करलेता है और मोह-जनित अज्ञानता (Delusion) को छोड देता है वह आभ्यन्तरिक दृष्टि (Inner sight) को पाकर अन्तत अर्हत् हो जाता है।[2] बुद्धने जिस समय सर्व प्रथम कौन्डन्यको* अपने मतमें दीक्षित किया तो उन्होंने कहा कि 'अन्नासि वत भो कोन्डण्णो!' अर्थात सच-मुच कोन्डन्यने जान लिया है। क्या जान लिया है? वही मार्ग जिसको बुद्धने देखा था (अन्नात=Has that which is perceived)[3] इसके साथ वह अर्हत् कहलाने लगा। वास्तवमें बुद्धके प्रारभिक शिष्य अपनी उपसम्पदा ग्रहण करनेके साथ ही 'अर्हत्'

१ जैनगजटॉ मि० हरिसत्यभट्टाचार्य एम ए आदि भाग १७ अंक ५ २ कीथ्स बुद्धिस्ट फिलासफी पृष्ठ १२२ ३ विनय-टेक्स्टस १।९८।

*कौन्डन्य गोत्रके कई साधुओंका उल्लेख श्रवणबेल्गोलके जैन शिलालेखोंमें है। इसलिए इन कौन्डन्य कुलपुत्त नामक भिक्षुको जो हमने पहले जैन मुनि बतलाया है वह ठीक है।

कहलाने लगे थे जैसे कि हम देख चुके हैं। इस अवस्थामें बौद्धोंके निकट 'अर्हत्' शब्द कितने हलके अर्थमें व्यवहृत होता था, यह स्पष्ट है। स० मि० ह्रीसडेविड्स हमको यही विश्वास दिलाते हैं कि 'व्यक्तित्वकी अवाच्यताके मार्गसे जो विमल प्राप्त होती है, वह गौतमबुद्धकी दृष्टिसे, इसी जीवनमें और केवल इसी जीवनमें प्राप्त करके भोगी जासक्ती है। यही भाव बौद्धोंकी अर्हत्अवस्थासे है। अर्हत् वह है जिसका जीवन आत्मिक दृष्टिसे पूर्ण बन गया है जो उत्तम अष्टांग मार्ग का बहुत कुछ अभ्यास कर चुका है और जिसने बन्धनोंको तोड़ दिया है एवं जिसने बौद्ध धर्मके चारित्र नियम और संयमका पूर्णतः अभ्यास कर लिया है।' यह बौद्धोंके अर्हत्का स्वरूप है। जिस समय व्यक्ति अष्टांगमार्गका पूरा अभ्यास कर लेता है और ध्यान आदिमें भी उन्नति प्राप्त कर चुकता है तब वह कहते हैं उसे आर्य ज्ञानका प्रकाश दृष्टि पड़ता है। यह म० बुद्धका 'निर्वाण' है और व्यक्तिके मरणके पहिले ही यह प्राप्त होता है। अंतिम मरण 'परिनिर्वाण' है। 'निर्वाण' अवस्थामें आत्मज्ञानकी प्राप्ति होती है परन्तु इसके उपरान्त व्यक्तिकी क्या दशा होती है इसपर बुद्ध चुप हैं। यदि कहीं यह मौन भङ्ग किया गया है तो वहां स्पष्टताका अभाव है। कभी पूर्ण नाशका प्रतिपादन है तो कभी किसी यथार्थ दशाका। किन्तु पूर्ण नाशकी ही प्रधानता प्राप्त है। परिनिर्वाणमें व्यक्तिका पूर्ण क्षय (लय) हो जाता है। यही म० बुद्धका परम उद्देश्य है।

१. बुद्धिज्म (हूस मिस्ट्री एण्ड लिटरेचर) पृष्ठ ११ २. बुद्धिस्ट फिलासफी पृष्ठ ९१

प्रकट रीतिसे हम म० बुद्धके बताये हुए अर्हत् और निर्वाण पदोंकी तुलना जैनसिद्धान्तके क्षायिक सम्यक्त्व और अर्हत पदसे क्रमश कर सक्ते हैं, किन्तु यह तुलना केवल बाह्यरूपमें ही है। मूलमें बौद्धोंके अर्हत्पदकी समानता जैनोंके अर्हत्पदसे नहीं की जासक्ती! प्रत्युत बाह्यरूपमें जैन अर्हतावस्थाके समान म० बुद्धका निव्वानपद भी है; जिसका विवरण जाहिरा जैनविवरणसे सदृशता रखता है, यद्यपि मूलमें वहा भी पूर्ण भेद विद्यमान है। अस्तु;

इस प्रकार म० बुद्ध और भगवान महावीरका उपदेश वर्णन है और यहा भी दोनोंमें पूरापुरा अन्तर मौजूद है। भगवान महावीरका दिव्योपदेश एक सर्वज्ञ परमात्माके तरीके बिल्कुल स्पष्ट, पूर्ण और व्यवस्थित, वैज्ञानिक ढगका प्रमाणित होता है। म० बुद्धका उपदेश तत्कालीन परिस्थितिको सुधारनेकी दृष्टिसे हुआ प्रतीत होता है और उसमें प्राय स्पष्टताका अभाव देखनेको मिलता है। वास्तवमें न म० बुद्धको ही अपने उपदेशकी सैद्धातिकताकी ओर ध्यान था और न उनके अनुयायियोंको। उनके उपदेशकी मान्यता जो इतनी विशद हुई थी उसमें उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व कारण था! उनके निकट पहुचकर व्यक्ति मोहनमत्रकी तरह मुग्ध हो जाता था और उसे उनके धर्मके औचित्यको जाननेकी खबर ही नहीं रहती थी।[१] इसी बातको लक्ष्य करके उनका उपदेश भी विविध मान्यताओंको लिये हुये था। प्रत्येक मतके अनुयायीको अपना भक्त बनानेके लिये म० बुद्धने अपने सिद्धातोंको

१-बुद्धिस्ट फिलासफी पृष्ट १४-१५ और के० जे० सॉन्डर्स गौतमबुद्ध पृष्ट ७१

मान' सर्व भवोंसे मिलता जुलता रखता था; परन्तु इस दशामें भी वह सफलमनोरथ नहीं हुये। दोनोंको भौतिकतामें ऐश्वर्यके दर्शन नहीं हुए और न उन्हें वह सुख मार्ग मिला जिससे उनके जीवन पूर्ण सुखके मोक्ष बनते परन्तु इतनेपर भी हम न बुद्धके सांसारिक पीड़ाओं और दुःखोंके वर्णनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। उन्होंने इनका प्रगट वर्णन किये थे और उसको बड़ी खूबीसे ग्रन्थोंमें चित्रित किया था।

भगवान महावीरने वस्तुस्थितिको प्रतिपादित किया था और संसारकी प्रत्येक अवस्थाके प्राणीके लिये एक सच्चे सुलभ मार्ग निर्दिष्ट किया था तथापि इस प्रतिपादनशैलीमें अनुपम 'स्याद्वाद सिद्धान्त' विशेष महत्वका था। उसके अनुसार वस्तुकी प्रत्येक दशाका सच्चा ज्ञान प्राप्त होता था। परिमित बुद्धि और शक्तिको रखते हुये संसारी आत्मा पदार्थके पूर्णरूपको एक साथ शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं करसकता। वह पदार्थके एक देशको ही ग्रहण कर सकता है। इसलिये पदार्थके पूर्ण स्वरूपको जाननेके लिए स्याद्वाद सिद्धान्त परमावश्यक है। आप्तमीमांसा, स्याद्वादमञ्जरी सप्तभंगितरङ्गिणी आदि ग्रन्थोंमें इसका पूर्ण विवेचन किया हुआ है। यहां पर इसका सामान्य दिग्दर्शन कराना भी कठिन है। इतना जान लेना ही पर्याप्त है कि इसकी सहायताके बिना हमारा किसी पदार्थका विवरण अधूरा रहेगा। मान लीजिये यदि हमें मोहनके गुरुकी अपेक्षा व्यक्तित्वको प्रगट करना है तो हम केवल उसको उसके पुत्रकी अपेक्षा 'पिता' कहकर पूर्णता प्रगट नहीं करसके।

क्योंकि वह अपने पिताकी अपेक्षा 'पुत्र', भानजेकी अपेक्षा 'मामा' भतीजेकी अपेक्षा 'चाचा' आदि है। स्याद्वाद सिद्धान्त इन्हीं सब सम्बन्धोंको अपनी अपेक्षा दृष्टिसे पूर्ण व्यक्त कर देता है, जिसको सामान्य व्यक्ति अन्यथा कहनेको समर्थ नहीं है। यह एक सर्वज्ञ परमात्माके ही समत्र है कि वह एक वस्तुका एकसा पूर्ण वर्णन प्रकट कर सके। जिस तरह सामान्य बातें स्याद्वाद सिद्धातसे पूर्ण प्रकट होती हैं उसी तरह सैद्धातिक विवेचन भी इसीकी सहायतासे पूर्णताको प्राप्त होता है। बौद्ध दर्शनके न्यायमें स्याद्वाद सदृश कोई नियम हमको नहीं मिलता है। यही कारण है कि म० बुद्धका वक्तव्य एकांत मतको लिये हुये है। उन्होंने कहा —

आकिञ्चञ्ञम पेक्खमानो सतीमा उपसीवाति भगवा-
न' अत्थीति निस्साय तरस्सु ओघम।
कामे पहाय विरतो कथा हि-
तन्हक्खयम् रत्तमहाभि पस्स ॥ १०६२ ॥ सुत्तनिपात् ॥

अर्थात्-हे उपसिव! दृष्टिमें शून्यको रखते हुए, विचारवान बनते हुये और किसी वस्तुके अस्तित्वको स्वीकार नहीं करते हुये ध्यान करना चाहिये। इन्द्रियवासनाओं आदिके त्यागसे ही ससार-समुद्रसे पार उतरकर इच्छाके अभावका अनुभव किया जायगा। इसी तरह 'धम्मपद' में कहा गया है कि —

"दुनियाको पानीका बबूला समझो, वह मृगतृष्णाका नजारा है। जो इस प्रकार दुनियाको देखता है, उसे यमराजका भय नहीं रहता है।" (१३।१७०) "सर्व ही पदार्थ नाशवान हैं, जो इसको जानता और देखता है उसके दु:खका अन्त होजाता है।

यही पवित्रतम मार्ग है।" (२।२७७) भगवान महावीरके स्याद्वाद सिद्धान्तमें इसका उल्लेख पर्याय दृष्टिसे यहीं किया गया है। उसका भावार्थ स्पष्ट प्रकट करता है कि—

'एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा, विनिर्मलः साधिगमस्वभावः।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ताः, न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः॥२६
सामायिकपाठ॥'

अर्थात्—मेरा आत्मा अपने स्वरूपमें सदैव एक है नित्य है विशुद्ध है और सर्वज्ञ है। शेष जो हैं वे सब मुझसे बाहिर हैं, अनित्य हैं और कर्मोंके ही परिणाम रूप हैं। इसीलिए—

'संयोगतो दुःखमनेकभेदं, यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम्॥२८

अर्थात्—शरीरके संयोगमें पड़ा हुआ यह आत्मा विविध प्रकारके दुःखोंका अनुभव करता है। इसलिये जिन्हें अपनी आत्माकी मुक्ति वांछनीय है उन्हें इस शारीरिक सम्बन्धको मन वचन, कायकी अपेक्षा त्यागना चाहिये।

इसतरह स्याद्वादकी अपेक्षा वस्तुका यथार्थरूप प्रकट होजाता है। म॰ बुद्धकी तरह भगवान महावीरने भी संसारको अनित्य और नाशवान प्रकट किया है, किन्तु यह केवल व्यवहार नयकी अपेक्षा है जिसके अनुसार संसारमें भावमें उपस्थित होती रहती है। मूलमें संसारके सामान्य अपेक्षा संसार नित्य है क्योंकि संसार-प्रवाहका कभी अन्त नहीं होता है। इसीलिए जैनदर्शनमें द्रव्यकी व्याख्या "सद् द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥ उत्पादव्ययध्रौव्य युक्तं सत् ॥५।३०" की है। अर्थात् द्रव्य सदावान नित्य है

और यह वही है जो उत्पाद व्यय ध्रौव्य कर सयुक्त है। इसतरह वस्तुओंके यथार्थ और व्यावहारिक दोनों रूपोंका विवरण वास्तविक रीत्या जैन धर्ममें दिया हुआ है। बौद्ध धर्मके समान एकात वादको यहा आदर प्राप्त नहीं है। इसलिए उचित रीतिमें ही आचार्य मल्लिसेन भगवान महावीरका यशोगान करते हैं—

"अन्योन्यपक्षप्रतिपक्षभावात् यथा परे मत्सरिणः प्रवादाः।
नयानशेषा नविशेषमिच्छन्‌ न पक्षपातो समयस्तथा ते ॥"

भावार्थ—भगवन्! आपकी वह पक्षपातमय एकान्त स्थिति नहीं है, जो कि उन लोगोंकी है जो एक दूसरेके विरोधी और आपके मतसे विपरीत हैं, क्योंकि आप उसी वस्तुको अनेक दृष्टियोंसे प्रतिपादित करते हैं।

इसतरह जैन सिद्धात—स्याद्वादका महत्व प्रकट है। सचमुच यदि इसका उपयोग हम अपने दैनिक जीवनमें करें तो हमारी धार्मिक असहिष्णुताका अन्त हो जावे। सब प्रकारके सिद्धान्तोंकी मानताकी असलियत इसके निकट प्रगट होजाती है। यही कारण है कि भगवान महावीरके दिव्योपदेशके उपरात उस समयमें प्रचलित वहुतसे मत मतातर लुप्त होगये थे और मनुष्य सत्यको जानकर आपसी प्रेममे गले मिले थे। इसप्रकार भगवान् महावीर और म० बुद्धके धर्मोका दिग्दर्शन करके हम अपने उद्देशित स्थानको प्राय. पहुच जाते हैं अर्थात् भगवान् महावीर और म० बुद्धकी विभिन्न जीवन घटनाओंका पूर्ण दिग्दर्शन कर चुकते हैं।
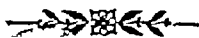
—⁂—

(७)
उपसंहार ।

भगवान् महावीर और म० बुद्धके विभिन्न जीवन एक दूसरेके नितान्त विपरीत थे यह अब हमें अच्छी तरह ज्ञात है। हम जिस आशाको लेकर इस ओर प्रयत्नशील हुये थे, वह प्रायः सफलती दिखाई पड़ रही है। उसके फलके अनुसार भगवान् महावीरके सम्बन्धमें जो मिथ्या भ्रम फैल रहा है उसका वास्तविक निराकरण हमारे नेत्रोंके आगाड़ी है। हम मानते हैं कि भगवान् महावीर म० बुद्धसे अलग एक ऐतिहासिक महापुरुष थे। उन्होंने म० बुद्धकी तरह किसी नवीन मतकी स्थापना नहीं की थी; बल्कि पहिलेसे जो जैनधर्म चला आरहा था, उसका पुनरुत्थान मात्र किया था। जैन धर्मकी स्थापना म० बुद्ध द्वारा बौद्ध धर्मके परिवर्तन होनेके बहुत पहिले हो चुकी थी।

किन्तु इसमें संशय नहीं कि भारतके ये दो चमकते हुये रत्न सार्वलौकिक प्रकाशको पा रहे हैं। इन दोनों युगप्रधान पुरुषोंका व्यक्तित्व प्रारम्भसे ही एक दूसरेसे विभिन्न रहा है। अब न नन्हीं अवस्थासे ही वह अतीव प्रभावशाली था। अहिंसाका दिव्य उपदेशकरनेके व्यक्तित्वसे किस तरह प्रकट होता था यह हम प्रकट कर चुके हैं। सचमुच भगवान् महावीरके दिव्य जीवनमें तुलना यह थी कि वह यथार्थ सत्यके अन्वेषीका एक अनुपम आदर्श था। अनुपम इसलिये था कि उन्होंने आत्मबल मनन और तपध्यान द्वारा पूर्ण स्वतन्त्रताके परमपद पदको उस ही जीवनमें प्राप्त कर लिया था। जरा विचारिये तो कि आत्मोत्सर्गमय मार्ग

कितना नीरस है। उसमें पगपगपर विविध संशयात्मक विषयों और भयानक ध्येयसे विचलित करनेवाले कन्टकोंका समागम होता है। किन्तु भगवान् महावीरका अपूर्व साहस और शौर्य इन सब कठिनाइयोंपर विजयी हुआ था। उनको आत्माकी अपूर्व ज्ञानादि शक्तियोंमें दृढ़ श्रद्धान था। उसीके अनुरूप उन्होंने नियमित ढगसे उस परमोत्कृष्ट अवस्थाको प्राप्त करनेके अतुल प्रयत्न किये थे। परिणामतः वह ज्ञान एवं प्रकाशके सनातन स्थानको प्राप्त हुए थे। इस सर्वज्ञावस्थामें उन्होंने वस्तुस्थितिरूपमें वैज्ञानिक रीतिसे प्रत्येक पदार्थका निरूपण किया था, जिससे सर्व प्रकारकी शकाओंका अन्त होकर बुद्धिकी संतुष्टि होगई थी। उनके वैज्ञानिक धर्मोपदेशमें प्रत्येक आत्माकी स्वाधीनता सिद्ध हो गई थी। प्रत्येक प्राणीको अपने ही शुभाशुभ कर्मोंमें सुख–दुःखका कारण प्रतीत होगया था और यह भी भान होगया था कि वे प्रत्येक अपने ही पुरुषार्थके बल परम सुखी होसक्ते हैं। अन्य कोई उनको सुखी नहीं बना सक्ता। जिस समय वह स्वयं परावलम्बिताकी उपेक्षा करके स्वावलम्बी बनकर सन्मार्गका अनुसरण करेगा तब ही उसको आनंदमय दशाका अनुभव प्राप्त होगा। परतन्त्रताको नष्ट करना ही उसमें मुख्य था। इसके साथ ही उनका उपदेश व्यक्तिको उदारताका पाठ पढानेवाला था। हृदयसंकीर्णता बुरी है। एकान्त दृष्टि मिथ्या है। अनेकांतका आश्रय लेना उपादेय है। अनेकांतीके निकट सर्व मतोंके आपसी विरोध और उलझी गुत्थियां सहजमें सुलझ जाती हैं। तथापि उदार दृष्टिको रखते हुये भी कोरी बाह्य क्रियाओंसे पूर्ण कर्मकाण्ड अथवा इन्द्रियलिप्साके मार्गमें फंसा रहना भी कार्यकारी

नहीं है। यह भगवान् महावीरके चरित्र और उपदेशसे स्पष्ट प्रगट है। उद्देश्य प्राप्तिके लिये अपनी परमेष्टपद अवस्थामें भगवानने एक सिद्धान्त, सरल और वैज्ञानिक मार्ग बतलाया था, जैसे कि हम देख चुके हैं। इस मोक्षमार्गपर चलता हुआ प्राणी साम्य भावका पक्का हिमायती होता है। प्रत्येक जीवात्माको अपने समान समझकर वह किसी भी प्राणीको मन वचन, काय द्वारा कष्ट नहीं देता है। तथापि गृहस्थावस्थामें रहते हुये भी वह नियमित ढंगसे सांसारिक कार्योंको पूर्ण करता है। इस रीतिसे वह अपना जीवन सुन्दर बनाता है कि वह स्वयं उद्देश्य प्राप्तिकी ओर अग्रसर होता जाय और दूसरोंको भी उस ओर चलनेमें सहायता दे। वस्तुतः भगवानका दिव्योपदेश सार्वभौमिक प्रेम, धर्म और सत्यपोषणका खासा पाठ पढ़ाता है; जिसका पालन करनेसे केवल भारतका नहीं, प्रत्युत समग्र मानव समाजका दुःख सर्वथा नष्ट होसकता है। इस प्रकार उत्तम और सरल जीवन व्यतीत करनेका विधान हमें भगवान कठिनतासे मिलता है। इसका कारण यही है कि भगवानने अटल विश्वासके साथ घोर परिश्रम करके अपने पुरुषार्थके बल उस पद मोक्षपद अवस्थाको प्राप्त कर लिया था जिसमें ज्ञान और प्रकाश स्वयं मूर्तिमान् हो जा विराजते हैं। अतएव भगवानका दिव्य जीवन हमको बाल्यावस्थामें पूर्ण वशचित्त रहनेका स्पष्ट उपदेश देरहा है।

स युवकको भी बातोंके उत्कट ज्ञानमें एक भराम था वह इतना अटल था कि इन वर्षोंकी कठिन तपस्या करनेपर भी जब उनको उसकी प्राप्ति नहीं हुई तब भी उनका विश्वास उसमेंसे जरा भी ढीला न पड़ा। उन्होंने यही कहा कि इस कठिन मार्गके प्राप्ति

रिक्त उसको प्राप्त करनेका कोई दूसरा मार्ग होना चाहिये। परिणामत' उन्होंने उसकी प्राप्तिका एक मध्य मार्ग ढून्ढ लिया। उस समय उन्हे इस दृढ़ श्रद्धानके अनुरूप साधारण ज्ञानसे एक उच्च प्रकारके ज्ञानकी प्राप्ति हुई थी, जैसे कि हम देख चुके हैं। वास्तवमें पुरुषार्थ अकारथ जानेवाला न था। उन्होंने अपने उस मध्यमार्गका प्रचार सर्वत्र किया' यद्यपि पूर्ण सर्वज्ञताके अभावमें उनका धर्मोपदेश पूर्णता और सैद्धातिकतासे रहित था, परन्तु उन्होंने तात्कालिक आवश्यक सुधारसे अपनी मोहनी सूरतके वल उसका वहुत कुछ प्रचार कर लिया। उम समय लोग आपसी विवादोंमें ही समय नष्ट करते थे, उन्होने उसको अधर्ममय ठहरा कर एक नियमित ढगसे जीवन व्यतीत करनेका उपदेश दिया। सार्वभौमिक प्रेमका उपदेश उन्होंने भी दिया था, किन्तु वह पूर्णत सबके लिये समान हितकारी नहीं था। विचारे निरापराध पशुओंको यद्यपि यज्ञवेदीसे वहुत कुछ छुटकारा मिल गया था, परन्तु मनुष्योंकी जिह्वा लम्पटताके कारण उनके प्राण सकटमें ही रहे थे। वुद्धने इस ओर ध्यान नहीं दिया। किन्तु इस असैद्धातिकताके रहते हुए भी म० वुद्धका जीवन भी ज्ञानोपार्जनके लिए दृढतासे प्रयत्न करनेका ही उपदेश देता है' केवल साधन और साध्यके उचित स्वरूपका ध्यान रखना यहा आवश्यक है।

दूसरी ओर भगवान महावीरका जीवन परम उदारताके साथ साथ समयानुसार परिवर्तनके लिये तैयार रहनेकी प्रकट शिक्षा देता है। उनके परम उदार धर्मोपदेशसे सर्व जाति और पातिके एव सर्व प्रकारकी सभ्यताके मनुष्य प्रतिवुद्ध होकर परस्पर गले मिले थे। क्षत्री, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल, पशु, पक्षी सबहीने भगवा-

नके प्रचार धर्मोपदेशसे लाभ उठाता था। उनका उपदेश किसी खास सम्प्रदायके लिये नहीं था। प्रत्युत सामान्य जनता (Masses) को लक्ष्यकर उनका उपदेश होता था। यही कारण था कि उनके उपदेशसे मनुष्य अपने आपसी मतभेदको भूल जाते थे। इससे स्पष्ट है कि भगवान समयानुसार परिवर्तन-सुधारको आवश्यक समझते थे। उस समय साम्प्रदायिकता केवल नहीं थी, उसका भेद होना आवश्यक था। भगवानके दिव्योपदेशसे उसका अन्त होगया। यही नहीं उस समय कठिन ब्रह्मचर्य और तपश्चरणकी भी आवश्यकता थी, भगवानने अपने दिव्य जीवनसे इसका आदर्श उपस्थित कर दिया था। धार्मिक मामला आदि सद्गुणन जिस समय मनुष्योंकी आवश्यकता नहीं समझ रहे थे उस समय भगवानको ब्रह्मचर्य और कठिन तपश्चरणका उपदेश अपने चारित्र द्वारा प्रत्यक्ष बतलाते प्रकट करना जरूरी ही था। आज भी भारतहितके लिये हमको भगवानके इस आदर्शका अनुकरण करना आवश्यक है।

भ. बुद्ध भी सामाजिक सुधारके पक्के हामी थे। उन्होंने समयकी परिस्थितिके अनुसार बहुत कुछ सुधार किया था, जो हम देख चुके हैं। उनके उपदेशसे भी लोग अपनी साम्प्रदायिकताको गंवा बैठे थे। इस तरह उनका जीवन भी सामाजिक सुधारके लिये हर समय तैयार रहनेका ही उपदेश देता है।

तीसरी मुख्य बात भगवान् महावीरके जीवनकी यह है कि उन्होंने स्त्रियोंका विशेष आदर किया था। उनके समवसरणमें पुरुषोंके बराबर स्त्रियोंको स्थान प्राप्त था। यद्यपि स्त्रियोंको भी समान धर्माधिकार प्राप्त थे परन्तु उनको स्त्री योनिसे मोक्ष प्राप्त करनेकी

योग्यता प्राप्त नहीं थी। इसी कारण वे परम निर्ग्रन्थ रूप धारण नहीं कर सक्तीं थीं। उस समय भगवान् महावीरके शासनकी आविकायें विशेष ज्ञानवान और विदुषी थीं। आज भारत हितके नाते प्रत्येक भारतीयको भगवानके इस दिव्य चरित्रसे शिक्षा लेना उत्तम है। भारतीय स्त्रियोंकी दशा जिस समय ज्ञानवान और आदरमय होगी उसी समय हमारे जीवन भी उत्कृष्ट बनेंगे, तब ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, पुरुषार्थोंकी सिद्धि होसक्ती है। म० बुद्धने भी गृहस्थ सुखके लिए स्त्रियोंको ज्ञानवान बनाना और उन्हें आदरकी दृष्टिसे देखना आवश्यक बतलाया था।

अन्तत भगवान् महावीरका जीवन उन युवकोंके लिये एक अनुकरणीय एव आदर्श है जो उन्नति करके सत्कीर्तिका मुकुट अपने शीशपर रखना चाहते हैं। उन्हें अपने उद्देश्य प्राप्तिके लिए दृढ़-प्रयत्न होना चाहिये। उद्देश्यमें श्रद्धान जमा लेना आवश्यक है। उद्देश्यहीन जीवन एक दु खमय जीवन है। फिर इस उद्देश्यको क्रमवार नियमित ढगसे प्राप्त करना लाजमी है। धीरता और सतोष-पूर्वक कर्तव्यपरायण रहना उसमें आवश्यक है। धीरे २ ही मनुष्य उन्नति कर सक्ता है। वह एकदम उन्नतिकी शिखिरपर नहीं पहुच सक्ता है। भगवान् महावीरने इसीप्रकार उन्नति करके निर्वाणपदको प्राप्त किया था। इसके विपरीत म० बुद्धने साधुके एक नियमित जीवनक्रमका अभ्यास नहीं किया था, जिसके कारण वे पूर्ण ज्ञानको प्राप्त करनेमें असमर्थ रहे थे। यद्यपि ध्येयमें उनका श्रद्धान भी अटल था किन्तु उसकी आतुरताने उनको उससे वचित रक्खा। फिर भी उनको साधारण ज्ञानसे कुछ अधिककी प्राप्ति हुई ही थी। अस्तु,

इसप्रकार भगवान् महावीर और म॰ बुद्धके जीवन हैं और उनसे जो शिक्षायें हमें प्राप्त होती हैं वह भी प्रकट हैं। दोनों ही युगप्रधान पुरुष समकालीन और क्षत्री राजकुमार थे। भ॰ महावीरसे म॰ बुद्ध मात्र तीस वर्ष उमरमें बड़े थे। उन्होंने गृहत्याग करके विविध धर्मपन्थोंका अभ्यास किया था और वे एक समय जैन मुनि भी रहे थे। उपरांत मध्यमार्गको प्राप्त करके ११ वर्षकी अवस्थासे उन्होंने उसका प्रचार करना प्रारम्भ किया था। इस समय भगवान् महावीर एक सामान्य मुनिकी तरह तपस्यावस्थामें थे। इस उपदेशमें म॰ बुद्धने सामयिक परिस्थितिसे बहुत कुछ सुभीता था परन्तु उससे पूर्व शासक प्रभावसे उनका उपदेश सैद्धान्तिकतासे रहित था। इसपर भी तपस्याकी प्रतिभाविक प्रभाव और म॰ बुद्धके व्यक्तिगत प्रभावसे उसका प्रचार विशेष हुआ था।

इसप्रकार स्वयं म॰ बुद्धद्वारा बौद्धधर्मकी सृष्टि हुई थी। उनसे पहले वह धर्म भारतमें नहीं था क्योंकि यदि वह होता तो म॰ बुद्ध अन्यत्र कहीं न भटककर अपनेसे पहले हुये बुद्धोंके मार्गका अनुसरण करते। यही कारण है कि बौद्धग्रन्थोंमें बुद्धोंकी संख्या भी ठीकसर एक नहीं बताई गई है। भगवान महावीरने इसके विपरीत अपने पूर्वगामी तीर्थंकरोंके समान ही एक नियमित साधुजीवनका अभ्यास किया था और अन्ततः सनातन जैनधर्मका पुनरुद्धार किया था, जो देश-विदेशोंमें फैल गया। म॰ बुद्धका बौद्धधर्म सम्राट् अशोकद्वारा विदेशोंमें—खासकर चीन, जापानमें—विशेष फैलाया गया था किन्तु जैनधर्म इसके पहले ही जैन मुनियों द्वारा यूनान आदि देशोंमें पहुंच चुका था। चंद्रगुप्त मौर्य

और सम्प्रति मौर्य्य सम्राटोद्वारा इसका प्रचार अशोकके पहले ही होचुका था। फिर खारवेल, महामेघवाहनने जैनधर्मकी प्रभावना भारतव्यापी किंवा जावा आदि देशोंमें की थी। चीन और जापानमें भी जैनधर्म एक समय अवश्य रहा था, इसका प्रमाण वहांकी एक सम्प्रदायविशेषके अस्तित्वसे होता है, जो अहिंसाको विशेष मानते और रात्रिभोजन नहीं करते है। 'जैन बुद्धधर्म' नामक चीनाई धर्मकी सदृशता साधारणत जैनधर्मसे है। वह भेदविज्ञानको मुख्य मानते हैं। (देखो, दी रिलीजन्स आफ एम्पाइर पृ० १८७)। इसतरह भगवान् महावीरद्वारा पुन घोषित होकर जैनधर्म बहु प्रचलित होगया था।

भगवान् महावीरने गृहस्थावस्थामें ब्रह्मचर्य पूर्वक श्रावकके व्रतोंका अभ्यास करके करीब ३० वर्षकी अवस्थामें गृहत्याग कर दिगम्बर मुनिके व्रत धारण किये थे। बारह वर्ष तक घोर तपस्या और ध्यान करनेपर उनको करीब ४२ वर्षकी अवस्थामें सर्वज्ञताका लाभ हुआ था। इसी समयसे वे अपना उपदेश देने लगे थे। भगवानकी सर्वज्ञताको म०बुद्धने भी स्वीकार किया था और उसका प्रभाव म० बुद्धके जीवनपर इतना पड़ा था कि उनके जीवनकी तत्कालीन घटनाओंका प्राय अभाव ही है। अन्तत भगवान् महावीरने पावापुरसे जब निर्वाण लाभ किया था तब म० बुद्ध जीवित थे। उपरात म० बुद्ध करीब पाच वर्षतक और उपदेश देते रहे थे इस समय राजा अजातशत्रुने उनके धर्मको अपनाया भी था आखिर बौद्धशास्त्र कहते है कि कुसीनारामें म० बुद्धका 'परिनव्वान' घटित हुआ था। सक्षेपमें दोनों युगप्रधान पुरुषोंकी ये जीवन घटनायें हैं - इनमें भगवान् महावीरके दर्शन हम एक साक्षात् परमात्माके रूपमें करते हैं। वे एक अनुपम तीर्थंकर थे। यह प्रकट है। इतिशम्!

परिशिष्ट १

बौद्ध साहित्यमें जैन उल्लेख।

भारतीय साहित्यमें उपलब्ध बौद्ध साहित्य भी विशेष प्राचीन है। बौद्धधर्मके मर्मज्ञ विद्वान् मि० र्‍हीसडेविड्स प्रभृति विद्वानोंने साथ यह सिद्धकर चुके हैं कि बौद्धोंके पालीग्रन्थोंकी रचना आजसे करीब २१ वर्ष पहिले होचुकी थी। अशोकके समय अर्थात् ईसवी सन्से पूर्व तीसरी शताब्दिमें इन ग्रन्थोंका अधिकांश भाग उसी रूपमें स्थिर होचुका था जैसा उसे हम आज पाते हैं। तथापि मिसिज र्‍हिसडेविड्सका कथन है कि यह ग्रन्थ ईसवी सन्से पूर्व ८ वर्षमें लिपिबद्ध होचुके थे। ऐसी दशामें इन बौद्ध ग्रन्थोंमें जैनधर्मके सम्बन्धमें जो उल्लेख हैं वे विशेष महत्वके हैं क्योंकि उनके समय भगवान महावीरके बहुत निकटवर्तीकालके हैं।

हमें बतलाया गया है कि 'बौद्धोंके समस्त धार्मिक ग्रन्थ तीन भागोंमें विभक्त हैं जो 'त्रिपिटक' कहलाते हैं। इनके नाम क्रमशः 'विनयपिटक' सुत्तपिटक और अभिधम्म पिटक हैं। प्रथम पिटकमें बौद्ध मुनियोंके आचार और नियमोंका, दूसरेमें महात्मा बुद्धके निज उपदेशोंका और तीसरेमें विशेषरूपसे बौद्ध सिद्धान्त और दर्शनका वर्णन है। 'सुत्तपिटक' के पांच निकाय व अंग हैं। इनमें अनेक स्थानोंपर जैन धर्मका उल्लेख करके वर्णन किया गया है। इनमेंसे निम्न अवतरण अनेकोंका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ

१ भगवान महावीर परिशिष्ट पृ० २०६. २. दी लाइफ ओफ दी बुद्ध बुद्धिस्ट इन्डिया पृ० १६. ३. भगवान महावीर पृ० २३५.

और उनमें जैनधर्म सम्बन्धी उल्लेख जो हमें मिले हैं उनको हम विवेचन सहित निम्नप्रकार पाठकोंके समक्ष उपस्थित करते हैं।

'सुत्तपिटक' का द्वितीय अग 'मज्झिमनिकाय' है। इसमें जो जैन उल्लेख आये हैं, उनमेंसे कतिपय इस प्रकार है। एक स्थानपर बुद्ध कहते हैं –

'एक मिदा ह, महानाम, समय राजगहे विहरामि गिज्झकूटे पव्वते। तेन खो पन समयेन सवहुला निगण्ठा इसिगिलिपस्से काल सिलाय उब्भत्थका होन्ति आसन पटिक्खित्ता, ओपक्कमिका दुक्खा तिप्पा कटुका वेदना वेदयन्ति। अथ खोह, महानाम, सायण्ह समय पटिसल्लाणा वुट्ठितो येन इसिगिलि पस्सम कालसिला येनते निगण्ठा तेन उपसकमिम्। उपसकमित्वा ते निगण्ठे एतदवोचम्: किन्नु तुम्हे आवुसो निगण्ठा उब्भट्ठका आसन पटिक्खित्ता, ओपक्कमिका दुक्खा तिप्पा कटुका वेदना वेदियथाति। एव वुत्ते, महानाम, ते निगण्ठा म एतदवोचु, निगण्ठो, आवुसो नाथपुत्तो सव्वञ्ञु, सव्वदस्सावी अपरिसेस ञाण दस्सनं परिजानातिः चरतो चमे तिट्ठतो च सुत्तस्स च जागरस्स च सतत समित ञाण दस्सन पच्चुपट्ठितति, सो एव आह अत्थि खो वो निगण्ठा पुव्वे पाप कम्म कत, त इमाय कटुकाय दुक्करिकारिकाय निज्जरेथ, य पनेत्थ एतरहि कायेन सवुता, वाचाय सवुता, मनसा सवुता त आयतिं पापस्स कम्मस्स अकरण, इति पुराणान कम्मान तपसा व्यन्तिभावा, नवान कम्मान अकरणा आयतिं अनवस्सवो, आयतिं अनवस्सवा कम्मक्खयो, कम्मक्खया दुक्खक्खयो, दुक्खक्खया वेदनाक्खयो, वेदनाक्खया सव्व दुक्ख निज्जिण्णं भविस्सति तं च पन् अम्हाकं

रुचति चेव खमति च तेन च आम्हा अत्तमना ति'"

इसका भावार्थ यह है कि म० बुद्ध कहते हैं "हे महानाम, मैं एक समय राजगृहमें गृध्रकूट नामक पर्वत पर विहार कर रहा था। उसी समय ऋषिगिरिके पास 'कालशिला' (नामक पर्वत) पर बहुतसे निर्ग्रन्थ (जैनमुनि) आसन छोड़ उपक्रम कर रहे थे और तीव्र तपस्यामें प्रवृत्त थे। हे महानाम, मैं सायंकालके समय उन निर्ग्रन्थोंके पास गया और उनसे बोला, 'अहो निर्ग्रन्थ! तुम आसन छोड़ उपक्रम कर क्यों ऐसी घोर तपस्याकी वेदनाका अनुभव कर रहे हो?' हे महानाम, जब मैंने उनसे ऐसा कहा तब वे निर्ग्रन्थ इस प्रकार बोले—'अहो, निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं, वे अशेष ज्ञान और दर्शनके ज्ञाता हैं। हमारे चलते, ठहरते, सोते, जागते समस्त अवस्थाओंमें सदैव उनका ज्ञान और दर्शन उपस्थित रहता है। उन्होंने कहा है—निर्ग्रन्थो! तुमने पूर्व (जन्म)में पापकर्म किये हैं, उनकी इस घोर दुश्चर तपस्यासे निर्जरा कर डालो। मन वचन और कायकी संवृत्तिसे (रुकने से) पाप नहीं बंधते और तपस्यासे पुराने पापोंका व्यय होजाता है। इस प्रकार नये पापोंके रुक जानेसे आयति (आस्रव) रुक जाती है आयति रुक जानेसे कर्मोंका क्षय होता है, कर्मक्षयसे दुःखक्षय होता है, दुःखक्षयसे वेदना-क्षय और वेदना-क्षयसे सर्व दुःखोंकी निर्जरा होजाती है।' इसपर बुद्ध कहते हैं—'यह कथन हमारे लिये रुचिकर प्रतीत होता है और हमारे मनको ठीक जंचता है।'

१ मज्झिमनिकाय (P T S.) भाग १ पृ० ९२-९३

२ भगवान महावीर पृ० २ [illegible] (परिशिष्ट 1)

इसमें म० वुद्धने भगवान महावीर (निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र)के अस्तित्व और उनकी सर्वज्ञता तथा उनके द्वारा उपदिष्ट कर्म सिद्धान्तको प्रकट किया है। यह ठीक उसी तरह है, जिस तरह जैन ग्रन्थोंमें बताया गया है। ऐसाही प्रसग 'मज्झिमनिकाय'में एक स्थान पर और आया है।[1] इसका अनुवाद हम मूल पुस्तकमें पहिले यथास्थान लिख चुके हैं। उसमें भी इसी प्रकार भगवान महावीर और उनकी सर्वज्ञता एव उनके द्वारा प्रतिपादित कर्मसिद्धान्तको स्वीकार किया गया है।[2] जैन धर्मकी मानताओंके यह स्पष्ट और महत्वशाली प्रमाण हैं।

इनके अतिरिक्त 'मज्झिमनिकाय' में एक 'अमयराजकुमार सुत्त' है[3] और इसमें श्रेणिक विम्वसारके पुत्र अभयकुमारका वर्णन है। यह अभयकुमार वही हैं जिन्होंने भगवान महावीरके समवशरणमें दीक्षा ली थी और जो पहिले बौद्धधर्मावलम्बी थे। जैन शास्त्रोंमें इनका विशद वर्णन मौजूद है, किन्तु बौद्धोंके उक्त सुत्तमें कहा गया है कि जिस समय बुद्ध राजगृहके वेलुवनमें मौजूद थे, उस समय निगन्थ नातपुत्त (भगवान महावीर) ने इनको सिखलाकर म० बुद्धके पास भेजा कि जाकर बुद्धसे पूछो कि तुम किसीसे कठोर या अनुचित शब्द कहते हो या नहीं। यदि वह उत्तरमें हा कहें तो उनसे पूछना कि तुममें और साधारण मनुष्योंमें फिर क्या अन्तर है ? यदि वह इन्कार करें तो कहना कि इन शब्दोंका व्यवहार तुमने कैसे किया,—

---

१ मज्झिमनिकाय (P. T. S.) भाग २ पृष्ठ २१४–२१८. २ मूल पुस्तक पृष्ठ ८८ ३ P. T S भाग १ पृष्ट ३५२ इत्यादि.

आणामिओ देवदत्तो, निरमिओ देवदत्तो इत्यादि।

इससे बुद्धको नीचा देखना पड़े यह भाव था, परन्तु जिस समय अभयकुमार भ० बुद्धके निकट पहुंचे तो उन्होंने अभयकुमारका समाधान कर दिया और वे भ० बुद्धके अनन्य भक्त होगये। इस कथानकमें कितना तथ्य है यह सहज अनुमानगम्य है। वास्तवमें बौद्ध ग्रंथ साम्प्रदायिकताके पापसे अछूते नहीं हैं और उनकी एक खासियत यह है कि उनमें कहीं भी ऐसा वर्णन नहीं है जिसमें एक बौद्धानुयायीके विधर्मी होनेका जिकर हो। कमसे कम हमारे देखनेमें ऐसा उल्लेख नहीं आया है। इसके प्रतिकूल विधर्मी जैनादिके बौद्ध होनेका उल्लेख उनमें अनेक स्थानोंपर मिलता है। इससे इस ओर बौद्ध शास्त्रोंके कथनको यथातथ्य स्वीकार करना जरा कठिन है। उसके जैनधर्म सम्बन्धी उल्लेखोंका विवेचन करते हुए हम इस व्याख्याका मर्म स्पष्टीकरण जिनकी पंक्तियोंमें देखेंगे। इसके अतिरिक्त जैनग्रन्थोंमें हमें बौद्धग्रन्थोंसे प्रतिकूल वर्णन होते हैं। यहां बुद्धके भक्तोंमें एक जैनके विधर्मी होनेकी कथा स्वीकार की गई है। ऐसी दशामें हम सहसा बौद्धग्रंथोंके उल्लेखोंको बिल्कुल यथार्थ सत्य स्वीकार नहीं कर सके। तिसपर उनमें एक ही कथा अपने एक दूसरे ग्रन्थके विरुद्ध वर्णन भी रखती है। इन्हीं अभयराजकुमारके सम्बन्धमें हमें बौद्धोंके 'सिलोन-दीप बुद्ध' में बतलाया गया है कि वे वैशालीकी वेश्या आम्र पालीके गर्भ और राजा श्रेणिकके औरससे जन्मे थे। किन्तु यह

---

१. मज्झिमनिकाय, भिक्षुसूत्र आदि अभयराज कुमारसूत्र इत्यादि देखना चाहिए। २. दी क्षत्री क्लैन्स इन बुद्धिस्ट इन्डिया पृष्ठ १२०-१२

कथन उनके पाली ग्रन्थोंके विपरीत है।[1] 'थेरीगाथा' में कहा गया है कि वे उज्जैनीकी वेश्या पद्मावतीके गर्भ और सम्राट् श्रेणिक बिम्बसारके औरससे जन्मे थे।[2] इस अवस्थामें यहां यथार्थताका पता लगाना कठिन है। प्रत्युत यही प्रतिभाषित होता है कि उपरान्त अभयकुमार जैन मुनि होगये थे, इसीलिए बौद्ध ग्रथोंमें उनको नीचा दिखानेके लिए ऐसा वर्णन लिखा है। इसी तरह कुणिक अजातशत्रु जबतक अपने प्रारंभिक जीवनमें जैनी रहे थे तबतक उनका उल्लेख बौद्ध ग्रथोंमें 'सर्व दुष्कृत्यका करनेवाला' रूपमें है।[3] उपरान्त जब वे बौद्ध होगए तब इस प्रकार उनका उल्लेख नहीं किया गया है। इस परस्थितिमें यह स्पष्ट है कि अभयराजकुमारके सम्बन्धमें उनका उल्लेख यथार्थ नहीं है।

तिसपर उपरोक्त सुत्तमें जो यह कहा गया है कि भगवान् महावीरने उनको सिखलाकर भेजा था, यह जैन शास्त्रोंके प्रतिकूल है। जैन शास्त्र स्पष्ट प्रकट करते हैं कि तीर्थङ्करावस्थामें भगवान् महावीर रागद्वेष रहित थे। उनको न किसीसे राग था और न किसीसे द्वेष। उनका उपदेश अव्याबाध, सर्व हितकारी वस्तुस्थिति-रूपमें होता था। इस कारण यह संभव नहीं कि भगवान् महावीरने म० बुद्धको नीचा दिखानेके लिये अभयकुमारको सिखाकर उनके पास भेजा हो। तिसपर यह भी तो जरा विचारनेकी बात है कि उन्होंने उन खास शब्दोंको कैसे बतलाया होगा जो अशोकके

१ पूर्ववत् २ दी साम्स ऑफ दी सिस्टर्स पृष्ठ ३० ३. हमारा भगवान महावीर पृष्ठ ११५.

मध्यमेमें आकर बौद्ध साहित्यके संकलित होनेसे लिखित हुये थे। इस अपेक्षा बौद्धोंका उक्त कथन ठीक नहीं जंचता।

उपरान्त इसी निकायके 'पूर्व सम्बन्धी सुत्त' में भगवान महावीर द्वारा बताए गये पंचव्रतोंका यथार्थ उल्लेख है। जैनों में इनको अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह कहलाता है तथा इन्हें आत्माकी सुखमय दशाको प्राप्त करनेका यत्न बताया है। यह पूर्व सम्बन्धेवाली जैन मुनि थे तथापि इसमें भगवान 'उपालीसुत्त' द्वारा अहिंसा सिद्धान्तका भेद प्रकट किया है। उपाली एक जैन श्रावक था। वह म. बुद्धके पास गया था। उसने वहां यह प्रश्न किया था कि हिंसा चाहे जानबूझकर की गई हो या बिना जानेबूझे परन्तु वह पापबंधका कारण अवश्य है। यह जैन दृष्टिसे अहिंसाकी यथोचित व्याख्या है। बिना जाने भी जो हिंसा होगी उसका पापबंध अवश्य भुगतना पड़ेगा यद्यपि श्रावकोंके लिये अहिंसाकी व्याख्या अन्य प्रकारकी है। यह भिक्षु उसका पालन एकदेशरूपमें करते हैं केवल जानबूझकर किसीको मारने अथवा पीड़ा पहुंचानेका ही उनके त्याग होता है[1] अन्यथा वे आरम्भी और उद्योगी हिंसाके भागी होते ही हैं। अपनी रक्षाके लिये और धर्म-मर्यादाके स्थिर करनेके लिये वे कदाचित् भी लड़ते हैं परन्तु एक मुनि इस अहिंसाका पालन पूर्ण रीतिसे करता है। वह अपने शरीर-पोषणके लिये भी हिंसा नहीं करता है। जो कुछ श्रावकोंने अपने लिये भोजन बनाया होगा उसीमेंसे मात्र ग्रासमें

---

१ मज्झिमनिकाय भाग २ पृष्ठ १५ ३५। २. भ. बि. भाग १ पृष्ठ १०। ३. रत्नकरण्डश्रावकाचार (का. सं.) पृष्ठ ४९।

वह शरीररक्षाके निमित्त ग्रहण कर लेता है। तथापि इस अव-स्थामें भी अज्ञातावस्थामें जो हिंसा होती है उसके लिए वे मुनिंगण प्रतिक्रमणादि करते हैं। आचार्य अमितगति यह भावना इस तरह प्रकट करते हैं —

'एकेन्द्रियाद्या यदि देव देहिनः, प्रमादतः संचरता इतस्ततः।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिता, तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं
तदा ॥ ९ ॥'

भावार्थ-यत्रतत्र विचरण करते हुए प्रमादवश यदि कोई हिंसा हुई हो या किसी प्राणीको दु ख पहुचा हो, अथवा उसको अनिष्ट सयोग मिला हो तो उस एक या अधिक इन्द्रियवाले प्राणीको उक्त प्रकार पीड़ा पहुचानेका यह दुष्कृत्य दूर हो। इस प्रकार जैनसिद्धातमें अज्ञात अवस्थाकी हिंसा भी पापबंधका कारण मानी गई है और उपाली इसी दृष्टिसे उसका प्रतिपादन म० बुद्धके निकट करता है। किन्तु म० बुद्ध जैन अहिंसाकी इस व्यापकताको स्वीकार नहीं करते हैं, यह हम पहिले ही देख चुके हैं। वह केवल जानबूझकर किसीको मारने या पीडा पहुचानेको ही हिंसा मानते हैं। श्वेताम्बरोंके सूत्रकृताङ्गमें बुद्धकी इस मान्यताका खण्डन किया गया है।[3] वहा एक बौद्ध कहता है कि यदि कोई व्यक्ति धोखेमें किसी प्राणीको मारदे और उसका आहार बौद्ध श्रमणोंको दे तो वे इसे स्वीकार करलेंगे क्योंकि उस प्राणीको मारनेके भाव तो उस व्यक्तिके थे ही नहीं। इसलिए इसमें हिंसा भी नहीं समझना चाहिये। तथापि यदि कोई व्यक्ति

१ मूलाचार पृष्ठ १६७-१६८। २ सामायिकपाठ ५। ३ जैनसूत्र (S B. E) भाग २ पृष्ठ ४१४-४१६.

निर्जीव वस्तुमें एक प्राणीकी कल्पना करके उसका घात करे तो वह हिंसा नहीं मानती और वही पापका कारण है। उक्ति वाक्यों द्वारा यहां मीमांसकोंकी इस व्याख्याका विरोध किया गया है। वस्तुतः म० बुद्ध अपने एकान्तमतकी अपेक्षा केवल एक दृष्टिसे ही यहां हिंसाका प्रतिपादन कर रहे हैं। वह मन, वचन, काय द्वारा जो हिंसा होती है उसको उसी दशामें पापमय समझते हैं जिस समय वह व्यक्ति जानबूझकर उसको करता हो। जैन मान्यता इसके प्रतिकूल है। उसके अनुसार यह एकदेशी अहिंसा है जैसे कि हम देख चुके हैं। अतएव जैनसिद्धान्तमें मन, वचन, कायिक तीन प्रकारके दण्ड पापकर्मके कारण बताये हैं। मनसावध कायिक दण्ड जैसे चलते फिरते चींटी आदिका मरना भी पापकर्मका कारण है। उपाली इन तीनों दण्डोंका उल्लेख करता है परन्तु बुद्ध इसको स्वीकार नहीं करते। अन्ततः कहा गया है कि उपाली बुद्धके उपदेशसे प्रतिबुद्ध हो गया। इसमें ऐतिहासिक तथ्य है यह हम नहीं कह सकते। जैन शास्त्रोंमें उपालीका उल्लेख हमारे देखनेमें नहीं आया है तथापि यह स्पष्ट है कि जैनधर्मका अहिंसावाद भगवान महावीरके समयसे ही वैसा है जैसा कि आज उसे हम पाते हैं।

इसके अतिरिक्त अन्यत्र जैनियोंकी यह मान्यता बताई गई है कि व्यक्तिको अपना स्वार्थ साधना चाहिये फिर चाहे कितनी भी हिंसा क्यों न करनी पड़े। यह जैन मान्यताके प्रतिकूल है उनके अनुसार बिल्कुल मिथ्या है। मालूम होता है यहां-

---

१ मज्झिमनिकाय भाग १ पृ० ३ २. ८. [illegible] भाग ५ पृ० १२१ और [illegible] पृ० ८२.

पर बुद्ध जैनियोंके इस उपदेशको व्यक्त कररहे हैं कि मुमुक्षुको सब वातोंको गौण करके अपना आत्महित सबसे पहिले साधन करना चाहिये। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह अपने माता-पिताके प्राणोंतककी परवा न करे। ऐसा यदि वह करेगा तो वह अपने अहिंसाव्रतके विरुद्ध जायगा। इस अवस्थामें बुद्ध जैनियोंपर इस मान्यताके कारण उसी डालको काटनेका लाञ्छन आरोपित नहीं कर सक्ते जो स्वय उनको छाया देती हो। जैनदृष्टिसे यह पहले दर्जेकी कृतघ्नता है।

तथापि उपालीसुत्तके अन्तमें कहा गया है कि दीघतपस्सीको उपालीके बौद्ध होनेके समाचारों पर विश्वास नहीं हुआ। वह निगन्थ नातपुत्तके पास गया और उपालीके बाबत उनसे सब कहा। इसपर वह सघ सहित उपालीके निकट गये और उसे समझाने लगे, पर वह न माना।[1] यह कथन भी कुछ अटपटा है। एक श्रावकके लिये, जो कोई विशेष प्रभावशाली व्यक्ति भी नहीं था, उसके निकट भगवान महावीर गये हों! यह वर्णन जैन मान्यताके विरुद्ध है। तीर्थङ्करावस्थामें वे भगवान प्राकृतरूपमें रागद्वेष और वाञ्छासे रहित होकर उपदेश देते थे। इसलिये उनका वहां जाना केवल जैनियोंकी मान्यताके विपरीत नहीं है, वल्कि प्रकृत अयुक्त है। अतएव बौद्ध ग्रन्थका यह कथन मिथ्या प्रतीत होता है। जैन शास्त्रोंमें ऐसा उल्लेख नहीं मिलता जिससे यह प्रकट हो कि भगवान सर्वज्ञावस्थामें किसीके गृहादिको गये हों, प्रत्युत उनका विहार सर्व सघसहित होता था।

---

१. मज्झिमनिकाय भाग १ पृष्ठ ३७१-३८७

उपरोक्त दीर्घतपस्वी निर्ग्रन्थ मुनि बताये गये हैं और पहिले इन्हींसे म० बुद्धका वार्तालाप हुआ था और इनके कहनेपर ही उपालि भी बुद्धसे उक्त प्रकार बातचीत करने गया था। दीर्घतपस्वीके सम्बन्धमें कहा गया है कि "जब भगवान्‌ नालन्दाके पावारिकाम्रवनमें म० बुद्ध ठहरे हुये थे उस समय आहारोपरान्त दीर्घतपस्वी नामक एक निर्ग्रन्थ (मुनि) उनके निकट जाकर उपस्थित हुआ। बुद्धके कहनेपर वह एक नीचे आसनपर बैठा और परस्पर अभिवादन किया। उपरान्त बुद्धने पूछा, 'पापकर्म करनेके कितने द्वार हैं और वह कितने हैं?" इसके उत्तरमें उन्होंने कहा, 'हमारे निकट द्वार नहीं बल्कि दण्ड मुख्य हैं।' तब बुद्धने पूछा, 'तो निर्ग्रन्थ कितने प्रकारके 'दण्ड' बतलाते हैं?' निर्ग्रन्थ (मुनि) ने उत्तर दिया, 'दण्ड तीन प्रकारके हैं। कायदण्ड वचनदण्ड और मनदण्ड। फिर बुद्धने प्रश्न किया 'क्या यह तीनों एक दूसरेसे भिन्न हैं?' मुनिने कहा, हां, वे भिन्न हैं। इसपर बुद्धने पूछा कि 'इन तीनोंमें सबसे अधिक पापपूर्ण कौनसा है?' उत्तरमें कहा गया कि निर्ग्रन्थोंके अनुसार कायदण्ड अधिक पापपूर्ण है। इसके उपरान्त उन मुनिने बुद्धसे पूछा कि तुम कितने प्रकारका दण्ड बतलाते हो। इसपर बुद्धने उत्तर दिया कि मैं दण्डका प्रतिपादन नहीं करता। मैं कर्म (कर्म=Deed) का उपदेश देता हूं। यह सुनकर निर्ग्रंथ मुनिने कहा कि 'तो तुम कायकर्म वचिकर्म और मनोकर्म उसी तरह मानते हो जिस तरह हम कायदण्ड, वचिदण्ड और मनोदण्ड मानते हैं। ठीक है, परन्तु इन तीनोंमें अधिक पापपूर्ण किसको स्वीकार करते हो?' बुद्धने कहा कि हम मनोकर्मको अधिक पाप-

पूर्ण समझते हैं।' इस तरह पर यह वार्तालाप पूर्ण हुआ।[1]
तपस्सी अपने स्थानपर लौट आये। इसमें तीन डन्डोंका कथन है वह प्राय जैनधर्मके अनुसार ही है। जैनधर्ममें भी यह तीनों डन्ड इसी तरह स्वीकार किये हुये आज भी मिलते हैं। केवल क्रमका अन्तर है, बौद्ध कायडण्टको पहिले गिनाते हैं, जबकि मनडन्ड गिनाना चाहिये। उनके इसी मज्झिमनिकायके पूर्व कथनसे यह बात प्रमाणित है। वहापर भगवान महावीरको मन--कम्म (डन्ड) और काय--कम्म (डन्ड) पर बराबर जोर देते लिखा है।* अस्तु, मज्झिमनिकायमें भगवान् महावीरके विशेषणोंमें यह भी बतलाया है कि वे जानते थे कि किसने किस प्रकारका कर्म किया है और किसने नहीं किया है। (MN PTS Vol II Pt II. pp 224-228)× इससे भी भगवानकी सर्वज्ञताकी सिद्धि होती है। इन सर्वज्ञ भगवान् द्वारा ही अग और मगध देशोंमें पहलेसे प्रचलित सिद्धातवादको नवजीवन प्राप्त हुआ था, यह बात इसी बौद्ध ग्रन्थसे प्रमाणित है। (म० नि० भाग २ पृ० २)।

'मज्झिमनिकाय' में अन्यत्र निगन्थपुत्त सच्चक और बुद्धका कथानक है[2]। कहा गया है कि जिस समय बुद्ध वैशालीमें थे, पाचसौ लिच्छवि कार्यवश सन्थागारमें एकत्रित हुये। इसी स्थानपर निगन्थपुत्त सच्चक पहुचा और यह लिच्छवियोंसे बोला--"आज लिच्छवियोंको आना चाहिये, मैं समन गौतमसे वाद करूगा। यदि

---

१ पूर्ववत * पूर्व भाग १ पृ० २३८ × दी समक्षत्री क्लेन्स ऑफ एन्शियेन्ट इंडिया पृ० ११८। २. मज्झिमनिकाय (P. T S.) भाग १ पृ० २२५-२२६।

समण (श्रमण) गौतम (बुद्ध) मुझे उसी स्थानको प्राप्त करा देंगे जिस स्थानपर सावक (श्रावक) श्रमणोंने मुझे पहुंचाया है तो मैं समण गौतमको बात द्वारा उसी तरह परास्त करूंगा जिस तरह एक बलवान पुरुष बकरीको बालोंसे पकड़ लेता है और उसे जिधर चाहता है उधर घुमाता है।" यही नहीं सच्चकने अन्य सब प्रश्नोंमें भी वक्तव्य लिखके द्वारा वह बुद्धको परास्त करेगा। कतिपय लिच्छवियोंने इसपर उससे पूछा कि समण गौतम निर्ग्रन्थपुत्र सच्चकके प्रश्नोंका उत्तर किस तरह देंगे अथवा वह किस तरह उनके प्रश्नोंका उत्तर देगा ?" अन्योंने भी इसी तरह सच्चकके विषयमें पूछा। अन्ततः सच्चक अपने साथ पांचसौ लिच्छवियोंको बातमें ले आनेमें सफलीभूत हुआ। वह वहां पहुंचा जहां भिक्षुगण इधर उधर घूम रहे थे और उनसे कहा कि "हम गौतम महात्माके दर्शन करनेके इच्छुक हैं। उस समय बुद्ध महावनमें एक वृक्षके नीचे ध्यान करनेके लिये बैठे थे। निर्ग्रन्थपुत्र सच्चक बहुतसे लिच्छवियोंके साथ उनके निकट पहुंचा और पारस्परिक अभिवादन करके जरा दूरीसे एक ओर बैठ गया। कतिपय लिच्छवियोंने बुद्धको प्रणाम किया, कतिपयने पारस्परिक मैत्रीपूर्वक अभिवादन किये और किन्हींने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और वे एक ओर बैठ गए तथापि कतिपय अज्ञात लिच्छवियोंने अपने और अपने कुलोंके नाम प्रकट करके एक ओर आसन ग्रहण किया। कतिपय बिल्कुल मौन रहे और कुछ चुपकेसे बैठ गए। उपरान्त बुद्ध और सच्चकके मध्य देही और आत्मा तथा मौलिकसिद्धान्तोंके सम्बन्धमें बात प्रारम्भ हुआ। सच्चक उसमें परास्त हुआ और बुद्धको अपने घर आहार ग्रहण

करनेके लिए निमत्रित किया। बुद्धने यह आमत्रण स्वीकार कर लिया। लिच्छवियोंको भी इस आमत्रणकी खबर पड़ी और उनसे कहा गया कि जो वस्तु वे देना चाहें खुशीसे ले आयें। प्रात ही लिच्छवि बुद्धके लिये पाचसौ थालिया भोजनकी लाये। सच्चक और लिच्छवियोंने भक्तिभावसे बुद्धको आहार दिया। इस तरह यह कथानक है। सच्चक एक जैनीका पुत्र है परन्तु वह स्वय जैन नहीं है यह इसी ग्रन्थके अन्यत्रके एक उल्लेखसे प्रमाणित है।[1] जेन ग्रन्थोंमें इसके विषयमें कोई चर्चा नहीं है। यद्यपि यह स्पष्ट है कि इस कथानकसे जैनधर्मका अस्तित्व बौद्धधर्मसे पहिलेका प्रमाणित होता है जैसा कि डॉ० जैकोबीने प्रकट किया है। सचमुच जब वह वादी जिसका पिता जैन था, म० बुद्धका समकालीन है, तो यह कदापि सम्भव नहीं है कि जैनधर्मकी स्थापना म० बुद्धके जीवनमें हुई हो, जैसे कि हम अपनी मूल पुस्तकमें भी देख चुके हैं। तथापि सच्चकका यह कथन कुछ तथ्य नहीं रखता कि उसने महावीर-स्वामीको वादमें परास्त किया हो, क्योंकि वह स्वय म० बुद्धसे वादमें पराजित हुआ है, जिनका ज्ञान भगवान महावीरके ज्ञानसे हेय प्रकारका था।[3] इस दशामें वह भगवानसे वाद करनेका घमड नहीं कर सक्ता। यहा भी जैन तीर्थंकरके महत्वको हेय प्रकट कर-नेके लिये बौद्धोंका यह प्रयत्न है।

अन्यत्र मज्झिमनिकायमें म० बुद्ध यह भी मत निर्दिष्ट करते हैं कि सुखसे ही सुखकी प्राप्ति होती है। इसपर वहा जैन मुनि

१ पूर्व पृ० २५० । २. जैन सूत्र (S. B E.) भाग २ भूमिका पृ० २३ । ३ देखो मूल पुस्तक पृ०

इसका विरोध करते हैं वह कहते हैं, "नहीं गौतम, सुखसे सुखकी प्राप्ति नहीं होती, किन्तु कष्ट सहन करनेसे होती है।" (Nay friend, Gotama, happiness is not to be got at by happiness but by suffering).* यहाँ मात्र तपश्चरणको मुख्यता देनेका है; जिसको म० बुद्ध स्वीकार नहीं करते। जैन धर्ममें परमसुख प्राप्त करनेके लिए तपश्चरण भी मुख्य माना गया है। यही मत इस सम्बन्धमें मुनिमहाराज प्रगट करते हैं, सो ठीक है। तपश्चरण स्वयं सुखरूप है इसलिए वह सुखमई मार्ग है। बुद्ध इसको कष्टमय समझते हैं यह उनका भ्रम है। अन्यत्र मज्झिमनिकायमें जैन उल्लेख 'सामगामसुत्त' में और देखनेको मिलता है और वह इस तरह है—

"एकम् समयम् भगवा सक्केसु विहरति सामगामे। तेन खो, पन समयेन निगन्थो नातपुत्तो पावायम् अधुना कालकतो होति। तस्स कालकिरियाय भिन्ना निगन्था द्वेधिकजाता, भण्डनजाता, कलह जाता विवादापन्ना अञ्ञमञ्ञम् मुखसत्तीहि वितुदन्ता विहरन्ति।"

इससे स्पष्ट है कि म० बुद्ध जिस समय सामगाममें ठहरे थे उस समय उन्होंने निर्ग्रंथ नातपुत्र (भगवान महावीर) का निर्वाण पावामें होते देखा था। उपरान्त कहा गया है कि भगवान महावीरके निर्वाणलाभ करनेके बाद निर्ग्रंथ संघमें मतभेद और कलह खड़े हो गये थे जिसके कारण वे दो विभागोंमें विभाजित हो विहार करने लगे। इससे यह समझना ठीक प्रतीत नहीं होता कि भगवानके निर्वाणलाभके समय ही यह दशा उपस्थित हो गई थी,

---

* म० नि० भाग १ पृ० ९२। २ मज्झिमनिकाय भाग २ पृ० २४३।

किन्तु जिस समय राजा अशोकके राज्यकालमें यह बौद्धग्रन्थ सक-लित हुये थे उस समय अवश्य ही यह परस्थिति घटित हो गई थी। इस कारण यदि यहा उक्त प्रकार उल्लेख किया गया है तो कुछ वेजा नहीं है। इससे प्रकट है कि जैनसघमें पूर्ण भेद क्रमश' हुआ था। इस प्रकार मज्झिमनिकायके जैन उल्लेख जो हमारे देखनेमें आए उनका वर्णन है।

अब पाठकगण, आइये बौद्धग्रन्थ 'अङ्गुत्तरनिकाय' में जैन उल्लेखोंका दिग्दर्शन करलें। इसमें एक स्थलपर जैन श्रावकोंकी क्रियायोंका विवेचन किया गया है।[1] उसका अनुवाद इस प्रकार है कि "हे विशाखा! एक ऐसे भी समण है जो निगन्थ कहलाते है। वे एक श्रावकसे कहते है—'भाई, यहासे पूर्व दिशामें एक योजन तक प्राणियोंको पीडा न पहुचानेका नियम ग्रहण करो। इसी तरह यहासे पश्चिम, उत्तर, दक्षिणमें एक योजनतक प्राणी हिंसा न करनेकी प्रतिज्ञा लो।' इस प्रकार वे दयाका विधान कतिपय प्राणि-योंकी रक्षा करनेमें करते हैं, तथापि इमी अनुरूप वे अदयाकी शिक्षा अन्य जीवोंकी रक्षा न करने देनेके कारण देते है।"

यहा बौद्धाचार्य जैनियोंके दिग्व्रतका उल्लेख कर रहा है। इस व्रतके अनुसार एक श्रावक दिशा विदिशाओंमें नियमित स्थानोंके भीतर ही जाने आने और व्यापार करनेका नियम ग्रहण करता है।[2] इसका भाव यह है कि साधारणतया मनुष्योंको कोई रोकटोक कहीं भी आने जानेकी न होनेसे उनके व्यापारादि निमित्त हिंसा

---

१ अगुत्तरनिकाय ३-७०-३। २. रत्नकरण्डश्रावकाचार (मा० प्र०) पृ० ६०।

करनेकी मर्यादा नहीं होती है किन्तु इस नियमको धारण करनेसे यह मर्यादा उपस्थित होजाती है और फिर वह व्यापार निमित्त भी पहलेसे कम हिंसा करनेका भागी होता है। यह ध्यान रखनेकी बात है कि श्रावकको आरंभी हिंसाका त्याग नहीं है वह केवल जानबूझकर हिंसा नहीं करेगा, क्योंकि वह अहिंसाका पालन एकदेश रूपमें करता है। बौद्धाचार्योंने शायद जैनाचारके मामलेको गौण करके उक्त उत्तर भगवानकी शिक्षा देनेका मिथ्या आक्षेप आरोपित किया है। यही बात हैं   इसमें जैकोबी इस सम्बन्धमें जैनसूत्रोंकी भूमिकामें प्रकट करते हैं। वे लिखते हैं:—

We cannot expect one sect to give a fair and honest exposition of the tenets of their opponents, it is but natural that they should put them in such a form as to make the objections to be raised against them all the better applicable. (Jaina Sutras. S. B. E. Pt. II. Intro. XVIII).

भावार्थ—यह आशा नहीं की जासकती है कि एक सम्प्रदाय अपने विपक्षी सम्प्रदायकी मान्यताओंका यथार्थ विवेचन करे। यह स्वाभाविक है कि वे उनको ऐसे विकृतरूपमें रक्खें कि जिससे उनपर अधिकसे अधिक आरोप लगाये जासकें। इस प्रकार बौद्ध ग्रन्थोंमें जो उक्त प्रकार जैन नियम 'निग्गंठ' पर लांछन लगाया गया है, वह ठीक नहीं है। तथापि यह प्रत्यक्ष है कि यह नियम भगवान् महावीरके समयसे लगातार चलते अविकृतरूपमें हमको मिल रहा है।

अगाड़ी उक्त सूत्रोंमें कहा गया है कि "निग्गंठके शिष्य (निग्रन्थ) एक श्रावक (श्रावक)से प्रेरणा करते रहते हैं—यथा,

तुम अपने सब वस्त्र उतार डालो और कहो, न हम किसीके हैं, और न कोई हमारा है। परन्तु उसके माता पिता उसे अपना पुत्र जानते हैं और वह उन्हें अपने मातापिता जानता है। उसके पुत्र या पत्नी उसे क्रमश अपना पिता या पति मानते हैं और वह भी उनको अपना पुत्र अथवा पत्नी जानता है। उसके नौकर चाकर उसे अपना मालिक मानते हैं और वह उन्हें अपने नौकर-चाकर जानता है इसलिये (निगन्थगण) उससे उस समय असत्य भाषण कराते हैं, जब वे उससे उपर्युक्त वाक्य कहलाते है। इस कारण मैं उनपर असत्य भाषणका आरोप करता हू। उस रात्रिके उपरात वह उन वस्तुओंका उपभोग करता है जो उसे किसीने नही दी है, इस कारण मै उसपर उन वस्तुओंको ग्रहण करनेका लाछन लगाता हू जो उसे नहीं दी गई हैं।"[1]

यहा बौद्धाचार्य जैन श्रावकके प्रोषधोपवासका उल्लेख कर रहे हैं किन्तु इसमें भी उन्होंने उक्त प्रकार चित्र चित्रण किया है। जिस समय श्रावक प्रोषधोपवास कालके लिये उक्त प्रकार प्रतिज्ञा करता है उस समय वह सासारिक सम्बन्धोंसे बिल्कुल ममत्व हटा लेता है और उसकी वह प्रतिज्ञा उसी नियत कालके लिये थी; इस कारण उसपर असत्य भाषण और अदत्त वस्तुओंको ग्रहण करनेका आरोप युक्तियुक्त नहीं है किन्तु बौद्ध ग्रन्थके उक्त वर्णनसे यह प्रतिभाषित होता है कि प्रोषधके दिन श्रावककी चर्या बिल्कुल मुनिवत होजाती है, उसे सब वस्त्र उतारकर मोहको हटानेवाली उक्त प्रकारकी प्रतिज्ञा करने बताई गई है। परन्तु जैन शास्त्रोंमें

१. अंगुत्तरनिकाय ३-७०-३ और जैनसूत्र भाग २ भूमिका।

इस प्रकार वर्णन इस प्रकार किया है। 'रत्नकरण्डश्रावकाचार' में यह इसप्रकार बतलाया गया है —

'पर्वण्यष्टम्यां च ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु ।
चतुरभ्यवहार्याणां प्रत्याख्यानं सदेच्छाभिः ॥ १६ ॥
पंचानां पापानामलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणाम् ।
स्नानांजननस्यानामुपवासे परिहृतिं कुर्यात् ॥ १७ ॥
धर्मामृतं सतृष्णः श्रवणाभ्यां पिबतु पाययेद्वान्यान् ।
ज्ञानध्यानपरो वा भवतूपवसन्नतन्द्रालुः ॥ १८ ॥'

भावार्थ—पर्वणि (चतुर्दशी) और अष्टमीके दिनोंमें सदेच्छासे जो चार प्रकारके आहारका त्याग किया जाता है उसे प्रोषधोपवास समझना चाहिये। उन उपवासके दिनोंमें हिंसादि पंचपापोंका अलंकार, पुष्पगंध आदि धारण करनेका, वाणिज्य व्यापार आदि प्रकारके आरंभका तथा स्नानांजनादि त्याग अवश्य परित्याग करना चाहिये। इनका परित्याग करके उन दिनोंमें धर्मामृतका पान सतृष्ण हो स्वयं करे एवं धर्मात्माओंको कराने और ज्ञानध्यानमें लीन होकर द्वादशानुप्रेक्षाओंका चिंतवन करे। इसमें यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि ज्ञान ध्यानके समय उस श्रावकको नग्न मूर्तिमं योग धारण करना चाहिये अथवा आचार्यके उपदेशसे मोह दूर करनेवाला वस्त्र उतारकर मध्याह्नमें कायोत्सर्ग करना चाहिये, जैसे कि उक्त श्वेत उद्धरणमें कहा गया है। परन्तु सागारधर्मामृतजीमें स्पष्ट यह कह दिया गया है कि रात्रिके समय वह श्रावक यदि मायोग (नग्न होकर) धारण करके कायोत्सर्ग कर सकता है। यथा—

' निशां नयंतः प्रतिमायोगेन दुरितच्छिदे ।
ये क्षोभ्यंते न केनापि तान्नु मस्तुर्ये भूमिगात ॥ ७ ॥
अ० ७ श्लोक ७ पृष्ठ ४२१ ।

इससे बौद्ध उद्धरणके उक्त कथनका एक तरहसे समर्थन होता है। बौद्ध उद्धरणमें रात्रि और दिनका भेद नहीं किया गया है। संभव है कि समयानुसार इस क्रियामें ढिलाई कर दी गई हो और आज तो इसका उल्लेख भी मुश्किलसे मिलता है। परन्तु उस प्राचीन समयमें इस शिक्षाव्रतके अनुसार नग्न होकर कायोत्सर्ग करना बहुत प्रचलित था। सेठ सुदर्शनके सम्बन्धमें हमें स्पष्ट बतलाया गया है कि उन्होंने नग्न होकर कायोतसर्ग किया था। यही बात अन्य कथओंसे भी सिद्ध है। प्रभाचद्रजी अपनी 'रत्नकरण्ड'की टीकामें ऐसा ही उल्लेख करते मालूम होते हैं, यथा—'मगधदेशे राजगृह-नगरे जिनदत्तश्रेष्ठी कृतोपवास कृष्णचतुर्दश्या रात्रौ स्मशाने कायोत्सर्गेण स्थितो दृष्ट । ततोऽमितप्रभदेवेनोक्तम्। दूरे तिष्ठतु मदीया मुनयोऽमु गृहस्थ ध्यानाच्च ?येति ।' अतएव बौद्धोंका उक्त कथन तथ्यपूर्ण है। इसमें कोई संशय नहीं कि ये व्रत श्रावकको त्याग अवस्थाकी शिक्षा देनेके उद्देश्यसे नियत हैं। इसलिए उनमें उक्त प्रकार नग्न होकर कायोत्सर्ग करनेका विधान होना युक्तियुक्त है।

इसी निकायमें अन्यत्र एक सूची उस समयके साधुओंकी दी है और उसमें निगन्थोंकी गणना आजीवकोंके बाद दूसरे नम्बरपर की है, सो इससे भी जैनधर्मकी प्राचीनता स्पष्ट है। यह सूची इस प्रकार है —

(१) आजीवक, (२) निगन्थ, (३) मुण्ड—सावक, (४)

नग्गिक, (५) परिब्राजक, (६) मागंडिक, (७) तेदण्डिक, (८) अविरुद्धक, (९) गोतमक, (१०) और देवधम्मिक।*

इनमें से ३ और से १ की व्याख्या करते हुये बुद्धघोषने निग्रन्थोंको ग्रन्थियोंरहित और पासपुत्रके अनुयायी साधु संघ लिखा है तथा यह भी लिखा है कि वे एक लंगोटी धारण करते हैं। इसके साथ ही बुद्धघोषने मुण्ड सावकोंकी व्याख्या भी इन्हींमें की है। यहां बौद्धाचार्य बुद्धघोष ऐलक, क्षुल्लक और व्रती श्रावकोंका उल्लेख कर रहे हैं; क्योंकि यदि यहां निर्ग्रन्थ मात्र मुनिसे होता तो उन्हें लंगोटी धारण करनेवाला वह व्यक्त नहीं करते; जब कि वह अपनी अन्य रचनाओं (धम्मपदत्थकथा आदि) में जैन मुनियोंको नग्न प्रकट कर रहे हैं। बिमल बुद्धघोष मात्र ईसाकी पांचवी शताब्दिके विद्वान् हैं जो उनके समय श्वेताम्बर भेद भी जैन संघमें होगया था और इस दशामें संभव भी है कि वह श्वेताम्बर संप्रदायके वस्त्रधारी मुनियोंका उल्लेख करते होते परन्तु यह भी ठीक नहीं बैठता क्योंकि वे साधु केवल लंगोटी धारण नहीं करते और फिर वह साथ ही लंगोटीधारी निर्ग्रन्थके साथ मुण्ड सावक-निर्ग्रन्थका भी उल्लेख कर रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि वे प्राचीन जैन संघके ऐलक और व्रती श्रावकोंका उल्लेख कर रहे हैं, जैसे कि दिगम्बर शास्त्र प्रकट करते हैं। अथवा यह वक्तव्य कि 'श्रेष्ठ निग्रन्थ' (Better Nigathas) जो कहा करते थे, वे कहते हैं कि हम अपने कमण्डलको ढक लेते हैं कि नहीं जीवधारी

* Dialogues of the Buddha S. B. B. Vol. II Intro. to Kassapa-Sihanada Sutta.

पृथ्वीके कण, उसमें न गिरें,+ यह स्पष्ट कर देता है कि बुद्धघोष उक्त उद्धरणमें जैन मुनि और उत्कृष्ट श्रावक ऐलकका भेद ही प्रगट कर रहे हैं। अस्तु।*

अंगुत्तरनिकायमें अन्यत्र एक दूसरा उल्लेख है, उससे भी भगवानके सर्वज्ञ होनेकी पुष्टि होती है। लिखा है कि "जब आनंद (बुद्धके मुख्य शिष्य) वैशालीमें थे, तब अभय[1] नामक लिच्छवि राजकुमार और पंडितकुमार नामक लिच्छवि आनन्दके पास आये। अभयने आनन्दसे कहा कि 'निर्ग्रन्थ नातपुत्त (भगवान महावीर) सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है। वह ज्ञानके प्रकाशको जानते हैं (अर्थात् केवलज्ञानी है)। उन्होंने जाना है कि ध्यानद्वारा पूर्व कर्मोको नष्ट किया जासक्ता है। कर्मोके नष्ट होनेसे दुःखका होना बन्द होजाता है। दुःख (Suffering) के बन्द होजानेसे हमारी विषयवासना नष्ट होजाती है और विषयवासनाके क्षय होजानेसे संसारमें दुःखका अन्त होजाता है।"[2]

\+ Dhammapadam, Fausboll, P 398 * यद्यपि 'मुण्डक श्रावक' का अर्थ बुद्धघोषके अनुसार हमने क्षुल्लक-ऐलकसे लिया है, किंतु डॉ० बं० एम० बाढ़आ अपनी 'प्री-बुद्धिष्टिक इन्डियन फिलासफी' नामक पुस्तकमें 'मुण्ड-श्रावक' सम्प्रदायको 'मुण्डक उपनिषद्' के परिव्राजक बतलाते हैं। बुद्धघोषने इनका स्वतंत्र उल्लेख किया है, इसलिए इनका स्वाधीन परिव्राजक होना बहुत संभव है। किन्तु इनका कुछ सम्पर्क निर्ग्रन्थोंसे होगा। इसलिए उसने उनकी गणना निर्ग्रन्थोंमें की है।

१ यह अभय सम्राट् श्रेणिकके पुत्र अभयकुमारसे भिन्न है, ऐसा डॉ० जेकोबीने प्रकट किया है। (जैनसूत्र भाग २ की भूमिका)

२ P. T S Vol I. pp 220-221

चकोंने इस अभिजाति सिद्धातको प्रकट किया था तथा इसके द्वारा मनुष्य समाजको छै अभिजातोमें विभक्त किया था।[1] हलिद अभिजातिमें आजीवक श्रावकोंको रक्खा था, शुक्लमें आजीवक भिक्षु–भिक्षुणियोंको एव आजीवक नेताओंको परमशुक्ल अभिजातिका बतलाया था। उपरोक्त उद्धरण इनके उपरात आया है। अतएव इससे यहापर भाव आजीविक सिद्धातके मनुष्य विभागसे है। अगुत्तरनिकायमें यह अभिजाति सिद्धात भ्रमवश पूरणकस्सपका बतलाया गया है किन्तु वास्तवमें यह आजीवकोंका है और उन्होंने अपने श्रावकोंको हलिद अभिजातिमें रखकर निगन्थों (जैनों) के उत्कृष्ट श्रावकको लोहिताभिजातिमें रक्खा है। सचमुच यदि निगन्थ सम्प्रदाय उस समय ही स्थापित हुई होती तो उसका उल्लेख इसप्रकार होना कठिन था। इसतरह यह अगुत्तरनिकायके उल्लेख है।

'दीघनिकाय' में भी कतिपय जैन उल्लेख हमारे देखनेमें आये हैं। एक स्थानपर उसमें उस समयके प्रख्यात मतप्रर्वतकोंका वर्णन करते हुये भगवान महावीरके सम्बधमें भी राजा अजातशत्रुके मुखसे कहाया गया है कि —

"अञ्ञतरो पि खो राजामच्चो राजानाम् मगधम् अजातसत्तुम् वैदेही पुत्तम एतद अवोच 'अयम् देव निगन्ठो नातपुत्तो सघी चेव गणी च गणाचार्यो च ञातो यसस्सी तित्थकरो साधु सम्मतो वहुजनस्स रत्तस्सू चिर–पब्बजितो अद्धगतो वयो अनुप्पत्ता।[2]

१ अंगुत्तनिकाय भाग ३ पृष्ट ३८४. २. दीघनिकाय (P. T. S) भाग १ पृष्ट ४८–४९

संघाचार्य—यह संघके नेता हैं, गणाचार्य हैं, दर्शन विशेषके प्रणेता हैं, विशेष विख्यात हैं, तीर्थंकर हैं मनुष्यों द्वारा पूज्य हैं, अनुभवशील हैं बहुत कालसे साधु अवस्थाका पालन कर रहे हैं, और अधिक वय प्राप्त हैं। यह वर्णन प्रायः ठीक ही है। इसके अतिरिक्त अन्यत्र इसी निकायमें एक 'पाटिकसुत्त' नामक सुत्तमें जैन विवरण है। उससे प्रकट है कि म० बुद्धके जीवनमें ही भगवान् महावीरका निर्वाण होचुका था।

इसी सुत्तमें एक कन्दर मसुक नामक मुनिका उल्लेख है। इन्होंने जो नियमित विधानोंमें चलनेकी प्रतिज्ञा की थी उससे प्रतिभाषित होता है कि वह जैन मुनि थे। जैन मुनि ऐसे नियम पालन करते हैं यद्यपि बौद्ध कहते हैं कि लिच्छवियोंको खुश करनेके लिये इन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी। मूल इसप्रकार दिया हुआ है।

"एकम् इदम् भन्ते समयम् वेसालियम् विहरामि महावने कूटागार-सालायम्१। तेन खो पन समयेन अचेलो कन्दरमसुको वेसालियम् पटिवसति लाभग्ग-प्पत्तो च एव यसग्ग पत्तो च वज्जि गामे। तस्स सत्तवत-पदानि समत्तानि समादिन्नानि होन्ति— यावजीवम् अचेलको अस्सम् न वत्थम् परिदहेय्यम्, यावजीवम् ब्रह्मचारी अस्सम् न मेथुनम् पटिसेवेय्यम्, यावजीवम् सुरा-मांसेन एव यापेय्यम्, न ओदन कुम्मासम् भुञ्जेय्यम्, पुरत्थिमेन वेसालियम् उदेनम् नाम चेतियम् तम् नातिक्कमेय्यम्, दक्खिणेन वेसालियम् गोतमकम् नाम चेतियम् तम् नातिक्कमेय्यम्, पच्छिमेन वेसालियम् सत्तम्बम् नाम चेतियम् तम् नातिक्कमेय्यम्, उत्तरेन वेसालियम् बहुपुत्तम् नाम

---

१. दी० नि० (P T S) भाग ३ पृष्ठ १-३५

चेतियम् तम् नातिक्कमेय्यम् न ति।' सो इमेसम् सत्तन्नम् वत्त-पदानम् समादान हेतु लामग्ग प्पत्तो च एव यसग्ग प्पत्तो च वज्जिगामे।" दीघनिकाय (P. T. S) भाग ३ पृष्ठ ९-१०।

इसमें पहिले अचेलक होकर यावज्जीवम् ब्रह्मचर्य धारण सुरा मांस त्याग आदिकी प्रतिज्ञा की हुई बतलाई गई है। सम्भव है कि पहिले कन्डरमसुक जैन साधु होगा अथवा भ्रष्ट मुनि होगा। इसलिए उपरांत उसने ऐसी प्रतिज्ञा की। जो हो, इतना स्पष्ट है कि इसमें जो प्रतिज्ञायें की गई हैं वह जैन मुनिकी चर्यामें मिलती हैं। अस्तु, 'दीघनिकाय' के 'पासादिक सुत्तन्त' और 'संगीत सुत्तन्त' में भी जैन उल्लेख हैं। उनसे भी यह स्पष्ट है कि भगवान महावीरका निर्वाण म० बुद्धके जीवनकालमें होगया था। पासादिक सुत्तन्त' में यह इसप्रकार है —

"एकम् समयम् भगवा सक्केसु विहरति। (वेधञ्ञा नाम सक्या, तेसम् अम्बवने पासादे), तेन खोपन समयेन निगन्टो नाथपुत्तो पावायम् अधुना कालकतो होति। तस्स कालकिरियाय भिन्ना निगन्ठ द्वेधिक जाता, भण्डन जाता, कलह जाता, विवादापन्ना अञमञम् मुख सत्तीहि वितुदन्ता विहरन्ति 'न त्वं इम धम्म विनय आजानासि? अहं इम धम्म-विनय आजानामि, किं त्वं इम धम्म विनय आजानिस्ससि!' मिच्छा पटिपन्नो त्वं असि, अहं अस्मि सम्मा पटिपन्नो, सहितम् मे, असहितन् ते, पुरे वचनीय पच्छा अवच, पच्छा वचनीय पुरे अवच, अविचिण्णन ते विपरावत्त आरोपितो ते वादो, निग्गहीतो सि चर वादप्पमोक्खाय, निब्बेठेहि वा सचे पहोसीति।' वधो एव खो मञ्ञे निगन्ठेसु नाथपुत्तियेसु वत्तति। ये

पि निगण्ठस्स नातपुत्तस्स सावका गिही ओदातवसना, ते पि निगण्ठेसु नातपुत्तियेसु निब्बिन्नरूपा विरत्तरूपा पटिवानरूपा, यथा तं दुरक्खाते धम्मविनये दुप्पवेदिते अनिय्यानिके अनुपसमसंवत्तनिके असम्मासम्बुद्धप्पवेदिते भिन्नथूपे अप्पटिसरणे।" (P T S Vol. III P 117 118).

इसका भाव यही है कि जिस समय म० बुद्ध विहार कर रहे थे उस समय पावामें निगन्थ नातपुत्र (महावीरस्वामी)का निर्वाण होगया था। इसके बाद निगन्थ संघमें भेद खड़ा हो गया और मुनिगण यह कहते आपसमें झगड़ते फिरते थे कि 'तुम धर्मका स्वरूप नहीं जानते यह वैसे ठीक है जैसे हम कहते हैं।' इस तरह मुनिजनको आपसमें झगड़ते देखकर लोकमत यानी निगन्थ श्रावक बड़े खेदखिन्न होरहे थे।

ऐसा ही उल्लेख मज्झिमनिकायमें भी है जिसका दिग्दर्शन हम पहिले कर चुके हैं। अशोकके जमानेके 'संगीति सुत्तन्त' (अ० १ ९-११)में भी यही उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि पहले जैन संघ एक था। भगवान् महावीरके निर्वाणके उपरांत ही उसमें झगड़ा खड़ा हुआ था। कितने काल उपरांत? यह इन उल्लेखोंसे स्पष्ट नहीं है; किन्तु श्वेताम्बरियों और दिगम्बरोंके अंतिम श्रुतकेवली तक दिग० और श्वे० दोनों ही एकमत हैं तब यह स्पष्ट है कि उस समय तक यह मतभेद अथवा झगड़ा जैनसंघमें खड़ा नहीं हुआ था। श्रुतकेवली भद्रबाहुके समयमें ही यह दुष्कर घटना घटित हुई थी और यहींसे परस्पर विद्वेषभाव बढ़ गया था। यह समय चन्द्रगुप्तके राज्यके अंतिम अथवा किंचित् उपरान्त अवश्य

है। इस अवस्थामें सम्राट् अशोकके राजत्व कालमें एकत्रित और मार्मित हुये उपरोक्त बौद्धसुत्तोंमें इसप्रकार जैन मुनियों–आचार्योंका परस्पर झगड़नेका उल्लेख होना युक्तियुक्त ही है। उस उद्धरणमें श्वेतवस्त्रधारी जैन श्रावकोंका भी उल्लेख है, जो जैन संघमें व्रती श्रावकके रूपमें होते ही हैं। इस तरह इस उल्लेखका खुलासा है।

इनके अतिरिक्त 'संयुत्तनिकाय' में भी एक विषय उल्लेखनीय है।[1] उसमें एक स्थलपर कहा गया है कि "भगवान महावीरने हिंसा, चोरी, झूठ, अब्रह्मचर्य और मादक वस्तु सेवनके त्यागका उपदेश दिया है तथा कहा है कि जितने समयतक किसी व्यक्तिने जीव वध किया हो, उस समयसे अधिकतक यदि वह दयाधर्मका अभ्यास करे और उसका समाधिमरण भी उस समयसे अधिक हो तो वह व्यक्ति नर्कमें नहीं जायगा।"[2] इसमें बहुत कुछ अयथार्थ वर्णन किया गया प्रकट होता है। भगवान महावीरने जिन पांच पापोंका त्याग करनेका उपदेश दिया था, उनमें पांचवां मद्यपान त्याग न होकर परिग्रहपरिमाण व्रत था। मद्यपान त्यागका समावेश तो प्रथम व्रत हिंसा–त्यागमें होचुका है।[3] वस्तुतः जिसप्रकार पांच बातोंका त्याग यहां बताया गया है वह स्वयं बौद्धधर्ममें स्वीकृत है। तथापि इसके उपरान्त जो समाधिमरण आदिकी बात कही गई है, वह भी ठीक है। इसके अतिरिक्त 'संयुत्तनिकाय' में कहा गया है कि प्रख्यात ज्ञात्रिक महावीर बतला सक्ते थे कि उनके शिष्य कहां पुनः जन्मे थे और उनमेंसे मुख्य कहां उत्पन्न हुआ था। (S N.

१ संयुत्तनिकाय भाग ४ पृष्ट ३१७. २ हिस्टोरिकल ग्लीनिंग्स पृष्ट ८०. ३ रत्नकरण्ड (मा० ग्रं०) पृष्ट ४३.

P T S. IV 398)। इससे भी भगवानकी सर्वज्ञता प्रमाणित है। उसमें यह भी लिखा है कि ज्ञातिक सभी एक भिक्षु, चार याम संवरसे सुरक्षित, देखी और सुनी बातोंके बतानेवाले और जनता द्वारा बहु मान्य थे।* इतनेपर भी इसमें भ० महावीरको म० बुद्धके तुल्य नहीं बतलाने× में पक्षपातसे काम लिया है। अगाड़ी इस निकायमें लिखा है कि जिस समय निगन्थ नातपुत्त महावीर संघसहित मच्छिकासण्डमें ठहरे हुए थे उससमय गृहपति चित्तो नामक नमीस्थार उनके निकट आया और उनको नमस्कार की। भगवानने उससे कहा कि 'क्या तुझे विश्वास है कि श्रमण गौतम (बुद्ध) का ध्यान अवितर्क और अविचार वाला है और उसने वितर्क और विचारको नष्ट कर दिया है?' गृहपति-चित्तो बोला कि उसे इसमें विश्वास है, इसी कारण वह बुद्धके पास नहीं गया है। यह सुनकर निगन्थ नातपुत्तने अपने शिष्योंसे कहा कि 'देखो शिष्यो! गृहपति चित्तो कितना सरल और सज्जन है!' तब चित्तोने नातपुत्तसे पूछा कि श्रद्धा और ज्ञानमें कौन मुख्य है? नातपुत्तने कहा कि 'ज्ञान मुख्य है।' इसपर चित्तो बोला कि 'मुझे चारों ध्यान प्राप्त करनेकी इच्छा है।' यह सुनकर निगन्थ नातपुत्त अपने शिष्योंसे बोले कि 'देखो, चित्तो गृहपति कैसा शठ और मायावी है!' तदुपरान्त चित्तोको महावीरकी शिक्षाका गौ बहुत था यह मालूम होगया और वह बुद्ध जी मनोहर करके चला गया। (सं० नि० P T S. भाग ४ पृ० २९८)।

१ * डी बुद्ध ओर दी जिन्स लेनाम का १ पृ० ५८ × दे० नि० P T S. भाग १ पृ० ५८.

समें यद्यपि भगवान महावीरके प्रति सद्भाव नहीं रक्खे गए हैं; रन्तु इसमें जिन सिद्धातोंका उल्लेख है वह आज भी जैनधर्ममें मिलते हैं। तत्वार्थाधिगम् सूत्रके ९वें अध्याय श्लो० ४१-४३-४४ में अवितर्क और अविचार श्रेणिके ध्यान और वितर्क एव वीचार शब्दोंका अर्थ क्रमश दिया हुआ है। यह पहले दो प्रकारका शुक्लध्यान है। इसतरह जैनधर्मके प्राय. सब ही सिद्धान्त आजतक अपने प्राचीन रूपमें मिलते हैं-यह इसकी सैद्धांतिक पूर्णताका प्रत्यक्षप्रमाण है। अस्तु,

'दीघनिकाय' की टीका 'सुमगलविलासिनी' में भी कतिपय जैन उल्लेख हमारे देखनेमें आये हैं। उसमें एक स्थानपर जनियोंकी इस मान्यताका स्पष्ट उल्लेख है कि सचित्त जलमें भी जीव है।[1] उसमें इसका स्थापन इन शब्दोंमें किया गया है-"सो किर सीतोदके सत्तसञ्ञी होति।[2] अर्थात् ठंडे जलमें जीव होते है। इसी कारणसे जैन मुनि शीत जलका व्यवहार नहीं करते हैं, क्योंकि वे अहिंसाव्रतका पूर्ण पालन करते हैं। इससे प्रकट है कि जैनियोंकी यह मान्यता बहुत प्राचीन है। उपरान्त इसी बौद्ध ग्रन्थमें अगाड़ी आत्मा सम्बन्धी जैन मान्यताका उल्लेख है। उसमें जैन दृष्टिसे आत्माका स्वरूप (अरूपी अत्ता सण्णी)[3] अरूपी और सञ्ञी (उपयोगमई=Concsious) बतलाया है और यह ठीक ही है। जैन ग्रन्थोंमें आत्मा अपनी स्वाभाविक अवस्थामें अरूपी और ज्ञानदर्शन पूर्ण बतलाई गई है।

---

१. हिस्टोरीकल ग्लीनिंग्स पृष्ट ८१. २ सुमंगलविलासिनी पृष्ठ १६८ ३ सु० वि० पृष्ठ ११८ (P T S)

किन्तु इसमें जो अगाड़ी 'अरोगो' (रोगरहित) बताया है; उसका भाव क्या है यह सहसा समझमें नहीं आता तो आश्चर्य नहीं किन्तु यह उनका आत्माका अस्तित्व मृत्यु उपरान्त रहता है यह निर्दिष्ट करते हुये बतलाया गया है। अतएव इस व्याख्यामें यह स्पष्ट हो जाता है कि बौद्धाचार्य यहांपर आत्माकी संसार अवस्थाको लक्ष्य करके कह रहा है कि इस दशामें भी वह संसार-परिभ्रमणमें रोग आदिसे अछूता रहता है। वास्तवमें जैनियोंका भी यह विश्वास है कि सांसारिक दुख-सुखमें उसका आत्मा भिन्न है। उसे न दुःख सताता है न इंद्रियसुख आनन्द पहुंचाता है, वह अपने स्वभावमें स्वयं पूर्ण सुखरूप है। यही भाव पूज्यपादस्वामी निम्न श्लोकके द्वारा प्रगट करते हैं-

'न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं न युवैतानि पुद्गले ॥२९॥'[1]

भावार्थ-'मुझमें जो 'मैं' आत्मा हूं, वह मैं न मृत्युका स्थान हूं, फिर भला मुझे मृत्युसे क्या भय होना चाहिये? तथापि न मेरेमें रोगको स्थान प्राप्त है, इसलिए कोई भी वस्तु मुझे पीड़ा नहीं पहुंचा सकती। फिर न मैं बालक हूं, न मैं वृद्ध हूं, न मैं युवक हूं। यह सब बातें तो पुद्गलसे सम्बंध रखती हैं। जैनियोंके इसी भावको बौद्धाचार्यने उक्त प्रकार व्यक्त किया है।

अगाड़ी इस 'विसुद्धिमग्ग' में कहा गया है कि भगवान महावीरकी मान्यता है कि आत्मा और लोक ('अत्ता च लोको च') दोनों ही नित्य हैं। यह किसी नवीन पदार्थको जन्म नहीं देते

१ इष्टोपदेश २९.

हैं। वह उसी तरह स्थिर है जिस तरह पर्वतकी शिखर अथवा एक स्थम्भ हैं।[1] यह भी आत्मा और लोकके मूल स्वभावको लक्ष्य करके ठीक ही है। जैन दर्शनमें यह इसी तरह स्वीकृत है; जैसे कि हम अन्यत्र पहले मूल पुस्तकमें देख चुके हैं।[2]

अगाड़ी डायोलॉगस ऑफ बुद्धमें जो जैन उल्लेख हमें प्राप्त हुये वे इसप्रकार हैं।[3] पहले तो 'ब्रह्मजालसुत्त' में 'नहा नित्यवादियों' (Eternalists)का वर्णन है, वह सचमुच जैनियोंकि प्रति कहा गया प्रतीत होता है। कहा गया है कि "भिक्षुओ, पहिले ही एक ऐसे ब्राह्मण अथवा समण हैं जो प्रयत्न और तीक्ष्ण विचार आदि द्वारा हृदय आल्हादकी उस अवस्थामें पहुचते हैं जिसमें वह हृदयमें लीन हो जाकर अपने मन द्वारा पूर्वभवोंका एक, दो, तीन, चार, पांच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ, हजार, बल्कि लाख पूर्वभवोंका स्मरण करते हैं। उस स्मरणमें जानते हैं कि 'तब मेरा यह नाम था.. और मैं इतने वर्ष जीवित रहा था। वहांसे मृत्यु होनेपर मेरा जन्म यहां हुआ है।' इस तरह वह पूर्वस्मरण अपने पहलेके घर आदिके रूपमें कर लेता है और फिर वह विचारता है कि "जीव नित्य है; लोक किसी नवीन पदार्थको जन्म नहीं देता है। वह पर्वतकी भांति स्थिर है स्थम्भकी तरह नियत है और यद्यपि यह जीवित प्राणी संसारमें परिभ्रमण करते हैं और मरणको प्राप्त होते हैं, एक भवका अन्त करके दूसरेमें जन्मते हैं, तो भी वे हमेशाके हमेशा वैसे ही रहते हैं। इत्यादि।"

1. सु० नि० (P. T. S.) पृ० १११, २९६। 3 Dialogues of the Buddha. S. B. B. Series.

यहां बौद्धाचार्यने स्पष्ट रीतिसे उस धर्मका उल्लेख नहीं किया है जिसके सम्बन्धमें वह यह वर्णन कर रहा है, किन्तु जो वर्णन उन्होंने जीव और लोककी नित्यतामें किया है वह ठीक जैनधर्मके अनुसार है। अपनी मूल पुस्तकमें हम पहिले ही जैनियोंके इस मान्यताका दिग्दर्शन कर चुके हैं। जैन पुराणोंमें इसी तरहसे पूर्वभव स्मरण और जातिस्मरणके उल्लेख हमको मिलते हैं। तथापि विशेष ज्ञानधारी मुनिगण व्यक्तियोंके पूर्वभवोंका वर्णन करते मिलते हैं। इसके लिए जैनियोंके 'महापुराण' 'उत्तरपुराण' आदि ग्रंथ देखना चाहिये। उक्त विवरणमें बौद्धाचार्यने अगाड़ी जैनियोंकी इस मान्यताको निस्सार बतलाया है, किन्तु उस समय वह उनकी 'निश्चय' और 'व्यवहार' नयोंको भूल गया। 'निश्चय-नय'की अपेक्षा जीव और लोक नित्य हैं, परन्तु 'व्यवहारनय'की दृष्टिसे ये दोनों अनित्य भी हैं। इस कारण जैनियोंका यह सिद्धान्त बाधित भी नहीं है। फिर यह भी ध्यानमें रखनेकी बात है कि यहां म० बुद्ध अन्य मतप्रवर्तकोंके सिद्धान्तोंकी आलोचना करते हैं, जो उनसे पहिलेसे चले आते थे। इस अपेक्षा उक्त प्रकार जैन सिद्धान्तका उल्लेख इस आलोचनामें होना जैनधर्मकी प्राचीनताका द्योतक है। इससे यह भी स्पष्ट है कि भगवान पार्श्वनाथके तीर्थमें भी यह सिद्धान्त उसी रूपमें प्रचलित था जैसे कि आज जैन शास्त्रोंमें मिलता है। तथापि इसके साथ ही जैन शास्त्रोंके वर्णनकी सत्यता और प्राचीनता प्रगट है।

इस सूत्रकी चौथी आलोचना तक इस ही [1]सिद्धान्तका व्यक्ति

---

१ पद्म पुराण प्र-

पादन किया गया है और बतलाया गया है कि तर्कवादसे वे श्रमण और ब्राह्मण इस सिद्धान्तको सिद्ध करते हैं। सो यह सब कथन भगवान पार्श्वनाथके तीर्थके मुनियोंसे लागू है। इस तीर्थके कतिपय मुनिगण प्रथम उल्लेखकी तरह आत्मवादकी सिद्धि करते प्रतीत होते हैं और चौथेमें जो तर्कवादसे इस सिद्धातको प्रमाणित करनेवाले मुनि बतलाये गये हैं, उनसे भाव 'वादानुपूर्वी' मुनियोंसे होना प्रतीत होता है। जैन शास्त्रोंमें अलग२ प्रकारके मुनियोंका अस्तित्व प्रत्येक तीर्थंकरके संघमें बतलाया गया है। भगवान पार्श्वनाथजीके संघमें इनकी संख्या इस तरह बतलाई है —

"प्रथम स्वयम्भु प्रमुख प्रधान। दस गनधर सर्वागम जान॥
पूरवधारी परम उदास। सर्व तीनसै अरु पंचास ॥२८३॥
सिष्य मुनीसुर कहे पुरान। दसहजार नौसे परवान॥
अवधिवंत चौदहसै सार। केवलग्यानी एकहजार ॥२८४॥
विविध विक्रिया रिद्धि वलिष्ट। एकसहस जानो उत्कृष्ट॥
मनपर जय ग्यानी गुनवंत। सात सतक पंचास महंत ॥२८५॥
छसै वादविजयी मुनिराज। सब मुनि सोलहसहस समाज॥
सहस छत्तीस अर्जिका गनी। एकलाख श्रावक व्रतधनी।२८६।"[1]

इनमेंके अवधिज्ञानी, मन पर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी मुनिराज पूर्वभवोंका दिग्दर्शन स्वय कर सक्ते हैं। और दूसरोंको बतला सक्ते हैं। इनके उपदेशसे भव्योंको श्रद्धान होना लाजमी ही है। वादानुपूर्वी मुनिजन वादद्वारा अपने पक्षकी सिद्धि अर्थात् उक्त जैन सिद्धान्तकी प्रमाणिकता स्थापित करते थे। इन्हीं मुनियोंका

---

१. पार्श्वपुराण.

और जब वह इस चतुर्यामसंवरसे युक्त है, तब इसीलिये वह निगन्थो, गतत्तो, यतत्तो और थितत्तो कहलाते हैं।"[1]

ठीक इस ही प्रकारके उल्लेख दीघनिकाय, अङ्गुत्तरनिकाय और मिलिन्दपन्हमें भी आये हैं। यहां निर्ग्रन्थ (जैनमुनि) के साधु जीवनका महत्व प्रदर्शित किया गया है। इसपर प्राच्यविद्याविशारदोंमें विशेष मतभेद प्रचलित है। कोई इसका भाव कुछ लगाते हैं और कोई कुछ। सचमुच विधर्मी विद्वानोंके लिए यह सुगम नहीं है कि वह किसी धर्मकी मान्यताको सहज समझ सकें तो भी उनके उद्योग सराहनीय हैं। इसमें संशय नहीं कि बौद्धग्रन्थमें जो इस तरह क्लिष्ट और अस्पष्ट रूपमें इस उत्तरको अंकित किया गया है, वह भगवान महावीरकी दिव्यध्वनिके प्रति उपहास भावको प्रकट करता है। डॉ० रिस डेविड्स भी यही समझते हैं और वे इस विषयमें अन्य पाश्चात्य विद्वानोंके भावार्थोंपर विवेचन करते हुए लिखते हैं —

---

१ मूल इस प्रकार है -'एवम् वुत्त भन्ते निगन्ठो नातपुत्तो मम् एतद् अवोच' 'इध महाराज निगंठो चातु-याम-संवर-संवुतो होति। कथं च महाराज निगन्ठो चातु-याम-संवर-संवुतो होति? इध महाराज निगन्ठो सब्ब-वारी-वारितो च होति, सब्ब-वारी-युतो च, सब्ब-वारी-धुतो च, सब्ब-वारी-पुट्ठो च। एवम् खो महाराज निगन्ठो चातु-याम-संवर-संवुतो होति। यतो खो महाराज निगन्ठो एवम् चातु-याम-संवर-संवुतो होति, अयम् वुच्चति महाराज निगन्ठो गतत्तो च यतत्तो च ठितत्तो चाति।' इत्थम् खो मे भन्ते निगंठो नातपुत्तो सन्दिट्ठिकम् सामञ्ञफलम् पुट्ठो समानो चातु-याम-संवरम् व्याकसि।...' दीघनिकाय (P. T. S.) भाग १ पृ० ५७-५८।

इसमें तपस्वी अथवा मुनि वह बतलाया गया है जो विषयोंकी आशा और आकांक्षासे रहित हो, (विषयेषु स्रग्वनितादिष्वाशा आकांक्षा तस्या वशमधीनता, तदतीतो विषयाकाक्षा रहित ।), निरारम्भ हो, (परित्यक्तकृष्यादि व्यापार ।), अपरिग्रही हो, (बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहरहित ।) , और ज्ञानध्यानमय तपको धारण करे हुये तपोरत्न ही हो, (ज्ञानध्यानतपास्येव रत्नानि यस्य एतद्-गुणविशिष्टो य स तपस्वी गुरु 'प्रशस्यते' श्लाघ्यते)। यहा भी निर्ग्रन्थ मुनिके चार ही विशेषण बतलाये गये हैं। अब इनकी तुलना जरा उपरोक्त बौद्ध उद्धरणसे करके देखें कि वस्तुत क्या इन्हींका उल्लेख इसमें किया गया है ? बौद्ध उद्धरणमें पहिले कहा गया है कि एक निर्ग्रन्थ मुनि सब प्रकारके जलसे विलग रहता है। इसका भाव यही है कि वह आरभी आदि सब प्रकारकी हिंसासे दूर रहता है। जैन मुनि अपने निमित्त जल भी स्वय ग्रहण नहीं करते, जिस समय वे आहारके निमित्त श्रावकके यहा पहुचते हैं, उस समय श्रावक स्वय ही उनके कमण्डलुको प्रासुक जलसे भर देता है। इसलिए यहापर बौद्धग्रन्थ उनकी निरारम्भ अवस्थाको व्यक्त करता है, जैसा कि उपरोक्त जैन श्लोकमें भी स्वीकार किया गया है। केवल अन्तर इतना है कि बौद्धग्रन्थमें इसको पहले गिना गया है और जैन श्लोकमे दूसरे नम्बरपर, परन्तु इस क्रम अन्तरमे मूल भावमें कोई अन्तर उपस्थित नहीं होता। उपरात बौद्ध उद्धरणमें बतलाया है कि वे 'सब पापसे दूर रहते हैं'। यह ठीक ही है। उक्त श्लोकमें पहिले ही उनको 'विषयाशावशातीतो' बता दिया है। विषय-वासनायें ही पाप हैं और वह उनसे रहित

है ही। इस तरह यह दूसरा विशेषण भी दोनों स्थानोंपर एक समान मिलता है। तीसरा विशेषण बौद्धशास्त्रमें बतलाया है कि सब पापको उसने धो डाला है।' इसका भाव बाह्याभ्यन्तर परिग्रहसे भी वे रहित हैं यही है। जैनमुनि बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहोंसे रहित होते हैं[1]। आभ्यन्तरपरिग्रहभी जिनके नहीं है उनके पापका अभाव ही होगा, पाप उनके निकट छू भी नहीं सकता। यही बात उपरोक्त जैन श्लोकमें 'अपरिग्रही' विशेषण द्वारा जाहिर की गई है। चौथा और अन्तिम विशेषण बौद्धग्रन्थमें "पापधाममात्रको रोककर पूर्ण हुये जीवन व्यतीत करना" बतलाया है। जीवनको ज्ञान ध्यान तपश्चरणमें लगानेसे ही मुनि अपने पूर्णपनेको प्राप्त होता है। घोर ज्ञान-ध्यानमय अवस्थामें पापास्रवका होना असंभव है। यहां संवर ही संभव है। इसतरह चौथा विशेषण भी दोनों स्थानोंपर एकसा ही है। अतएव बौद्धग्रन्थके उक्त श्लोकका भाव वही है जो उक्त दि० जैन श्लोकमें बतलाया गया है। इस प्रकार इनका भाव थे भी मान्यताके अनुसार भगवान पार्श्वनाथके चार व्रत नहीं हो सकते। श्वेताम्बरोंके इस कथनकी पुष्टि उपरोक्त बौद्ध उद्धरणसे होती बतलाई जाती है परन्तु अब हम देखते हैं कि यह मिथ्या है और श्वेताम्बरोंके इस कथनका कोई आधार शेष नहीं है।

अब रही बात उक्त उद्धरणमें व्यवहृत 'सव्वो' 'धुतो' और 'फुटो' शब्दोंकी सो बौद्धाचार्य 'सुमंगलविलासिनी' नामक टीकामें इनका भाव निम्नप्रकार स्पष्ट करते हैं—

---

१ विस्तारके लिये देखिये पृ० ८१।

'गतत्तो–जिसका मन अन्तको पहुंच गया है अर्थात् जिसने अपने उद्देश्यको पा लिया है।

यतत्तो–जिसका मन संयमित है।

थितत्तो–जिसका मन खूब थिर होगया है।'

अतएव इन भावोंको व्यक्त करनेवाले ये विशेषणोंका जैन मुनियोंकी प्रख्यातिके लिये उस समय प्रचलित होना बिल्कुल संभव है, किन्तु यह अवश्य है कि उपलब्ध जैन साहित्यमें हमें इनका व्यवहार कहीं नजर नहीं पड़ा है। शायद प्रयत्नशील होकर खोज करनेपर अगाध जैनसाहित्यमें इनका पता चल जावे! इतनेपर भी यह स्पष्ट है कि जो भाव इन शब्दोंका बतलाया गया है उसीके अनुसार जैनशास्त्रोंमें जैनमुनियोंका स्वरूप निर्दिष्ट किया गया है। देखिये ईसाकी प्रथम शताब्दिके विद्वान् कुन्दकुन्दाचार्य इस विषयमें निरूपण करते हैं–

"जधजादरूवजादं उप्पाडिद केसमंसुगं सुद्धं।
रहिदं हिंसादीदो अप्पडिकम्मं हवदि लिंगं ॥ ५ ॥
मुच्छारंभविजुत्तं जुत्तं उवजोग जोग सुद्धीहिं।
लिंगं ण परावेक्खं अपुणब्भव कारणं जोण्हं ॥ ६ ॥
प्रवचनसार"

भावार्थ–'मुनिलिंग नग्न, सिर व डाढी केशरहित, शुद्ध, हिंसादि रहित, शृंगार रहित, ममता आरम्भ रहित, उपयोग व योगकी शुद्धि सहित, परद्रव्यकी अपेक्षा रहित, मोक्षका कारण होता है।' तथापि और भी कहा है —

'इहलोग णिरावेक्खो अप्पडिबद्धो परम्मिलोयम्मि।

सुण्णागारविहारो रहिय कसाओ हवे समणो ॥ ४२ ॥'

भावार्थ-'इसलोक परलोककी इच्छारहित, कषायरहित व योग्य आहारविहार सहित साधु होता है। श्री पूज्यपादस्वामीने भी अपने 'इष्टोपदेश' ग्रन्थमें निम्न श्लोकोंद्वारा मुनिके उक्त विशेषणोंका मान्य समर्थन करते हैं —

'अभवच्चित्तविक्षेप एकान्ते तत्त्वसंस्थितिः।
अभ्यस्येदभियोगेन योगी तत्त्वं निजात्मनः ॥३६॥'

भावार्थ- जिसके मनमें किसी प्रकारका विक्षेप उत्पन्न नहीं होता अर्थात् जिसका मन थिर है और जो आत्मध्यानमें स्थिर होचुका है ऐसे ही साधुको एकान्त स्थानमें बैठकर अपनी आत्माका अविरल ध्यान करना चाहिये। आगाड़ी और बतलाया है कि-

" ब्रुवन्नपि न हि ब्रूते गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु पश्यन्नपि न पश्यति ॥ ४१ ॥
किमिदं कीदृशं कस्य कस्मात्क्वेत्यविशेषयन्।
स्वदेहमपि नावैति योगी योगपरायणः ॥ ४२ ॥'

भावार्थ-'जो अपनी आत्माके ज्ञानमें खूब स्थिर है ऐसा ही योगी बोलते भी नहीं बोलता है चलते हुए भी नहीं चलता है और देखते हुए भी नहीं देखता है। ऐसा योगी जो अपने आत्मस्वरूपकी प्राप्तिमें संलग्न है वह अपने शरीर तकके अस्तित्वसे विज्ञ नहीं रहता है। यह आत्मा क्या है? उसका स्वभाव क्या है? उसका स्वामी कौन है? इत्यादि प्रश्नोंमें आकुलता नहीं रखता है। इन उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि जिन विशेषणोंका व्यवहार बौद्ध पुस्तकमें किया गया है वह जैन शास्त्रके अनुसार

भी ठीक है। इसप्रकार उक्त बौद्ध उद्धरणका अभिप्राय स्पष्ट होजाता है।

उपरान्त 'महालीसुत्त' में बौद्धधर्मके इस 'अव्यक्तनी' बातोंका विवरण है अर्थात् उन सिद्धान्तोंका जिनपर बुद्धने अपना कोई मत प्रकट नहीं किया है। इन अव्यक्त बातोंमें एक यह भी है कि 'आत्मा वही है जो शरीर है अथवा भिन्न है?' यह प्रश्न मनदिस्स परिव्राजक (Wanderer) और दारुपात्तिक (काष्ट कमण्डल सहित मनुष्य) के शिष्य जालियने उपस्थित किये थे। यह जालिय और उनके गुरु हमें जैनमुनि प्रतिभाषित होते हैं; क्योंकि जैन मुनियोंके पास सदैव काष्टका कमण्डलु और पीछी होती है। तथा यह प्रश्न भी जैन सिद्धान्तकी अपेक्षा महत्वका है। इसके श्रद्धान पर ही आत्मोन्नति निर्भर है। जैनसिद्धान्तमें यह 'भेदविज्ञान' के नामसे विख्यात है। इसलिये जालिय और उनके गुरुका जैनमुनि होना स्पष्ट है।

फिर 'कस्सपसीहनाद' सुत्तमें जो जैन मुनियोंकी क्रियाओंका उल्लेख है, सो उसका विवेचन हम मूल पुस्तकमें पहले और अन्यत्र कर चुके हैं इसलिये यहां उसको दुहराना ठीक नहीं है। इसके बाद 'पोत्थपाद' सुत्त है। इसमें समण 'पोत्थपाद'

---

१ दीघनिकाय (P T. S) भाग १ पृष्ठ १५९ मूल इस प्रकार है--"एकम् समयम् भगवा कोसाम्बीयम् विहरति घोसितारामे। अथ खो द्वे पब्बजिता मन्डिस्सो च परिब्बाजको जालियो च दारुपत्तिक-अन्तेवासी येन भगवातेन उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिम् सम्मोदिंसु, सम्मोदनीयम् कथम् सारणीयम् वीति सारेत्वा एकमन्तम् अट्ठंसु। एकमन्तम् ठिता खो ते द्वे पब्बजिता भगवन्तम् एतद् अवोचुम् 'किन् नु खो आवुसो गोतम तम् जीवम् तम् सरीरम् उदाहु अञ्ञम् जीवम् अञ्ञम् सरीरन्ति ?'

म० बुद्धसे कहता है कि "महाराज, एक (दो) दिवस पहिले जब श्रमण और ब्राह्मण एवं अन्य आचार्य, एकत्रित होकर, परस्पर मिलते थे, तब एकबार वे सभागारमें बैठे थे कि विवाद छिड़ गया और प्रसंग वश यह प्रश्न उपस्थित हुआ, 'किस प्रकारसे उपयोग अथवा संज्ञा (Consciousness) का अन्त (निरोध) होता है?' इसके उत्तरमें पोट्ठपाद भिन्न भिन्न विवरण पेश करता है जिनको विभिन्न आचार्योंने बतलाया था। इनमें एक इसप्रकार है:—

"इसपर एक अन्यने कहा कि यह ऐसे नहीं होसक्ता जैसे कि आप कहते हैं। उपयोग अथवा संज्ञा, महाशयो! मनुष्यकी आत्मा है। यह आत्मा ही है जो आती और जाती है। जब एक मनुष्यमें आत्मा आजाती है तब वह उपयोग—संज्ञामय होजाता है और जब वह चली जाती है तब वह उपयोग अथवा संज्ञारहित होजाता है।" इसतरह एक अन्यमत उपयोगकी व्याख्या करते हैं।*

अब यह इससे प्रकट ही है कि जैनसिद्धान्तके अनुसार आत्मा उपयोगमयी पदार्थ है और इसीके अनुसार मनुष्य पौद्गलिक शरीर, जिसका चेतनामय और संज्ञा या चेतना रहित होता है। इस अवस्थामें यहां बहुत कम स्थान संशयको रह जाता है कि जिस व्यक्तिने इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया था वह जैन ही था और यह बात म० बुद्धसे एक दीर्घकाल पहिले हुआ था इसलिए इससे भी जैनधर्मका अस्तित्व म० बुद्धसे बहुत पहलेका प्रमाणित होता है।

एक अन्य प्रसंगमें कहा गया है कि "निर्ग्रन्थ, नातपुत्त

---

* दीघनिकाय (P T S) भाग १ पृ १८१।

(भगवान् महावीर) के अनुसार निगन्थके भाव ग्रन्थियोंसे मुक्तके हैं।[1] सो ठीक ही है, बाह्याभ्यन्तर परिग्रहसे रहित मुनि होते ही हैं। वे ही निर्ग्रन्थ (निगन्थ) कहलाते है। अन्यत्र कहा गया है कि वे अन्योंकी अपेक्षा तपश्चरणमें सरलता रखते थे।[2] सचमुच पञ्चाग्नितपना, उल्टे लटकना इत्यादि कायदण्डरूपके तपको जैन हेय दृष्टिसे देखते हैं और उसको 'बालतप' अथवा 'मिथ्यातप' ठहराते हैं, यह हम पहिले ही देख चुके हैं। इसलिए बौद्धोंका यह कथन ठीक ही है। अस्तु—

अब पाठकगण! आइये, बौद्धोंके 'विनयपिटकपर भी एक दृष्टि डाल लें। विनयपिटकमें प्रख्यात 'महावग्ग' ग्रन्थ है। इसमें एक कथानक भगवान महावीरके सम्बन्धमें है। उससे जैनधर्मकी व्यापकता उस समय जो थी वह प्रकट है। यह बात आधुनिक विद्वानोंको भी मान्य है कि भगवान् महावीरके सर्वज्ञ होनेपर सर्व प्राणियोंको हितकर उनका धर्मोपदेश पूर्णरीतिसे वज्जिदेश और मगधमें व्याप्त होगया था।[3] लिच्छवियोंमें उनके उपासक अधिक संख्यामें थे और उनमें ऐसे भी प्रभावशाली मनुष्य थे जो वैशालीमें उच्च और प्रतिष्ठित पदोंपर नियुक्त थे। यह बात स्वयं बौद्ध ग्रन्थोंके विवरणोंसे ही प्रमाणित है। अस्तु; उक्त महावग्गमें एक स्थलपर कहा गया है[4] कि सीह (सिंह) नामक लिच्छवियोंका सेनापति भी निगन्थ नातपुत्त (भगवान महावीर) का शिष्य था। सन्थागारमें समण गौतमकी प्रशंसा लिच्छवियोंमें होते सुनकर इस

---

१ Dialogues of Buddha, Vol, II, pp 74 75. २। पूर्व पृष्ठ २२१ ३. हिस्टॉरीकल ग्लीनिंग्स पृष्ठ ७८। ४. महावग्ग (S. B. E Vol XVII) पृष्ठ ११८.

यद्यपि सीहका हृदय बुद्धकी ओर आकर्षित हुआ था। एक रोज विशेष प्रख्यात् लिच्छवि एकत्रित हुये सन्थागारमें बैठे थे कि वे आपसमें बुद्ध, उनके धम और संघकी प्रशंसा विविध रीतिसे करने लगे। उस समय सीह भी उस सभामें बैठा हुआ था। वह सब सुनकर यह सोचने लगा कि सचमुच गौतम श्रमण अवश्य ही अर्हत् बुद्ध होंगे, तब ही तो यहांपर यह एकत्रित हुये इतने लिच्छवि उनकी, उनके धर्म और संघकी प्रशंसा कर रहे हैं।" इसके उपरान्त सीहने निग्रन्थ ज्ञातृपुत्रसे बुद्धके पास जानेकी आज्ञा मांगी; जिन्होंने उनको ऐसा करनेसे मना किया और बुद्ध द्वारा प्रतिपादित धर्मको अकृतत्वमय प्रकट करते थे बोले कि 'सीह! तू क्योंकि एक अवाद् क्रियावादमें विश्वास रखता है इसलिये श्रमण गौतमके पास जाकर क्या करेगा? जो क्योंकि कर्ममें विश्वास नहीं रखता है, अक्रियावादका प्रतिपादन करता है और इसी धर्मकी शिक्षा वह अपने शिष्योंको देता है।" इसपर सीहकी अकस्मात् श्रमण गौतमके पास जानेकी कुछ दिनोंके लिये दूर होगई किन्तु पूर्वोक्त प्रकार अन्य लिच्छवियोंके मुखसे बुद्धका बखान सुनकर अन्ततः वह म बुद्धके निकट पहुंच ही गये जिन्होंने एक लम्बा चौड़ा उपदेश उनको दिया। इस उपदेशको सुनकर बौद्ध कहते हैं कि सीह बौद्ध होगया। बौद्ध होजानेपर सीहने बुद्ध और बौद्धभिक्षुओंको अपने यहां आमंत्रित किया और बाजारसे मांस लाकर उनके लिये भोजन बनवाया। इसपर महावग्गमें लिखा है कि जैनियोंने प्रचार उठाया और "एक बड़ी संख्यामें वे (निर्ग्रन्थ लोग) वैशालीमें, सड़क और गलीसे गलीमें घूम घूम घोर प्रचारसे दौड़ते फिरे कि आज

सेनापति सीहने एक बैलका वध किया है और उसका आहार समण गौतमके लिये बनाया है। समण गौतम जानबूझकर कि यह बैल मेरे आहार निमित्त मारा गया है, पशुका मास खाता है, इसलिए वही उस पशुके मारनेके लिए वधक है। हम अपने जीवनके लिये कभी भी जानबूझकर प्राणी वध नहीं करते हैं।" तथापि इसमें यह उल्लेख है कि जब सीह बौद्ध होगया तब म० बुद्धने उनसे कहा'—

"For a long time, Siha, drink has been offered to the Niganthas in your house You should therefore deem it right (also in the future) to give them food, when they come (to you on their almspiligrimage) -(Mahavagga VI, 31 II)

भावार्थ—सीह! तुम्हारे यहा दीर्घकालसे निगन्थोंको पड़गाहा जाता रहा है इसलिए भविष्यमें भी तुम्हें उनको आहारदान देना चाहिये जब वे उसके निमित्त आवें। इस कथानकमें जिस सीह अथवा सिंहका वर्णन है, उसका नामोल्लेख भी हमें जैन शास्त्रोंमें देखनेको नहीं मिला है। अलबत्ता दि० जैनशास्त्र 'उत्तरपुराण' में राजा चेटकके जो पुत्र बताए हैं उनमें एक 'सिंह-भद्र' भी है।[1] सभव है, यही लिच्छवियोंके सेनापति हों, क्योंकि जब इनके पिता गणराज्यमें प्रधानपद पर आसीन थे तो उन्होंने स्वभावत अपने पुत्रको ही सेनापति पदपर नियुक्त किया होगा किन्तु बौद्धशास्त्रमें इनके पिताके सम्बन्धमें कोई उल्लेख नहीं है, तथापि उक्त जैनशास्त्रमें भी इनके विषयमें सिवाय

१. उत्तरपुराण पृष्ठ ४८३।

वे कहते भी हैं कि 'हम अपने जीवन–रक्षाके लिये कभी भी जान बूझकर प्राणीवध नहीं करते हैं।' इन निगन्थोंके इस कथनसे यह स्पष्ट है कि यह निगन्थ–सावक (जैनगृहस्थ) थे। सचमुच बौद्धग्रन्थोंमें कहीं यह शब्द जैनमुनिके लिये व्यवहृत हुआ मिलता है और कहीं जैन श्रावकोंके लिये। इसलिए इस शब्दके यथार्थ भावको ग्रहण करनेमें होशियारीसे काम लेना आवश्यक है। यहां यह बिल्कुल ही संभव नहीं है कि वैशालीमें जो निगन्थ चौराहे २ पर दौड़ रहे थे वे जैन-मुनि थे, क्योंकि जैनमुनि रागद्वेषसे रहित होते हैं, [1] यह बात स्वयं बौद्ध ग्रंथोंसे प्रमाणित है। [2] इस दशामें वे जैनमुनि नहीं हो सक्ते। तिसपर उनका यह कहना 'हम अपने जीवन–रक्षाके लिए भी प्राणी वध जानबूझकर नहीं करते' इसमें कोई संशय नहीं छोड़ता कि यह निगन्थ गृहस्थ जैनी थे, क्योंकि जैनमुनि अपने भोजनके लिए स्वयं प्रबन्ध नहीं करता। [3] भोजनकी फिकर द्वारापेषण रूपमें गृहस्थलोग ही रखते हैं और वही उसके लिए भी प्राणी वध नहीं करते हैं, अतएव यहांपर 'निगन्थ' शब्दका भाव जैनश्रावकोंसे है।

इसके साथ ही इस विवरणसे यह भी स्पष्ट है कि उससमय भी जैनियोंकी संख्या वैशालीमें अधिक थी। सीहका धर्मपरिवर्तन जैसा कि बौद्ध कहते हैं बुद्धके अंतिम समयमें हुआ था इस कारण बुद्धके बारम्बार वहांपर धर्मप्रचार करनेपर भी जैनियोंकी संख्या कम नहीं हुई थी। तथापि म० बुद्ध सीहसे जो भविष्यमें

१ मूलाचार पृ० ३–११८–२ 'दीघनिकाय' भा० १ पृ० १७८–६२।
२ मूलाचार १६८–१६९।

भी निर्ग्रन्थ मुनियोंको आहार देनेकी आज्ञा कर रहे हैं उसमें यह स्पष्ट प्रकट है कि बौद्धके गृहमें दीर्घकालसे जैनमुनियों (निग्रंथों) को पड़गाहा जाता रहा है। इससे भी जैनधर्मका अस्तित्व बौद्ध धर्म अथवा म बुद्धसे प्राचीन सिद्ध होता है; क्योंकि जब उसका अस्तित्व म बुद्धसे पहिलेका होगा तब ही सीह बहुत पहिलेसे जैन मुनियोंको आहारदान देसका है।

'महावग्ग' में उपरोक्तके अलावा कोई विशेष उल्लेखनीय जैन विवरण नहीं है किन्तु उसमें एवं अन्यत्र 'चुल्लवग्ग' आदिमें को 'तित्थिय' के रूपमें साधुओंका उल्लेख मिलता है वह हमारी सम्मतमें बहुत कुछ पार्श्वनाथजीकी शिष्यपरम्पराके मुनियोंके लिये आगू है। इतना तो स्पष्ट ही है कि 'तित्थियगण' म बुद्धसे प्राचीन सम्प्रदायोंके साधु थे परन्तु उनमें प्राचीन जैनमुनियोंका भी उल्लेख उसी रूपमें किया गया प्रतीत होता है; क्योंकि जैन सम्प्रदाय म बुद्धसे पहलेकी प्रमाणित होती है। अतएव इन उल्लेखोंको उपस्थित करके हम यह देखलेंगा अवश्य करेंगे कि वह किस तरह प्राचीन जैनमुनियोंसे सम्बन्ध रखते हैं। 'महावग्ग'में एक स्थानपर निम्न उल्लेख है —

At that time the Bhikkhus conferred the Upasampadâ ordination on persons that had neither alms-bowl nor robes. They went out for alms naked and (received alms) with their hands. People wre annoyed, murmured and became angry saying Like The Titthiyas. 1 70 8.²"

१. डियोलिश कैंब्रिज पृष्ठ ११-१२ २. Vinaya Texts. S. B. E. Vol. XIII. P 223.

इन उद्धरणोंमें भिक्षुओंद्वारा उन लोगोंको अपने मतमें दीक्षित करनेका उल्लेख है जिनके पास न भिक्षापात्र था और न वस्त्र थे। उन्होंने नग्नदशामें ही जाकर अपने हाथोंमें भोजन गृहण किया। इसपर, बौद्धाचार्य कहता है कि लोगोंने उनका अपवाद किया और कहा 'यह तो तित्थियोंकी तरह करते हैं।' अब यह स्पष्ट ही है कि जैनमुनि आहार हाथकी अञ्जुलिमें लेते हैं और वे नग्न रहते हैं।[1] न उनके पास भिक्षापात्र होता है और न वस्त्र होते हैं। इस अवस्थामें यहां जो यह क्रिया तित्थियोंकी बतलाई है, तो यह तित्थिय जैनमुनि होना चाहिये।

इसके साथ ही यह भी दृष्टव्य है कि यह उस समयका वर्णन है जब म० बुद्धने अपने 'मध्यमार्ग' का प्रचार प्रारम्भ ही किया था और वे अपनी सम्प्रदायके आचार, नियम आदि नियत करते जारहे थे। इस समय भगवान महावीर छद्मस्थ थे और उन्होंने अपने धर्मका प्रचार करना प्रारंभ नहीं किया था, यह बात हम अपनी मूल पुस्तकमें पहले देख चुके हैं।[2] इस कारण यह स्पष्ट है कि ये जैनमुनि, जिनका उल्लेख तित्थियरूपमें किया गया है भगवान महावीरके संघके मुनियोंमे पहलेके जैनमुनि हैं, अर्थात् पार्श्वनाथजीकी शिष्यपरम्पराके मुनि हैं। उनका उल्लेख 'तित्थिय' रूपमें करना ही उनको भगवान महावीरसे पहलेका प्रमाणित करता है। अतएव इस उद्धरणसे यह स्पष्ट है कि भगवान पार्श्वनाथजी शिष्यपरम्पराके मुनि भी नग्न रहते थे और हाथोंमें

१ अन्यत्र बौद्ध उद्धरणसे यह बात प्रमाणित है (पृष्ठ ६२)

फिर वह क्यों उस सुगम मार्गको त्यागकर कठिन मार्गको ग्रहण करते? उस दशामें तो म० बुद्धका मध्यमार्ग उनके लिये पर्याप्त था। तिसपर यदि यही सुगमता पहलेसे श्रमणसम्प्रदायमें प्रचलित होती तो म० बुद्ध एक अलग सुगम वस्त्रधारी संप्रदाय किस लिये स्थापित करते? इसके साथ ही यदि यह प्रभेद, वास्तवमें था तो फिर जैनधर्मकी वह मान्यता कहा रही कि उसका सनातनरूप एक समान है? तिसपर इस घटनाका उल्लेख श्वे० के उत्तराध्ययनसूत्रके अतिरिक्त किसी प्राचीन ग्रन्थमें नहीं है और और यह उत्तराध्ययनसूत्र अगवाह्य रचना है।[१] इस दृष्टिसे इसके कथनपर सहसा विश्वास नहीं किया जासक्ता। उसका कथन आचारागसूत्रके और बौद्धशास्त्रोंकि उक्त कथनके प्रतिकूल है। तिसपर उसमें जो क्षुल्लक अधिकारके वाद ऐलक नामक अधिकार दिया है, उससे स्पष्ट है कि प्राचीन क्रम साधु दशाका क्षुल्लक, ऐलक और फिर अचेलक निर्ग्रन्थरूप था। श्वे० आचार्यने यहा यद्यपि क्षुल्लक, ऐलकका उल्लेख किया है परन्तु उनने ऐलकका अर्थ एक 'भेड' (Ram)से किया है और उसके उदाहरणसे साधुको शिक्षा* दी है। श्वे० शास्त्रोंके इन उल्लेखोंसे स्पष्ट है कि श्वे० आचार्योंसे परोक्षरूपमें प्राचीन मार्गका उल्लेख करके अपनेको लाछित होनेसे वचा लिया है और उनकी इन सव वातोंसे मुनियोंका अचेलक वेप स्पष्ट हो जाता है। इस दशामें भगवान पार्श्वनाथजीकी परम्पराके मुनि नग्नावस्थामें रहते थे यह प्रकट हो जाता है। रहा चार व्रतोंका

१. तत्त्वार्थसूत्रम् (S B J) भाग २ पृष्ठ ३७ * उत्तराध्ययनसूत्र (UPSALA Ed) पृ० ८८-९१.

उल्लेख उसका विवेचन हम पहले कर चुके हैं।

उपरोक्त अवतरणोंके अतिरिक्त 'महावग्ग' में निम्नके परोक्ष जैन उल्लेख और मिलते हैं —

1 "At that time the Paribbâjakas belonging to Titthiya schools assembled on the fourteenth, fifteenth and eighth day of each half month and recited their Dhamma The people went to them in order to hear the Dhamma. They were filled with favour towards and were filled with faith i the Paribbajakas belonging to Titthiya schools The Paribbajakas belonging to Titthiya School gained adherents. II, I I.

2 How can these Sakyaputtiya Samnas go n their travels alik during winter summer nd the rai y season ? They crush the green herb they hurt Vegetable life they destroy the life of many small living things. Shall the ascetics who belong to Titthiy Schools, etire uring the rai y sea-o ta. III, 1,2.

3 "Let no on O Bhikkhus take upon himself the vow of s le ce as th Titthiyas do. He who does commit o dukkata ffence." IV 1 13

पहले उद्धरणमें तिथियोंके साधुओंका यह नियम बतलाया है कि वे अष्टमी चतुर्दशी और पूर्णमासीको एकत्रित

१ Vi ya T i S B E XIII, p. 240
२ Ibid. p. 298 ३ Ibid p. 3 8

होकर अपने धर्मका पाठ करते हैं जिसको सुनकर साधारण जनता उनकी उपासक बनती है। यह नियम भी जैनमुनियोंसे लागू है क्योंकि जब पर्व दिनोंमें श्रावकोंके लिये ही यह उपदेश है कि वे मुमुक्षुजनोंको धर्मामृतका पान करावें तो मुनियोंके लिए तो इसका अभ्यास करना परमावश्यक होजाता है।[1] तथापि यह उद्धरण भी म० बुद्धके प्रारंभिक जीवनका है जब कि भगवान महावीरका उपदेश प्रारंभ नहीं हुआ था, इसलिए यह नियम भगवान पार्श्वनाथकी शिष्यपरंपरामें भी मान्य था यह स्पष्ट है, जैसी कि जैनियोंकी मान्यता है। उपरोक्त उद्धरणोंमें अवशेषका भी यही हाल है। दूसरेमें शाक्यपुत्तीय (बौद्ध) समणोंके बारेमें कहा गया है कि वे किस तरह वर्षाऋतुमें भी यत्रतत्र विचरण करते हैं और हरित किछों, वनस्पतिकाय और बहुतसे सूक्ष्मजीवोंकी हिंसा करते हैं, परन्तु तित्थियसंघके साधुलोग वर्षाऋतु एक स्थानपर रहकर मनाते हैं।

इस नियमके बारेमें कुछ कहना ही फिजूल है। चाहे कोई जैनसाधुओंको इसका अभ्यास करते आज देख सक्ता है। अथच इसमें जो हरित, वनस्पतिकाय और सूक्ष्मजीवोंकी हिंसाका कारण दिया है वह जैन वर्णनसे बिल्कुल ठीक बैठ जाता है।[2] जैनशास्त्र भी वर्षाऋतुमें इन्हींकी हिंसासे बचनेके लिए चतुर्मास एक नियत स्थान पर करनेका उपदेश करते हैं। अतएव यह स्पष्ट है कि यहा जिन तित्थिय साधुओंका उल्लेख है वह प्राचीन जैनसाधु ही थे। समण संप्रदायमें वे ही इस नियमका पालन पहिलेसे कर

१ रत्नकरण्ड (मा० च० म०) पृष्ठ ७७ २ मूलाचार पृ०

रहे थे। तीसरे उद्धरणमें बौद्ध भिक्षुओंको मीनाक्त पालन करनेकी मनाई कीगई है और कहा गया है कि इस नियमका पालन तो तिरिथय करते हैं। जैनसाधुओंके लिए मौनव्रत पालन करनेका विधान है इस दशामें यहां भी बौद्धाचार्य 'तिरिथय' शब्दका प्रयोग प्राचीन जैनसाधुओंके लिये कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त एक अन्य उल्लेख 'महावग्ग' में इस प्रकार है –

" Many Titthiyas saw Mendaka the householder (of Bhaddiya) as he was coming from afar and when they had seen him they said to Mendaka the householder: whither O householder are you going? I am going sirs, to visit the Blessed One, the Samana Gotama. But why O householder do you, being a Kiriyā-Vādi, go out to visit the Blessed One who is an Akiriyā Vādi? For O householder the Samana Gotama, who is an Akiriyā-Vādi teaches Dhamma without the doctrine of action. Vol. 34 1-/13.

इसमें कहा गया है कि तिरिथयोंने मेंडक नामक गृहस्थको आते देखकर उससे पूछा कि वह कहां जाता है? उत्तरमें जब उसने कहा कि मैं श्रमण गौतमके पास जा रहा हूं तो उन्होंने कहा कि तू क्रियावादी होकर उनके पास क्यों जा रहा है? वह तो अक्रियावादी है और कर्मवादके बिना ही उपदेश देता है।

---

१ ३१ पृ १२५ २. Vinaya Texts S. B. E. Vol. XIII P. 125.

हम ऊपर मीहके सम्बन्धमें देख चुके हैं कि जैनमुनि अथवा जैनी बौद्धग्रथोंमें क्रियावादीके रूपसे परिचित हैं। अतएव यहापर जो तित्थिय साधु क्रियावादका पक्ष ले रहे हैं और मेंडक गृहस्थको बुद्धके पास जानेमें अलाम बतला रहे हैं, वे अवश्य ही जैन साधु हैं। तथापि इनका उल्लेख निगन्थोंके नामसे न किया जाकर जो 'तित्थिय' के नामसे किया जा रहा है, इसका यही कारण है कि ये भगवान महावीरकी शिष्यपरपरासे पहलेके जैन मुनि थे। इसके साथ ही अन्य समणोंका उल्लेख भी जो कहीं मुश्किलसे एकाध जगह इसी 'तित्थिय' शब्द द्वारा किया गया है, उसका कारण यही है, जैसे कि हम मूल पुस्तकके प्रथम परिच्छेदमें बतला चुके हैं कि वे सब भगवान पार्श्वनाथके दिव्योपदेशके उपरान्त उनके 'तीर्थ' मेंसे उत्पन्न हुये थे। इसी कारण उन समणलोगोंके सिद्धान्त भी जैनधर्मसे सादृश्य रखते हैं अथवा उसके सिद्धान्तोंके विकृतरूप ही हैं। अतएव 'महावग्ग' में जो तित्थिय-साधु' हैं उनको प्राचीन जैनसाधु समझना ठीक है।

'चुल्लवग्ग'[1] में भी 'तित्थिय' साधुका उल्लेख एक स्थलपर निम्नरूपमें आया है —

"Now at that time the Bhikkhus went on their round for alms, carrying water-jugs made out of gourds or water pots People murmured, were shocked, and indignant saying, 'As the Titthiyas do' V, 10, 1"

इसमें बौद्धसाधुओंके बारेमें कहा गया है कि वे आहार

1 Ibid. P. 88.

निमित्त जब जाते थे तब वे भक्त रखनेके बरतन हाथमें ले जाने लगे। लोग कहने लगे कि यह तो तित्थियोंकी तरह करते हैं। यहां भी तित्थिय शब्दका व्यवहार जैनसाधुके लिए हुआ प्रतीत होता है। जैनसाधु जब आहारके लिए जाते हैं तब वे कमण्डलु (प्रासुक जलके लिए बरतन) और पीछी हाथमें रखते हैं। इस तरह यहां भी बौद्धग्रंथोंमें 'तित्थिय' शब्दका व्यवहार किया गया है वहां उसका भाव जैनमुनिसे ही प्रमाणित होता है, जैसा कि हम देखते हैं। और इस शब्दका व्यवहार जो 'निगन्थ' शब्दके साथ किया गया है उसका भाव यही है कि यह भगवान महावीरके संघसे पहलेके जैनमुनियोंके लिये व्यवहृत हुआ है।

अब रहा 'अभिधम्म' पिटक सो इसके ग्रन्थोंको देखनेका अवसर हमें नहीं मिला है और हम उनके सम्बन्धमें कुछ कह भी नहीं सके हैं। अनुमानतः उनमें जैन उल्लेखोंका होना बहुत कम संभावित है तो भी 'कुल्लनिद्देस'में कहा गया है कि निर्ग्रन्थ श्रावकोंके देवता निग्रन्थ हैं। (निगण्ठ सावकानाम् निगन्थो देवता [1] ।) इस तरह बौद्धोंके पिटकग्रन्थोंमें हम जैन उल्लेखोंका दिग्दर्शन करते हैं। इसके अतिरिक्त अशोकके उपरांतका रचा हुआ बौद्धसाहित्य भी बहुत है। उसमें भी देखनेसे हमें जैन उल्लेख मिल जाते हैं।

इसी अनुरूप आर्यसूरकी 'जातकमाला' में भी हमें जैन उल्लेख मिलते हैं। उनकी 'कथा' में जहां मदिरापानके निषेधका विवेचन है कहा गया है। —

---

१. कुल्लनिद्देस पृ ११ २. जा १।३।१४।१ S. B. B, Vol I P 145

"Even the bashful lose shame by drinking it and will have done with the trouble and res traint of dress, unclothed like Nirgranthas, they will walk boldly on the highway crowded with people "

अर्थात्—इसके पीनेसे लज्जावान भी लज्जाको खो बैठते हैं और वस्त्रोंके कष्टों और बन्धनोंसे विलग होकर निर्ग्रन्थोंकी तरह नग्न होकर वे जनसमूहकर पूर्ण राजमार्गोंपर चलते हैं। यहा जैन-मुनिकी नग्न दशापर कटाक्ष किया गया है। इससे भी जैन मुनियोंका नग्न होना स्पष्ट है।

'बावेरु जातक' में म० बुद्धके अतिरिक्त अन्य छह मतप्रवर्तकोंकी उपमा, जिनमें भगवान महावीरको भी गिना गया है, उस कउवेसे दी गई है जो अपनी प्रतिष्ठा सुन्दर मोरके आनेपर खो बैठा हो।' यहां मोर म० बुद्ध बताये गये हैं और टीकाकारने कउवेकी समानता भगवान् महावीरसे की है। (तदा काको निगन्ठो नातपुत्तो)[१] इस विद्वेषभावका भी कहीं ठिकाना है। सचमुच बौद्धोंको भगवान् महावीरके धर्मप्रचारसे विशेप हानि सहनी पड़ी थी, इसीलिए वे उनका उल्लेख इस तरह कर रहे हैं। इस साम्प्रदायिकताके विषबीजने ही अन्तमें भारतको पीड़ाकी भट्टीमें ला रक्खा है, यह स्पष्ट है। इसी तरहका एक अन्य उल्लेख एक अन्य जातकमें है।

वहा लिखा है कि अचेलक (नग्न) नातपुत्तने धोखेसे बुद्धको पकी हुई मछली खानेको दी और बुद्धने उसे खा ली, तब नातपुत्तने उनपर पापोपार्जन करनेका लाञ्छन लगाया और कहा कि "शठ चाहे

१ आजीवक्स भाग १, पृ० २६।

पाते हैं। (Rockhill, Life of the Buddha P. 259.) इससे वर्णाश्रम सिद्धातका बोध होता है कि ब्रह्मचर्याश्रमसे गृहस्थाश्रममें पहुचकर पुत्रादिका सुख भोगकर जीव वानप्रस्थ और सन्यास आश्रमोंमें मोक्षमार्गपर लग जाता है इस उल्लेखसे इस सिद्धान्तकी प्राचीनता स्पष्ट है।

'दिव्यावदान्' के भी एक उल्लेखमें भगवान् महावीरकी गणना अन्य पाच मतप्रवर्तकोंके साथ २ की गई है।[1] तथापि अन्यत्र इसी ग्रन्थमें जैन मुनियोंकी नग्नावस्थापर आक्षेप किया गया है[2] यथा.—

' कथम् स बुद्धिमान भवति पुरुषो व्यञ्जनावितः।
लोकस्य पश्यतो योऽयम् ग्रामे चर्ति नग्नकः॥
यस्यायम् ईदृशो धर्मः पुरसताल लम्बते दशा।
तस्य वै श्रवणो राजा क्षुरप्रेरगावक्रिन्ततु॥"

और फिर इसी ग्रन्थमें म० बुद्धकी आत्मऋद्धि द्वारा निगन्थ नातपुत्तके परास्त होनेकी शेखी मारी गई है। (दिव्यायदान् पृ० १४२)

उपरान्त 'मिलिन्दपन्ह' में भी कतिपय जैन उल्लेख हमारे देखनेमें आये हैं। यह बौद्धग्रन्थ ईसासे पूर्व दूसरी शताब्दिकी रचना है। प्रारम्भमें ही जो उसमें यह कथानक दिया हुआ है कि[3] पाचसौ योंकाओं (यूनानियों) ने आकर राजा मिलिन्द अथवा मेनेन्डर (Menander) से निगन्थ नातपुत्त (भगवान

१ पृष्ट १४३ २. दिव्यावदान पृष्ट १६५. ३. the Questions of Milinda, S B. E Vol. XXXV, P. 8

महावीर) के पास आने और उनके निकट अपनी शंकाओंको दूर करनेके लिये कहा उससे प्रकट है कि ईसासे पूर्व दूसरी शताब्दिमें जब यूनानी लोग भारतके सीमाप्रान्त पर बस गये थे तब उनमें भी जैनधर्मका प्रवेश होगया था। मिलिन्द-प्रश्नमें जहां जो स्वयं भगवान महावीरका उल्लेख किया गया है वह ठीक नहीं है। क्योंकि 'मिलिन्दप्रश्न' से प्राचीन बौद्धग्रन्थोंमें भगवानको गौतम बुद्धका समकालीन लिखा है। अस्तु, यहां विशेष वक्तव्य यह है कि केवल यूनानियोंके साधारण मनुष्योंने ही जैनधर्मकी मान्यता पर नहीं कर गई थी बल्कि विविध कारणोंसे हमें यह विश्वास हुआ है कि स्वयं यूनानी सम्राट मिलिन्द भी किसी समय अवश्य ही जैनधर्मानुयायी रहे थे। इस बौद्धग्रंथमें उनकी राजधानीमें अन्य मतवालोंका प्रभाव वर्णित किया है और राजा मिलिन्दका एक मिथ्या त्वीकी भांति बौद्धधर्मपर आक्रमण करते लिखा है तथा बौद्ध भिक्षु नागसेनको उन्हे परास्त करनेके लिये भेजा गया वर्णित किया है। इन नागसेन और राजा मिलिन्दमें जो वाद हुआ था, उसमें जैन मान्यताकी झलक नजर पड़ रही है। आत्माका अस्तित्व, जड़ इन्द्रियां, जन्ममें जीव निर्वाण आदिका प्रतिपादन जो उन्होंने किया है वह ठीक जैन धर्मके अनुसार है। अतएव इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि राजा मिलिन्द जैन धर्मानुयायी हों। अन्यत्र इस सम्बन्धमें विस्तृत विवेचन देखना चाहिये।[1] तत्पश्चात् जब जैन सम्राट् चन्द्रगुप्तका विवाह सम्बंध एक यूनानी राजा सेल्युकसकी पुत्रीसे हुआ था और सिकन्दर महान अपने साथ जैन मुनियोंको ले

---

१ वीर ५ पृ ७१। २. [illegible]

गया था[1] तो यह बिल्कुल संभव है कि जैनधर्मका प्रचार यूनान-वासियोंमें विशेष होगया हो। इस व्याख्याकी प्रामाणिकताका विश्वास इस कारण और होता है कि यूनानी विद्वानोंकी शिक्षा जैन धर्मसे बहुत सादृश्य रखती है। उनके तत्ववेत्ता पैरहो (Pyrrho) ने स्वयं जैनमुनियोंके निकटसे तात्विक शिक्षा ग्रहण की थी[2] इस परिस्थितिमें विशेष अनुसन्धान यदि किया जाय तो यूनानमें जैन-धर्मकी व्यापकताका विशेष पता लगना संभवित है।

उपरोक्तके उपरान्त 'मिलिन्दपन्ह' में जैनियोंकी जल सम्बन्धी मान्यताका उल्लेख है कि जलमें भी जीव होता है। राजा मिलिन्द कहते हैं कि जलमें भी जीव होता है और उसे वे विविध रीतिसे प्रमाणित करते हैं; किन्तु उत्तरमें नागसेन कहते हैं कि 'नहीं, राजन्, जलमें कोई जीव नहीं है'[3] यह जैनियोंकी मान्यताका स्पष्ट उल्लेख है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थमें कोई उल्लेख हमारे देखनेमें नहीं आया है।

बौद्धसाहित्यमें अगाड़ी 'धम्मपदत्थकथा' में भी जैन उल्लेख मिलते हैं। एक स्थलपर (भाग २ पृ० ४३४–४४७) उसमें श्रावस्तीके श्रीगुप्त और गरहदिन्नकी कथा लिखी है। श्रीगुप्त बौद्धमती था और गरहदिन्न एक जैन था। गरहदिन्नके निर्ग्रन्थ गुरुओंको बौद्ध बतलाते हैं कि वे सब कुछ जानते थे। उनके ज्ञानसे अगोचर कोई पदार्थ शेष नहीं है। भूत, भविष्य, वर्तमानकी सब बातें और मन, वचन, कायिक सब कर्म तथा जो कुछ होनी और

१ "जैन सिद्धान्त भास्कर" किरण २–३ पृष्ठ ९। २ मूल पुस्तक. पृ० २६–२७. ३. Milinda, S. B. E. XXXV P. 85.

अमद्रोही है यह सब वे जानते हैं। धम्मपदकी इस बौद्ध कथामें लिखा है कि गरहदिन्नके अनुरोधसे श्रीगुप्तने जैनमुनियोंको आहारनिमित्त निमंत्रित किया और अपने घरमें दो गड्ढे मिट्टी आदिसे भरवाकर ढकवा दिये और आहार ऐसा प्रबन्ध किया कि मानो वह वह ढंगसे जैनमुनियों (Wanderers) को बाहर देखता है। निश्चय कालमें सब ही निर्ग्रन्थ साधु उसके यहां पहुंचे बतलाये हैं। उस श्रीगुप्तके कहनेके मुताबिक उनको अपना२ आसन लेकर क्रमवार बैठ जाना और फिर शिलासे भरे गड्ढेमें गिर जाना लिखा है। गरहदिन्नको इन समाचारोंसे बड़ा दुःख हुआ और राजासे कहकर उससे श्रीगुप्तको दण्डित कराया। आखिर गरहदिन्नने भी बुद्धको नीचा दिखानेके लिये उनको आमंत्रित किया और अपने घरमें एक गड्ढेमें आग भरवाकर उसे कपड़ेसे ढकवा दिया। बौद्ध कहते हैं कि बुद्धने अपने ज्ञानबलसे गरहदिन्नकी यह चालबाजी जान ली, परन्तु उसको 'सम्यग्दृष्टि' दिलानेके अर्थ वे भिक्षुओं सहित आहारके लिए उसके यहां चले आये और अपने प्रभावसे भिक्षुओंसहित भरपेट आहार किया और सबको धर्मका उपदेश दिया। कौतूहलसे बहुतसी भीड़ वहां हो गई और बुद्धको इस प्रकार आनंदपूर्वक देखकर वे उन बुद्धको पूज्य दृष्टिसे देखने लगे। बहुतेरे मनुष्योंको बौद्धधर्ममें विश्वास हुआ और वे उसके धर्मको सुनकर बड़े हर्षित हुये। श्रीगुप्त और गरहदिन्न बौद्ध होगये।"[1]

बौद्धसम्बन्धी इस कथामें जैनमुनियोंको नीचा दिखानेका भाव ओतप्रोत भरा दृष्टिगोचर होरहा है। इस कथानकमें

१. हिस्टॉरीकल ग्लीनिंग्स पृ० ४५–५१।

कितना तथ्य है यह इसीसे प्रमाणित है। मालूम होता है कि जैन-शास्त्रोंमें बौद्धभिक्षुओंके सम्बन्धमें जो एक ऐसी ही कथा हमें मिलती है, उस हीके उत्तरमें यह कथा बुद्धघोषको गढ़नेकी आवश्यक्ता पडी है।[1] जैन कथामें सम्राट् श्रेणिक और उनकी पट्टरानी चेलनीका सम्बन्ध है। राजा चेटककी पुत्री जैन थी और श्रेणिक बौद्ध थे किन्तु अपने पतिको भी जिनेन्द्रभक्त बनानेके लिए राजा चेटककी पुत्री चेलनीने बौद्ध भिक्षुओंको निमन्त्रित किया था, मलिन पदार्थ जहा गढे हुये थे वहा उन्हें बैठाया, परन्तु उन्हें इस बातका भान नहीं हुआ और फिर उन्हींके जूतोंके टुकड़े करके भोजनमें उन्हें खिला दिये, परन्तु तब भी उन्हें कुछ ज्ञान नहीं हुआ। इस तरह सम्राट् श्रेणिकको अपने गुरुओंकी सर्वज्ञताको प्रमाणित करनेमें असफलता देखनी पडी। फिर श्रेणिकने किस तरह इसका बदला जैनमुनिको त्रास देकर लिया तथा उनकी सहनशीलता देखकर उसे जैनधर्ममें प्रीति हुई फिर भी वह बौद्धोंके कहनेसे बौद्ध रहा और अन्तत भगवान् महावीरके समवशरणमें उसे जैनधर्मका क्षायिकसम्यक्त्व प्राप्त हुआ ये सब बातें जैनशास्त्रोंमें वर्णित हैं। इसी जैन वर्णनके उत्तरमें बौद्ध ग्रन्थमें उक्त प्रकार कथा दी गई हो तो कोई आश्चर्य नहीं। सच-मुच यह कथा जैनियोंकी उक्त कथाके उत्तरमें लिखी गई थी। इसका यही प्रमाण है कि द्वेषसे प्रेरित बौद्ध आचार्य जैनमुनियोंकी चर्याके विरुद्ध भी कथन कर गये हैं। जैनमुनि कभी भी निमंत्रण स्वीकार नहीं करते, वे खड़े२ ही भोजन ग्रहण करते है, ये बातें स्वय बौद्धग्रथोंसे प्रमाणित हैं परन्तु फिर भी यहापर कहा गया

---

१. श्रेणिक चरित्र।

है कि जैनमुनियोंको पहले ही निमंत्रित किया गया था और उन्हें एक स्थानपर बैठनेके लिये आसन दिया गया था। अतएव इसमें संशयको स्थान नहीं रहता कि बौद्धग्रन्थमें उक्त जैनकथाके उत्तरमें यह मनगढ़न्त कथा रच डाली थी और इस रूपमें इसका महत्व कुछ भी नहीं है। ईसाकी ६ वीं शती सम्प्रदायोंमें पारस्परिक विद्वेष खूब जोर पकड़े हुए था। उसी सम्बन्धकी यह रचना है। इस कारण इस तरह भी यह विश्वसनीय नहीं है।

इसी बौद्धग्रन्थमें एक अन्य कथा भी इसी ढंगकी दी हुई है[1] उसमें कहा गया है कि अंग राज्यके भद्दियनगरमें रहनेवाले मेण्डकसेठीके पुत्र धनंजय सेठीकी पुत्री विशाखा थी। मेण्डकसेठीका परिवार म बुद्धका अनन्य भक्त था। धनंजयसेठी कौशलके राजा पसेनदीके कहनेसे उनकी राजधानी साकेतमें आरहे। विशाखाका विवाह मिगारसेठीके पुत्र पुण्यवर्द्धनसे होगया था। मिगार सेठी निग्रन्थोंका भक्त था। विवाहोपरांत विशाखाकी विदा श्वसुरगृहको श्रावस्ती होगई। एक दिवस मिगार सेठीने १ दिगम्बर जैन मुनियों (निर्ग्रन्थों)को आमंत्रित किया और जब वे आगए तो उसने अपनी बहूसे उन अर्हतों (साधुओं)को प्रणाम करनेके लिये कहा। अर्हतों (साधुओं)की बाबत सुनकर वह भगी आई और उन्हें देख कर बोली "ऐसे बेशरम व्यक्ति अर्हत (साधु) नहीं होसके। मेरे श्वसुरने वृथा ही मुझे क्यों बुलाया!" इस तरह अपने श्वसुरपर लांछन लगाकर वह चली गई। तब निग्रन्थोंने इसपर रोष किया और सेठीसे उसे घरसे बाहिर निकाल देनेके लिये कहा क्योंकि

[1] धम्मपदत्थकथा (P T. S V I, I) भाग २ पृष्ठ ३८४।

वह समण गौतमकी भक्त थी किन्तु सेठीके लिए ऐसा करना सम्भव नहीं था, इसलिए उसने क्षमा याचना करके उन्हें विदा किया। इस घटनाके उपरात सेठी बहुमूल्य आसनपर बैठा सोनेके कटोरेसे मधुमिश्रित दूध पीरहा था और विशाखा पासमें खड़ी पखा झल रही थी। उसी समय एक बौद्ध भिक्षु वहा आखडा हुआ। किन्तु सेठीने उसकी ओर ध्यान भी नहीं दिया। यह देखकर विशाखाने उस थेर (भिक्षु)से कहा, "महाराज, अन्य घरको जाइए; मेरे श्वसुरजी अशुद्ध वासी पदार्थ ग्रहण कर रहे हैं।" इसपर वह श्रेष्ठी बहुत नाराज हुआ। उसने उसी समय दूध पीना वद करके नौकरोंसे कहा कि विशाखाको मेरे घरसे निकाल बाहर करो। इसपर विशाखाने कहा कि मेरे अपराधकी भी तो परीक्षा कर लीजिए। सेठीने यह बात मान ली और उसके रिश्तेदारोंको बुलाकर उनसे कहा कि जब मैं दुग्धपान कर रहा था तब विशाखाने बौद्ध भिक्षुसे कहा कि मैं अशुद्ध वासी पदार्थ ग्रहण कर रहा हू। विशाखाके रिश्तेदारोंने इस बातकी हकीकत दर्याफ्त की। विशाखाने कहा कि उसने यह बात कही ही नहीं। उसने केवल यही कहा था कि उसके श्वसुर अपने पूर्वभवके पुण्यका फल भोग रहा है। इसप्रकार विशाखाने अपने अपराधको निर्मूल प्रमाणित कर दिया। जब वह निरपराध ठहरी तब उसने अपने श्वसुरगृहसे चला जाना ही मुनासिब समझा, इसपर श्रेष्ठीने उससे क्षमा याचना की और घरमें रहनेके लिये ही अनुरोध किया। वह केवल एक शर्तपर रहनेको मजूर हुई कि मुझे बौद्ध गुरुओंकी उपासना करनेकी आज्ञा मिल जानी चाहिए। श्रेष्ठीने यह शर्त मंजूर कर ली। दूसरे दिन उसने बुद्धको अपने-

-यहां निमंत्रित किया। जब नग्न निगन्थोंने यह जाना कि बुद्ध मिगारसेठ्ठीके घरमें मौजूद हैं तो उन्होंने उसके घरको घेर लिया। विसाखाने अपने श्वसुरसे भी बुद्धका सत्कार करनेके लिए कहा। नग्न निग्रन्थोंने श्रेष्ठिको वहां जानेसे रोका। इसपर विशाखाने स्वयं ही बुद्धको आहार दिया। बुद्ध और उनके शिष्य जब आहार कर चुके तब विसाखाने फिर अपने श्वसुरसे आकर उपदेश सुननेका आग्रह किया। नग्न निर्ग्रन्थोंने इस समय भी सेठीको वहां जानेसे रोका; किन्तु जब वह नहीं माना तो उन्होंने वहां पर्दा आकर उसके पिछाड़ी सेठीको बिठा दिया। सेठीने वहींसे बुद्धका उपदेश सुना और उसमें उसको विश्वास हो गया। वह अपनी बहूके पास पहुंचे और बोले "आजसे तू मेरी माता है।" उसी समयसे विसाखा मिगारमाताके नामसे मशहूर हुई। उसने करोड़ों रुपये खर्च करके बुद्धके लिए श्रावस्तीमें एक आराम बनवा दिया।"[1]

इस कथामें भी जैनधर्मके प्रति अन्याय झलक रहे हैं। यहां भी बौद्धाचार्यका उद्देश्य जैनसाधुओंको हेय प्रकट करनेका है। इस कथामें इसमें कितना तथ्य है यह सहज अनुमानगम्य है। किन्तु इससे यह स्पष्ट है कि जैनमुनियोंका भेष नग्न था, जैसे कि अन्य उद्धरणोंसे प्रमाणित है। साथ ही यह भी प्रगट है कि उस समय श्रावस्तीमें जैनियोंकी संख्या अधिक थी। इसमें भी श्रेष्ठीका मुनिनिमित्त दूध मीना मुनियोंद्वारा रोका जाना आदि बातें जैन नियमोंके विरुद्ध हैं।

'धम्मपद'[2] में बताया भी साधुसंघका एक चित्र स्पष्टमयी यमी है। इसपर टीका करते हुये टीकाकार एक और कथा लिखते हैं,

1 बिम वही पृ ३३-३५। 2 धम्मपद (S. B. E. Vol. X) पृष्ठ ३।

नो उपरोक्तसे बहुत मिलती–जुलती है। 'सुमागधा–अवदान' में कहा गया है कि "अनाथपिण्डककी पुत्रीके गृहमें बहुतसे नग्नसाधु एकत्रित हुये। इसपर उसने अपनी बहू सुमागधाको उनके दर्शन करनेके लिये बुलाया और कहा, 'जा और उन परमपूज्य मुनियोंकि दर्शन कर।' सुमागधा सारीपुत्त, मोग्गलान सदृश साधुओंको देखनेकी संभावनासे एकदम भगी आई किन्तु जब उसने इन साधुओंको देखा जिनके बाल कबूतरोंके पंख जैसे मिट्टीसे सने हुये थे, और जो देखनेमें राक्षस जैसे थे, वह म्लानमुख हो गई। इसपर उसकी सासने पूछा कि तू उदास क्यों होगई?' सुमागधाने कहा कि 'यदि यही साधु हैं तो फिर पापी कैसे होंगे?" इसमें जैन साधुओंका उल्लेख है वे जैनसाधु नहीं हैं, प्रत्युत आजीवक प्रतीत होते हैं किन्तु इससे यह स्पष्ट है कि उस समय नग्नता साधुपनेका एक चिह्न मानी जाती थी। 'धम्मपद' के संपादक महोदयने इस पर एक नोट दिया है और उसमें कहा है कि 'बॉरनफ साहबके मतानुसार जैन साधु ही नग्न होते थे और बुद्ध नग्नताको आवश्यक नहीं समझते थे' यह ठीक है।

अन्यत्र गरुढ गोस्वामिन्‌की 'अमावट्टर'में भी एक जैन उल्लेख मिलता है। वहा कहा गया है कि लिच्छविराजपुत्र सुणक्खत्तने अन्तत बौद्धसघमे सबन्ध त्यागकर कोरखत्तियकी शरण ली। उपरान्त उनके निकटसे भी रुष्ट होकर वह जैनमुनि कलारमत्थुकके शिष्य हो गये। जैनमुनिके निकट कुछ दिन रहकर वह फिर म० बुद्धके पास पहुच गये। फिर भी म० बुद्धसे असंतुष्ट होकर वह पाटिकपुत्र नामक जैनमुनिके निकट आगये। आखिर वह आजी-

भक्त हो गये।* इसमें जिन सुदत्तका राजपुत्रका उल्लेख आया है, वे भगवान महावीरके शिष्य थे, यह श्वेताम्बरियोंके 'भगवतीसूत्र' से प्रमाणित है। दिगंबर शास्त्रोंमें हमें कोई ऐसा नाम देखनेको मिला नहीं है। संभव है विशेष रीतिसे अध्ययन करनेपर दिगंबर शास्त्रोंमें इन जैन मुनियोंका विवरण मिल जावे। विद्वानोंको ध्यान देना चाहिये।

अस्तु; धम्मपालकी थेर और थेरीगाथाकी टीका 'परमत्थ दीपनी' में जैन उल्लेख इस प्रकार मिलते हैं। यद्यपि यह टीका अर्वाचीन रचना है परन्तु गाथायें जो इसमें विविध भिक्षु भिक्षुणियोंकी संगृहीत हैं, वे अवश्य ही बौद्ध पिटक ग्रंथों जितनी प्राचीन हैं। इस दशामें इनके उल्लेख भी विशेष महत्वके हैं। इनमें उन कतिपय भिक्षु–भिक्षुणियोंका भी उल्लेख है जो जैनधर्मसे बौद्धधर्ममें दीक्षित हुये बतलाए हैं। बौद्धोंके इस धर्म परिवर्तन उल्लेखोंमें कितना तथ्य है यह हम कुछ कह नहीं सके; परन्तु जैसे कि हम प्रारंभमें कह चुके हैं, बौद्धोंके उल्लेखोंमें सर्वथा विधर्मियोंको स्वधर्ममें ग्रहण करनेका विवरण मिलता है; इनके स्वयं अपने अनुयायियोंके विधर्मी होनेका कहीं कोई उल्लेख सहसा देखनेमें नहीं आता है। और यह संभव नहीं है कि इनके अनुयायी विधर्मी न हुये हों। ऐसी दशामें इनके कथनको यथातथ्य स्वीकार करना जरा कठिन है। खैर जो हो, यहां इनका दिग्दर्शन करलेना इष्ट है।

पहिले ही थेरी गाथाकी टीकामें कतिपय जैन आर्यिकाओंके बौद्ध भिक्षुणी होनेका उल्लेख है। वहां पहिले ही भद्राकुण्डलकेशाका बौद्ध भिक्षुणी होना बतलाया गया है। उसका नाम भद्राकी

* वीरवर्ष भाग १ पृ० ३५ 1. Psalms of the Sisters P. 30.

और वह उज्जैनीकी वेश्या बतलाई गई है। महाराज श्रेणिकके औरससे अभयकुमारका जन्म हुआ बतलाया गया है। उपरान्त कहा है कि जब निगन्थ-नातपुत्तके उकसानेपर अभयकुमारने म० बुद्धसे प्रश्न किये थे और उनका यथार्थ उत्तर पाया था, तब वे बौद्ध हो गए थे। बौद्ध होनेपर उन्हींके उपदेशसे उनकी माताने बौद्धधर्ममें श्रद्धान ग्रहण किया था। इस विवरणमें कितना तथ्य है, यह हम पहिले ही देख चुके हैं। सचमुच अभयकुमार जैन थे, इसी कारण उनका जन्म वेश्याके गर्भसे हुआ बतलाया गया है। वरन् हम जानते हैं कि वे वेणातट नगरके एक श्रेष्ठीकी कन्या थीं। अगाड़ी मद्दगणराज्यकी राजधानी सागलके कोसियवशके ब्राह्मणका पुत्री भद्दाका विवरण है।[1] उसका पालनपोषण बडे लाडचावसे हुआ था और उसका विवाह मगधके महातित्थ नामक ग्रामके राजकुमार पिप्पलिसे हुआ था। जब पिप्पलि साधु हो गया तब उसने भी अपनी सम्पदा अपने सम्बधियोंको देकर साधु अवस्था धारण कर ली। कहा गया है कि वह पाच वर्ष तक श्रावस्तीके जेतवनमें स्थित 'तित्थिय आराम' में रही और अन्तमें 'पजापती गोतमी'ने उनको बौद्धधर्ममें दीक्षित किया। इसमें स्पष्ट रीतिसे नहीं कहा गया है कि वह पाच वर्ष तक किस आम्नायकी साधु सपदायका पालन करती रही थी, किंतु तित्थिय आराममें वह रही थी, इससे सभव है कि वह प्राचीन जैनसघमें सम्मिलित रही हो, क्योंकि हम देख चुके हैं कि 'तित्थिय' शब्दका विशेष प्रयोग प्राचीन जैन-साधुओंके लिये बौद्धशास्त्रोंमें किया गया है। अस्तु,

1. Psalms of the Sisters, P. 48.

वादका नाद घोषित करतीं थीं, उसकी मन्दाकिनी उस समय पूर्णताको ही प्राप्त होगी! वास्तवमें जैनसाधु और साध्वियोंके जीवन धर्मप्रचारके आदर्श होते हैं। वे वर्षके चार महीनोंको छोड़कर शेषके सर्व दिनोंमें सर्वत्र विहार करके जनताको सच्चे सुखका मार्ग बताते हैं। यही दशा नन्दोत्तराके सम्बन्धमें प्रकट है। किंतु उसने जो अपनी जीवनचर्याका विवरण दिया है, उसपर भी तनिक ध्यान दीजिये। हमारे विचारसे पहिली गाथामें तो उसने अपने ब्राह्मणपनेकी अवस्थाका उल्लेख किया है और दूसरेमें जैन उदासीन श्राविकाकी क्रियायोंका दिग्दर्शन कराया है। उदासीन श्राविकाओंको सिर मुड़ाना पड़ता है और वे पृथ्वीपर शयन करतीं एवं रात्रिभोजनकी त्यागी होती है। यही क्रियायें नन्दोत्तरा भी गिना रही है तथापि जो उसने जैनसाधुओंके निकट रहकर शिक्षा ग्रहण की थी, यह भी जैनशास्त्रोंके अनुकूल है। जैनशास्त्रोंमें ऐसे कई उल्लेख हैं। इस तरह इस उल्लेखसे जैन क्रियाओंका महत्व प्रकट है।

उपरान्त भद्दा (भद्रा) कुन्दलकेसाका कथानक है।[१] यह पहिले जैनी थी। इसके सबधमें यह कहा गया है कि यह राजगृहके राज्य-कोठारीकी पुत्री थी। एक दफे वहाके पुरोहित-पुत्र सत्तुकको डकैतीके अपराधमें प्राणदण्ड मिला। बधक लोग उसे शूलीपर चढ़ानेको लिये जा रहे थे। भद्दाकी दृष्टि कहीं उसपर पड़ गई और वह तत्क्षण उसपर आसक्त होगई। उसके पिताको जब यह बात मालूम हुई और पुत्रीकी अन्यथा शाति होना कठिन समझी, तब उसने बधकोंको घूस देकर उस पुरोहितपुत्रको छुड़ा

१. Psalms of the Sisters P. 63.

किया। वह सत्पुरुष डाकू भद्राके संग आनन्द भोग करता अवश्य था परन्तु उसकी निगाह सदा उसके गहनों पर रहती थी। एक रोज वह उसे बाहिर ले गया और वहां उसने गहने मांगे। भद्राने उसे प्रेमसे समझाना चाहा, पर जब देखा कि वह तो गहनोंका ही भूखा है तब उसने प्रेमालिंगनके बहाने उसे एक गहरे गढ़ेमें ढकेल दिया। उसका हृदय संसारकी परिस्थिति देखकर भर्रा गया। वह वहांसे सीधी निगन्थ संघमें पहुंची और वहां आचार्यसे दीक्षा देनेकी प्रार्थना की। इसपर बौद्धाचार्य कहते हैं कि निगन्थोंने उससे पूछा 'तू किस प्रकारकी दीक्षा ग्रहण करेगी?' उत्तरमें उसने उनसे सर्वोत्कृष्ट प्रकारकी दीक्षा देनेका अनुरोध किया। इसपर उन्होंने ताड़की कंघी (Palmyra Comb) से उसके बाल नुंचवा (tore out) दिये और वह दीक्षित भी करदी गई किन्तु उसकी संतुष्टि इस दशामें नहीं हुई इसलिये वह वहांसे चली गई। उपरान्त श्रावस्तीमें बौद्धाचार्य सारीपुत्तसे वह वादमें हार गई और बौद्ध होगई। बौद्ध भिक्षुणीकी दशामें उसने एक वस्त्रे* निम्न शब्द कहे थे—

Hair cut dust-laden and half-clad—so fared
I formerly, deeming that harmless things
Had harm, nor was I 'ware of harm
In many things wherein in sooth harm lay. 107

इनमें उसे यह स्पष्ट प्रगट किया गया है कि "पहिले मैं केश रहित, मैलसे भरी और एक कपड़ा पहिने विचरा करती थी, मैं यह विचारती थी कि उन वस्तुओंमें भी नुकसान है जो सचमुच नुकसानदेह नहीं हैं और उन वस्तुओंसे मैं अनजानकार थी जिनमें वस्तुतः नुकसान है।"

---

* Literally having one garment or cloak.

इसप्रकार यह कथा है। इसमें वर्णित जैनआर्यिकाओंकी क्रियाओंपर हमें ध्यान देना चाहिये। नन्दोत्तरा और इस भद्राकी जीवनक्रियाओंमें अन्तर है। इसका कारण यही है कि नन्दोत्तरा तो उदासीन श्राविका थी और भद्रा आर्यिका थी। वह जैनाचार्यसे परमोत्कृष्ट दीक्षा देनेका अनुरोध भी करती है। इससे प्रकट है कि जैन संघमें स्त्रियोंकि साधुजीवनकी भी कक्षाएं नियत थीं। यह जैनशास्त्रोंकि सर्वथा अनुकूल है। जैनसंघमें चार कक्षाएं स्थापित थीं, जैसे कि आज भी हैं, अर्थात् (१) मुनि, (२) आर्यिका, (३) श्रावक और (४) श्राविका। यह श्रावक और श्राविकायें उदासीन गृहत्यागी ही होते थे। अस्तु, अगाडी जो बाल नोंचनेकी बाबत कहा गया है, सो श्वेतांबर सम्प्रदायकी बाबत तो डॉ० जैकोबी प्रकट करते हैं कि शायद उनके यहा यह नियम नहीं है[1] पर दिगम्बर सम्प्रदायमें मुनि और आर्यिकाके मूलगुणोंमें अन्तर नहीं है। उनके उत्तरगुणोंमें परस्पर अन्तर है। प्रायश्चित्तविधानके निर्णयमें 'छेदशास्त्र'का निम्नश्लोक यही प्रकट करता है—

'यथा श्रमणाना भणितं श्रमणीनां तथा च भवति मलहरणं।
वर्जयित्वा त्रिकालयोगं दिनप्रतिमा छेदमूलं च ॥'

'अस्यार्थ—यत्प्रायश्चित्त ऋपीणा यथा तेन विधिना आर्यिकाणा दातव्य पर किन्तु त्रिकालयोग सूर्यप्रतिमा न भवति। उत्तर गुणाना समाचारो न भवति। केन कारणेन मूलच्छेदे जाते सति उपस्थापनाया न याति।'[2]

---

१ जैनसूत्र (S B E) भाग २ पृष्ठ ११८ फुटनोट।
२. प्रायश्चित्तसग्रह (मा० ग्रं०) पृष्ठ ९८

इस अपेक्षा दिगम्बर दृष्टिसे आर्यिकाओंको केशलोंच करनेका अधिकार प्रमाणित होता है। श्रीपद्मपुराणजी (पृ० ८८९) में सीताजीको दीक्षा लेते समय केशलोंच करते लिखा है अतएव श्वेताम्बरका यह उल्लेख भी यथार्थता लिए हुए है।

इसके अतिरिक्त 'थेरीगाथा'में अन्य कोई उल्लेख स्पष्टतः जैन-धर्मके संबंधमें नहीं है, किन्तु 'इसिदासी' (ऋषिदासी) शीर्षक जो कथा दी हुई है वह अवश्य ही जैनधर्मकी मालूम होती है। वह इस प्रकार है, 'ऋषिदासीने पूर्वभवमें व्यभिचारमय जीवन व्यतीत किया था। इसलिये इस पापके कारण उसे तीन भव पशु योनिमें एक नपुंसक रूपमें और दो स्त्रीलिंगके धारण करने पड़े। उपरान्त वह उज्जैनीके एक महाजन, धनी और धर्मात्मा वणिकके यहां पुत्री हुई थी। यहां इसका नाम ऋषिदासी रक्खा गया था। जब यह पुत्री हुई तब उसके पिताने उसका विवाह एक सुयोग्य वणिक-पुत्रके साथ कर दिया। एक मास तक यह अपने पतिके साथ अच्छी तरह रही पश्चात् उसके पूर्व कर्मोंके फल स्वरूप उसका पति उससे विरक्त होगया और उसे घरमेंसे निकाल बाहर किया। यह अपने पितृगृह पहुंची। यहां उसके पिताने उसका विवाह फिर कर दिया; किन्तु फिर भी उसकी उसके पतिसे न पटी। इसप्रकार बारबार विवाह कर देने और निकाली जानेसे यह व्यग्र हो गई और उसने जिनदत्ता नामक थेरी (साध्वी)से दीक्षा ग्रहण कर ली। इस दीक्षित अवस्थामें एक दिवस यह स्वप्नमें आहार ग्रहण करके, ऐसा स्वप्न पाकर बैठ गई और वहां अपनी साथिन भिक्षुणीसे अपनी पूर्व कथा कहने लगी। जिसतरह पूर्वभवमें उसने पाप किये,

कैसे उनका फल भुगता, फिर इस भवमें साकेतके वणिकपुत्रसे उसका विवाह हुआ, पति रुष्ट हुवा, घरसे निकाली गई, पितृगृह आई, पुन पुन विवाह हुये, अन्तत जिनदत्ताके निकट उसने दीक्षा ग्रहण की यह सब उसने कहा। इस विवरणमें एक स्थलपर निम्न शब्द आये हैं —

"But of my father I,
Weeping and holding out clasped hands, be sought·
'Nay' but the evil Karma I have done,
That would I expiate and wear away 431"

भावार्थ–उसने अपने पितासे रोकर और हाथ जोडकर कहा कि 'नहीं, पिताजी, मैंने जो अशुभकर्म उपार्जन किया है उसकी निर्जरा अव मुझे (निज्जरेस्सामि) कर लेने दीजिये।' यही कह कर वह साध्वी होगई थी।[1]

इस कथामें कर्मके प्रभावको व्यक्त करनेका प्रयास है जो जैनधर्ममें मुख्य स्थान रखता है। जैनकथाओंमें पूर्वकृत कर्मके फल भुगतनेका चित्रचित्रण विशेष मिलता है तथापि जो यहा कर्मोकी निर्जरा करनेकी घोपणा है, वह स्पष्ट कर देती है कि यह कथा जैनसे सम्बन्ध रखती है। ऋपिदासी, जिनदत्ता ये नाम भी जैनियोंके समान हैं इस कारण यही प्रतीत होता है कि यह कथा जैनियोंकी है। निर्जरा तत्व बौद्धधर्ममें स्वीकृत नहीं है, प्रत्युत म० बुद्धने जैनियोंके इस तत्वकी तीव्र समालोचना 'देवदत्त सुत्त' में की है।[2] यही मत 'थेरीगाथा' की सम्पादिका श्रीमती मिसिस हिसडेविडसका है। आप इस कथाके विषयमें लिखती हैं कि—

१. Psalms of the Sisters P. 156 २. मज्झिमनिकाय भाग २ पृष्ठ २१४।

किन्तु इसमें जो ऋषिदासीके पुर्नविवाहका उल्लेख है वह कुछ अटपटा ही है। जैन कथाओंमें हमें कोई ऐसा उल्लेख देखनेको नहीं मिलता है। सभव है बौद्ध लेखकने इसको विकृत रूप देनेके लिये अपने आप यह कथन गढ़ लिया हो और इस कथाको अपना लिया हो। इसके लिये हमें देखना चाहिये कि जैनशास्त्रोंमें भी कोई ऐसी कथा अथवा इससे सादृश्य रखनेवाली कथा है ? हमारे देखनेमें ' उत्तरपुराण ' में एक कथा आई है, जिससे उक्त कथाका सम्बन्ध हो तो कोई आश्चर्य नहीं ![1] वहा लिखा है कि सम्राट् श्रेणिकके प्रश्नके उत्तरमें प्रधान गणधर इन्द्रभूति गौतम कहते हैं कि वीरभगवानके तीर्थमें अतिम केवलज्ञानी जम्बूकुमार होंगे। उस दिनसे, जिस दिन यह प्रश्न पूछा गया था, सातवें दिन इन जबूकुमारका जन्म राजगृहनगरमें होना वतलाया गया है। इनके पिताका नाम 'अर्हद्दास' और 'माताका नाम 'जिनदासी' लिखा गया है। उपरान्त कहा है कि जन भगवान महावीरके निर्वाणोपरात पुन गौतमगणधर सुधर्माचार्य सहित यहा आवेंगे तव राजा कुणिक अजातशत्रु पूजा वदना करने आवेगा और जबूकुमार भी वैराग्यको धारण करेंगे किन्तु माता–पिता दीक्षा धारण नहीं करने देंगे। इस घटनाके वाद जम्बूकुमारका विवाह पद्मश्री, कनकमाला और कनकश्रीके साथ हो जावेगा, परन्तु वह ससारभोगसे विरक्त रहेगा। ये सव बातें घटित हुईं और इसी समय एक विद्युच्चोर जम्बूकुमारके घर आ निकला था। इन दोनोंमें परस्पर ससारकी असारता पर वाद हुआ था, जिसके अन्तमें जम्बूकुमार और उनके माता-

---

१ उत्तरपुराण पृष्ठ ७०२.

पिता तथा स्त्रियें और विद्युच्चोर आदि सब दीक्षा धारण कर गये थे। भगवान महावीरके चौबीस वर्ष बाद जम्बूकुमार केवलज्ञानी हुए थे। केवलज्ञानी होकर उन्होंने अपने सब शासक शिष्योंके साथ चालीस वर्षतक विहार और धर्मप्रचार किया था। जैनियोंके अन्तिम केवलीकी यह कथा है और विशेष प्रख्यात है। संभव है इसीको बौद्धाचार्योंने किसी रूपमें अपना लिया हो। यद्यपि जम्बूकुमारकी माता जिनदासी बतलाई गई है और बौद्धग्रन्थमें ऋषिदासीका उल्लेख है तथापि जिनदत्ता भिक्षुणीका। भगवान महावीरके निर्वाणोपरांत एक बीस-तीस वर्षके अन्तरालमें क्रमशः आविर्भूत हो जाना संभवित है। इन्हीं जिनदासीका नाम बौद्धाचार्योंने 'जिनदत्ता' रख दिया हो और इनकी किसी शिष्याका 'ऋषिदासी' रख दिया हो तो कोई अनोखी बात नहीं है। अथवा यह हो सकता है कि जैनियोंके अंतिमकेवलीकी माताको हेय प्रकट करनेके लिये उन्होंने उनके नामको ऋषिदासीमें बदलकर उनके जीवनको नीची दृष्टिसे प्रगट किया हो। जो हो, इसमें संशय नहीं कि बौद्धाचार्योंने इस कथाको किसी रूपमें अवश्य ही जैनधर्मसे ग्रहण किया था। संभव है कि जैनशास्त्रोंमें और कोई कथा उपरोक्तसे मिलती-जुलती मिल जाने पर इसके स्पष्ट होसकता है। इस प्रकार थेरीगाथाके जैन उल्लेख पूर्ण होते हैं।

अब पाठकगण आइए, एक दृष्टि 'थेरगाथा' पर भी डालें। इसमें भी सबसे पहिले जम्बुकुमारके सम्बन्धमें जैन उल्लेख मिलता है। इसके विषयमें हम पहिले ही देख चुके हैं, उपरान्त एक कथा 'वज्जुप' शीर्षक की है। इसमें कहा गया है कि यह सावत्थी

१. Psalms of the Brethren, P 80. २. [illegible]

(श्रावस्ती) के एक कुलपुत्र (Councillor's) के वशमें जन्मा था। जब वह युवा था तब ही उसने एक जैनमुनिके निकट दीक्षा ग्रहण करली थी। किन्तु अन्तमें वह किसी कारणसे बौद्ध होगया बतलाया गया है। इसके विषयमें अधिक कुछ न कहकर यह बतलाना ही पर्याप्त है कि जैनसाहित्यमें ऐसा कथानक हमारे देखनेमें नहीं आया है।

इसके अतिरिक्त 'गगातीरिय' भिक्षुके सम्बन्धमें कहा गया है कि उसने गृहत्याग कर एक वर्षतक मौनव्रत धारण किया था। यह हमको मालूम है कि म० बुद्धने मौनव्रत पालनेके लिए मनाई की थी इसलिए सभव है कि यह साधु जैनमुनि हों। गगा किनारे रहनेके कारण यह 'गगातीरिय' कहलाते थे।[१]

उपरान्त इसमें एक कथानक 'अगुलिमाल' शीर्षकका है।[२] यद्यपि इसका सबध जैन सप्रदायसे कुछ भी नहीं बताया गया है; परन्तु इसके विवरणक्रमसे यही प्रतीत होता है कि यह कथा भी जैनसाहित्यसे अपनाली गई है, जैसा कि हम ऋषिदासीकी कथाके सम्बन्धमें देख चुके हैं। यह कथा इसप्रकार बतलाई गई है कि 'अगुलिमाल कौशलके राजाके पुरोहित ब्राह्मण भग्गवका पुत्र था। पुरोहितने उसके जन्म लक्षणोंसे जान लिया था कि वह पक्का चोर होगा। यह समाचार उन्होंने राजासे भी कहे, जिससे उनके मनको भी पीड़ा सहन करनी पडी थी। उसके द्वारा राजाको पीड़ा सहन करनी पडी, इसलिये उसकी ख्याति 'हिंसक' रूपमें होगई। वह बलवान भी विशेष था। सात हाथियोंका बल उसे प्राप्त था। उचित वय प्राप्त करनेपर उसे तक्षशिलामें विद्याध्ययन करनेके लिये

भेज दिया गया। तक्षशिलामें विद्याध्ययन करते वह अपनी गुरु-पत्नीकी विशेष सेवा शुश्रूषा किया करता था इस कारण गुरुके गृहसे उसे अधिकतर निमंत्रण मिलते रहते थे। इस बातको और शिष्य सहन न कर सके। उन्होंने गुरु और इसके बीच कुसम्प करनेके प्रयत्न किये और वे सफल भी हुए। गुरु 'हिंसक' से रुष्ट होगये और उससे कहा कि मुझे गुरुदक्षिणा रूपमें एक हजार अंगुलियां मनुष्योंके सीधे हाथकी लाकर दो। वह समझते थे कि उससे यह कार्य नहीं होगा और इसपर उसे दण्ड दिया जासकेगा किंतु 'हिंसक' गुरुकी आज्ञाको शिरोधार्य कर कौशलके जालिनी वनमें पहुंच गया और वहांसे जो यात्री निकलते वह उनकी उंगलियां काट लेता और उन्हें गुंथाकर उसकी माला बनाकर गलेमें पहिन लेता इसही कारण वह 'अंगुलिमाल' नामसे प्रकट होगया। जब उसकी क्रूरता ज्यादा बढ़ गई तो राजाने उसको पकड़नेके लिये सेना भेजनेकी व्यवस्था की। यह समाचार जानकर उसकी माताका हृदय भर गया। वह ममताकी प्रेरी अपने पुत्रको समझानेके लिये निकल पड़ी। इस समय 'अंगुलिमाल' ने अपनी माताको आते देखा; परन्तु उसे तो अंगुलियोंसे मतलब था। उसने माताका भी ध्यान नहीं किया। अगाड़ी बौद्धाचार्य कहते हैं कि म बुद्धने इस दशाको जाना तो वे [illegible] प्रस्तुत भये। उनको आता देखकर 'अंगुलिमाल' ने अपनी माताको छोड़ दिया और उनके पीछे हो लिया परन्तु भागकर भी वह उनको नहीं पकड़ सका। अन्ततः बुद्धके समझानेसे उसने वह हिंसाकर्म छोड़ दिया और वह बौद्ध होगया। बौद्ध भिक्षु होनेपर भी लोग उसको विशेष

रीतिसे सताने थे परंतु वह सब यातनायें चुपचाप सह लेता। इसलिये वह अन्तमें 'अहिंसक' नामसे प्रख्यात हुआ। इस दशामें उसने बहुतसी गाथायें कही थीं। उनमेंसे एकका अनुवाद इसप्रकार है –

"Lo' su h a foe would verily not work me harm,
Nor any other creature wheresoever found
He would himself attain the peace ineffable,
And thus attaining cherish all both bad and good"

भावार्थ–'ऐसे शत्रु मुझे कुछ भी हानि नहीं पहुंचाते हैं और न कोई अन्य जीवित प्राणी ऐसा दिखता है जो मुझे हानि पहुंचा सके। वह अपने आप अपूर्व शांतिको प्राप्त करेगा और उसको पाकर वह सबको–दोनों त्रस और स्थावरको अपना लेगा।'

इस गाथामें जो भाव और 'तस–थावरे' शब्द व्यवहृत किये गये हैं, वह हमारे उक्त अनुमानको और भी प्रबल कर देते हैं। त्रस–स्थावर (तस–थावरे) जैन सिद्धान्तके खास शब्द हैं और वे वहां त्रस–चलने फिरनेवाले और स्थावर–एक स्थानपर स्थिर रहनेवाले प्राणियोंके लिये व्यवहारमें लाये जाते हैं। उक्त अनुवादमें जो उनका भाव बुरे–भले प्राणियोंसे लिया गया है, वह ठीक नहीं है किन्तु अनुवादक श्रीमती ह्रिसडेविड्स महाशया करतीं भी क्या? क्योंकि वह फुटनोट द्वारा यथास्थान प्रगट करतीं है कि बौद्धधर्ममें इस शब्दका यथार्थ भाव नहीं मिलता है। इसका अर्थ अस्पष्ट है। (Admittedly a term of doubtful meaning) इस परिस्थितिमें इस कथाका सम्बन्ध मूलमें जैनधर्मसे होना बहुत कुछ स्पष्ट है। 'अङ्गुलिमाल' जिन शब्दोंका अर्थ करता है वह अपने यथार्थ भावमें –

जैनियोंके हैं। तथापि गाथामें आत्माके अरूपी स्वभावमें दृढ़ श्रद्धान भी झलक रहा है। जैनियोंकी निश्चयनयसे 'आत्माको कोई भी किसी तरहसे हानि नहीं पहुंचा सकता' यह प्रकट है और अङ्गुलिमाल यह श्रद्धान उक्त गाथामें स्पष्ट प्रकट कर रहा है, जो बौद्धमान्यताके प्रायः विरुद्ध ही है क्योंकि बौद्धधर्म अनात्मवादका प्रतिपादन करता है। इस अपेक्षा भी अङ्गुलिमालका जैन होनेका विश्वास होता और इस कथाका संबंध जैन साहित्यसे होना प्रमाणित होता है। किन्तु अब भी देखना चाहिये कि जैनसाहित्यमें भी कोई ऐसी या इससे मिलती जुलती कथा मिलती है क्या? दुर्भाग्यसे अभीतक हमारे देखनेमें ऐसी कोई कथा जैनसाहित्यमें नहीं आई है और इस कारण इसके विषयमें कुछ अधिक नहीं कहा जासकता है।

बौद्धसाहित्यके उपरोल्लिखित स्थलोंपर जैनसम्बन्धोंका विवरण हम देख चुके हैं और वास्तवमें उन्हें विशेष महत्वका पाते हैं। भगवान् महावीरके बिल्कुल निकटवर्ती समयकी यह रचना है इस अवस्थामें इससे ऐसा महत्वपूर्ण विवरण पाना उचित भी था। सचमुच बौद्धशास्त्रोंमें जो उक्त प्रकारके जैन सम्बन्धी स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं उनके लिये हमें उनकी उपयोगिता स्वीकार करनी पड़ती है। यद्यपि उनमें मात्र जैनधर्मके सम्बन्धमें पक्षपात और द्वेष-पूर्ण विवेचनका अभाव नहीं किन्तु उनमें ऐसा होना सहज है क्योंकि आखिर वे जैनियोंके विपक्षी एक विधर्मी दलकी रचनायें हैं। इतनेपर भी उनकी उपेक्षा करके यदि हम राजहंस नीतिका अवलम्बन लें तो हमें उनमें बहुत कुछ महत्वशाली तथ्यपूर्ण विवरण मिलता है, जैसे कि हम पूर्व पृष्ठोंमें देख चुके हैं। हम अपने

इस विवेचनसे जिस निर्णयको पहुचे हैं उसके बलसे यह प्रकट करते हमें हर्षका अनुभव होरहा है कि (१) जैनियोंकी मान्यताओंका समर्थन विधर्मी शास्त्र भी करते हैं और भगवान् महावीरको सर्वज्ञ और सर्वदर्शी प्रकट करते है, सो उनकी इस मान्यताकी स्वीकारता बौद्धग्रन्थ स्वय जो अपनी प्राचीन मान्यताके अनुसार भगवान् महावीरके समकालीन म० बुद्धसे करते हैं, जैसे कि हम देख चुके है। विधर्मी मतप्रवर्तक द्वारा इस तरह जैन मान्यताकी पुष्टि होना कुछ कम गौरवकी बात नहीं है, (२) उक्त विवेचनसे यह भी स्पष्ट है कि जैनधर्मका अस्तित्व भगवान महावीरसे बहुत पहिलेसे चला आरहा था और उसके सिद्धात भी भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित धर्मके समान ही थे, (३) श्वेताम्बरियोंकी जो यह मान्यता है कि भगवान पार्श्वनाथकी शिष्यपरम्पराके मुनि वस्त्र धारण करते थे और उनके चार व्रत थे, वह बौद्ध उद्धरणोंके उक्त विवेचनसे बाधित है, (४) और अन्तत आजपर्यंत जैन सिद्धातोंका अविकृतरूप और दिगम्बर जैनशास्त्रोंकी प्रामाणिकता भी प्रकट है। आगामी वही सिद्धात हमें मिलते हैं जो सवा दो हजार वर्ष पहिले प्रचलित बताये गये है और वह दि० जैनशास्त्रोंके सर्वथा अनुकूल हैं।

इस रूपमें, जैन साहित्य और जैनधर्मके सबधमें एक विपक्षी मतके ग्रन्थोंसे महत्व प्रगट किया हुआ मिलता है। हमको विश्वास है कि आगामी पठन–पाठनमें प्राच्यविद्यामहार्णव यथार्थताका प्रतिपादन कर इसे उपयोगी पायेंगे।

॥ इति शम् ॥
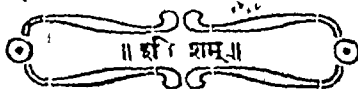
श्री० बाबू कामताप्रसादजीकृत ग्रन्थ।

भगवान महावीर—अर्थात आधुनिक शैलीपर तुलनात्मक दृष्टिसे लिखा हुआ संक्षिप्त जैन इतिहास, श्री विद्यावारिधि जैनदर्शनदिवाकर बेरिस्टर चम्पतरायजीकी भूमिका सहित। पृष्ठ ३   उत्तम कागज, उत्तम छपाई, उत्तम बाईडिंग। मूल्य सादी १॥) पक्की जिल्द २)।

महारानी चेलनी—श्रेणिक महाराजकी धर्मपत्नी महारानी चेलनीका आधुनिक ढंगपर लिखा हुआ उत्तम चरित्र। पृ संख्या १०२ उत्तम कागज व उत्तम छपाई। मूल्य ||=)।

संक्षिप्त जैन इतिहास—जैनधर्मकी प्राचीनता व उत्तमता बतानेवाला अपूर्व ग्रन्थ। पृष्ठ १०   मूल्य |=)।

प्राचीन जैन लेख सं०—अनेक प्रतिमाओं व यंत्रोंके लेखोंका संग्रह मूल्य ।)।

भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध—अपूर्व ऐतिहासिक ग्रन्थ। मूल्य १।)।

पार्श्वनाथ चरित्र—तैयार हो रहा है।

सब जगहके सब तरहके जैनग्रन्थ मिलनेका पता—

मैनेजर, दिगम्बर जैन पुस्तकालय—चंदावाड़ी—सूरत।